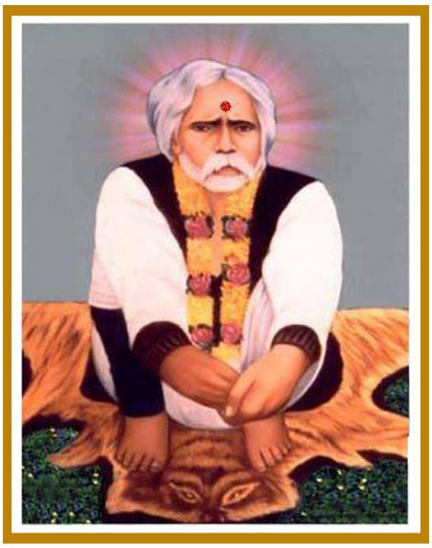

OM SHRI GURU PARAMATMANE NAMAH

MANOHAR JIVAN DARSHAN

SHRI SHRI 1008 SHRI MANOHAR DAS AGHORI

जनम (प्रगटीकरण) - Birth (Manifestation)
भाद्रपद शुक्ला - Bhadrapada Shukla
जलझुलनी एकादशी - Jaljulni Ekadashi
रात्रि ११ बजे पुष्य नक्षत्र में - 11 pm in the constellation Pushya
सम्वत् १९५२ (सन् 1894) - Samvat 1952 (AD 1894)

सत्यलोकवास (निर्वाण) - Satyalokwas (Nirvana)
अगहन सुदी ६ मंगलवार - Agahan Sudi 6 Tuesday
सुबह ५ बजे - 5 am
सम्वत् २०१५ (16 दिसम्बर 1958) - Samvat 2015 (16 December 1958)

WWW.AGHORI.IT

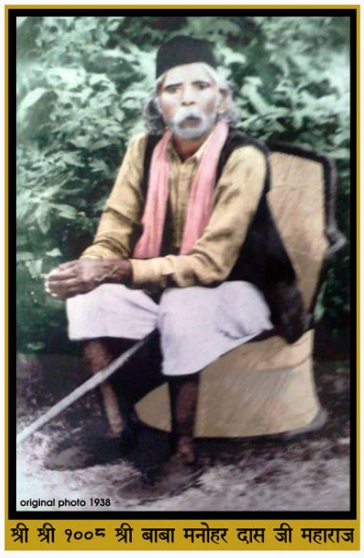

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज

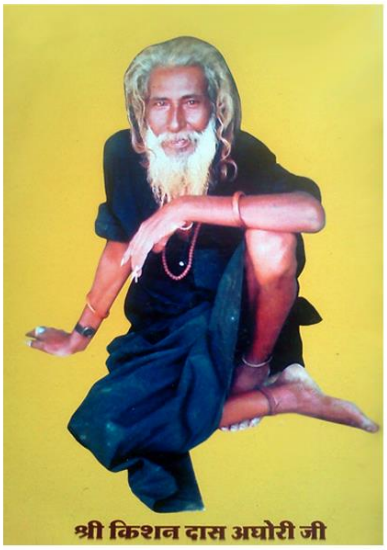
श्री किशन दास अघोरी जी

This book is the cleaning job done on photocopies of an original book,
now unobtainable, recovered by Radhika Dasi Aghori.
Some parts of the book were not legible necessitating a restoration.

In memory of Baba Manohar Das Ji, Baba Kishan Das Aghori guru's.

With love and devotion
Govinda Das Aghori

Questo libro è il lavoro di pulizia fatto su delle fotocopie di un libro originale,
ormai introvabile, recuperato da Radhika Dasi Aghori.
Alcune parti del libro non erano ben leggibili rendendo così necessario un restauro.

In ricordo di Baba Manohar Das Ji guru di Baba Kishan Das Aghori.

Con amore e devozione
Govinda Das Aghori

प्रकाशक :
एल.पी. शर्मा
अरविन्द प्रकाशन
गली धामाणी मार्केट
चौड़ा रास्ता, जयपुर
फोन : 2320672

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

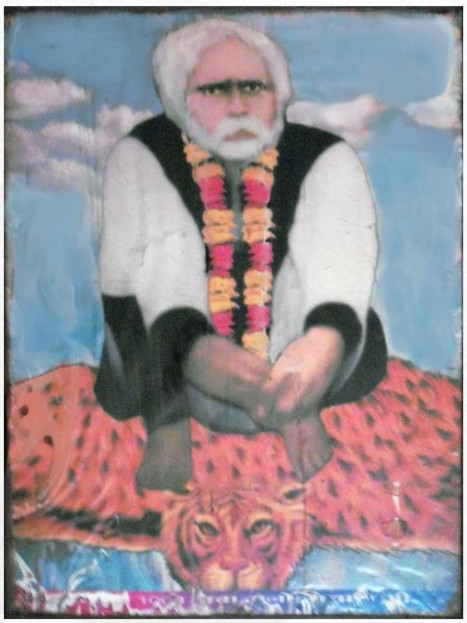

मूल्य : 50.00

नोट : पुस्तक प्राप्त करने हेतु हमें अग्रिम मनीऑर्डर या डी.डी. (ड्राफ्ट) भेज कर लिखिए।

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

मनोहर जीवन दर्शन

लेखक एवं संकलन कर्त्ता :
केदारनाथ शर्मा (खूँट वाले)

[गुरुदेव के चरणों में सादर समर्पित]

जन्म (प्रगटीकरण)	सत्यलोकवास (निर्वाण)
भाद्रपद शुक्ला	अगहन सुदी 6 मगंलवार,
जलझूलनी एकादशी	सुबह 5 बजे
रात्रि 11 वजे पुष्य नक्षत्र में	सम्वत 2015 (16 दिसम्बर, 1958)
सम्वत् 1952 (सन् 1894)	

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्ण मिदं, पूर्णातपूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यत॥

❋❋❋❋

अलख पुरुष की आरसी, सन्तों का ही देह।
लखना चाहे अलख को, इनहीं में लख लेय॥

❋❋❋❋

मेरा तो कुछ भी नहीं,
जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपता
क्या लागत है मोर॥

❋❋❋❋

गुरु मूरत मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।
अष्टप्रहर निरखत रहूँ, श्री गुरु चरनन की ओर॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

श्री गुरुवे नमः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म, तस्मै श्री गुरये नमः॥

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तंयेन सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मैं श्री गुरुवे नमः॥

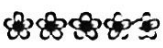

ध्यान मूलं गुरोमूर्ति, पूजामूलं गुरु पदम्।
मंत्रमूलं गुरुर्वाक्यं, मोक्षमूलं-गुरो कृपा॥

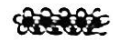

ज्ञान शक्ति समारूढं, तत्व माला विभूषितम्।
भक्ति-मुक्ति प्रदातारं, त्वम गुरुं नौमिसादरम्॥

आत्मज्ञान प्रदानेन, शिष्य संतापहारिणे।
स्वरूपानंदवोध्याय, तस्मैं श्री गुरुवै नमः॥

स्वरूपानंद देवेश, शरणागतवत्सलः।
त्राहिमाम् भो, गुरु श्रेष्ठ त्वामहम शरणंगतः॥

परमाद्वैत विज्ञानं, कृपया योददाति वै।
सो अयं गुरुर्गुरुः, साक्षाच्छिव एव न संसयः॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि, वक्रो अपि चन्द्रः सर्वत्र बन्धते॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्॥

॥ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

नम्रनिवेदन

सर्वप्रथम अपने सिद्धगुरुदेव श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदास एवं ज्ञान गुरु श्री श्री 1008 श्री तुलसीदास जी महाराज के चरण कमलों में सतशः साष्टांगदण्डवत् प्रणाम कर तदोपरांत ''बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन'' पुस्तक लेखन के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। इस पुस्तक के लिखने की आज्ञा सर्वप्रथम महात्मा कुन्दनदास जी महाराज नं जो हुजूर महाराज बाबा श्री मनोहर दास जी के परम् शिष्य एवं बाबा मनोहरदास जी के मन्दिर एवं ''बाबा मनोहरदास जन हितकारी ट्रस्ट'' के संस्थापक थे, नं दी। बाबा कुन्दनदास ने कहा कि ''छोरा [गुरु] की महिमा कौ कुछ वखान हौनौं चाहिये''। उनका निर्देश बाबा की जीवनी एवं उनकी महिमा पर कुछ साहित्यलेखन की ओर था। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने इसी विचार पर सहमति प्रकट की। हुजूर की महिमा वर्णन की आज्ञा को हमने सादर शिरोधार्य तो कर लिया, लेकिन जब लेखनी उठाई तो मस्तिष्क साथ नहीं दे रहा था कि ''बाबा के सम्बन्ध में लिखा क्या जावे? क्योंकि अन्तः साक्ष्य तो कुछ था ही नहीं बाह्य साक्ष्यों के लिए कुछ ऐसे महानुभाव मेरी दृष्टि में थे जो बाबा मनोहरदास जी महाराज के समकालीन थं, जिन्होंने बाबा के सत्य चरित्रों को नजदीक से देखा था एवं उनकी तनमन से सेदा की थी। मैंने उनके पास वैठकर सांक्षात्कार लिए। विविध प्रश्नों के माध्यम से उनकी स्मृति को जगाकर अनेक प्रकार के संस्मरण सुनाने के लिए तैयार कर लेता। फिर क्या था, उनके मुखों से उनके पुराने संस्मरणों की झड़ी सी लग जाया करती बड़े ही मनोयोग से ''बाबा के जीवन चरित्रों को सुनाने लग जाते और मैं उन्हें लिपिवद्ध कर लेता। इस पुस्तक के ''संस्मरण खण्ड'' के समस्त संस्मरण मैंने इसी प्रकार से प्राप्त कर उन्हें पुस्तक में यथास्थिति संकलित करने का प्रयास किया है।

बहुत प्रयास करने पर भी उनके जीवन वृत्त के बारे में अधिक सामग्री मुझे उपलब्ध नहीं हो सकी। जे भी प्राप्त हुई उसे मैंने अपनी कल्पना शक्ति से विस्तृत रूप प्रदान किया है। पुस्तक का प्रथम खण्ड ''जीवन-दर्शन खण्ड'' है। इसमें उनके जीवन, जन्म समय, जन्न स्थान, परिवार, पुलिस सेवा एवं गुरुदेव की शरण में जाने, जैसे विषयों को संयुक्त करते हुए उनके आध्यात्मिक विचारों का विस्तार से वर्णन किया है। बाबा के जीवन सम्बन्धी जानकारी के श्रोत वे समस्त बुजुर्ग हैं जिन्होंने अपना अमृल्य समय देकर मुझे बाबा मनोहरदास के जीवन से सम्बन्धित सत्य घटनाओं, संस्मरणों को सुनाया। इन्हीं संस्मरणों एवं सत्य घटनाओं को आधार बनाते हुये, मैंने लगभग 18 अध्यायों में बाबा का ''जीवन-दर्शन'' लिखने का प्रयास किया है। बाबा मनोहरदास जी के जीवन-दर्शन खण्ड को मैंने प्रमुख रूप से श्रीमद्भगवद्गीता, उपनियद्, रामचरित्रमानस, श्री मद्भगवत्, साधक संजीवनी, पातंजलि योगदर्शन, विचार चन्द्रोदय आदि ग्रन्थों एवं संत महात्माओं की वाणियों के आलोक से लिखा है।

''बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन'' नामक इस पुस्तक में जिस महापुरुष के जीवन एवं उनके दार्शनिक विचारों को मने लिखने के लिए लेखनी उठाई। यह मेरा दुस्साहस ही है, क्योंकि जिस गूढ़-गम्भीर विषय को लिखने का इस में प्रयास किया गया है, उसका मैं अपने आपको अधिकारी नहीं मानता, यह सब कुछ ''गुरुदेव'' की प्रेरणा तथा बाबा के समकालीन सेवकों, भक्तों द्वारा सुनाये गये संस्मरणों, से ही सम्भव हो सका है। पुस्तक का तीसरा खण्ड बाबा महाराज के उत्तराधिकारियों तथा प्रमुख शिष्यों के जीवन वृत्त की संक्षिप्त जानकारी देने के उद्देश्य से लिखा गया है जो कि सत्य घटनाओं के संस्मरणों पर ही आधारित है और कुछ अपनी स्मृति के आधार पर भी लिखा गया है। इसी खण्ड में कुछ संक्षिप्त जानकारी ''श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज जनहितकारी ट्रस्ट'' के निर्माण, एवं वर्तमान व्यवस्था से सम्बन्धित भी दी गई है।

परम श्रद्धेय श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदासजी के जीवन एवं उनके दर्शन को बताने वाले ग्रंथ का प्रायः अभाव था, जिससे वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को उनकी महिमा का ज्ञान हो सके। अतः प्रस्तुत पुस्तक ''बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन'' के माध्यम से उनके अलौकिक, चरित्रों एवं उनकी महिमा को जनसाधारण तक पहुँचाना इस पुस्तक को लिखने का मुख्य उद्देश्य रहा है। ''बाबा'' के बारे में जानकारी लेने वाले साधकों, भक्तों एवं जनसाधारण के लिए चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के क्यों न हों। यह पुस्तक उपयोगी एवं ज्ञानवर्धन सिद्ध होगी। ''बाबा'' की भक्ति करने वाले सभी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस पुस्तक के अध्ययन करने एवं सुनने मात्र से उन्हें बाबा के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास में वृद्धि होगी।

पुस्तक में त्रुटियाँ रहनी स्वाभाविक हैं, अतः इसमें जो भी त्रुटियाँ रही हों, उनके लिए विज्ञजन क्षमा करें और मुझे सूचित करने की कृपा करें। पाठक गणों को मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि न तो मैं विद्वान हूँ और न ही अनुभवी लेखक। एक परम संत की जीवनी एवं उनके दर्शन (आध्यात्मिक विचारों) जैसे गुरु गम्भीर विषय पर कुछ लिखना मेरे जैसे अल्पबुद्धि एवं अल्पज्ञ के लिए अनाधिकार चेष्टा ही है। लेकिन बाबा कुन्दन दास की आज्ञा एवं अपने आनन्द मण्डल के मित्रों एवं सहयोगियों के आग्रह पर जैसा हरि प्रेरणा एवं गुरु कृपा से समझ में आया वैसा लिखने का साहस किया है।

विनीत
केदार नाथ शर्मा (खूँट वाले)
लघुकाशी वैर, जिला-भरतपुर
(राजस्थान)

ॐ श्री गुरुपरमात्मेन नमः

(बाबा मनोहरदास-जीवन दर्शन)

मनोहर-महिमा

[इस भोग प्रधान संसार को "बाबा" ने अपने तप-त्याग के द्वारा यह उपदेश दिया कि यह मनुष्य जन्म भोगों के लिए नहीं अपितु आत्म कल्याण के लिए मिला है। उन्होंने संसार को अन्न जल छोड़ निर्जन वनों में जाकर कठोर तप कर सर्वथा संसार से पलायन का मार्ग नहीं बतलाया। उन्होंने संसार को यथार्थ तप एवं सच्चे त्याग का उपदेश देते हुए कहा कि अपने स्थान पर रहते हुए मध्यम मार्ग पर चलते रहने से ही उस परम् सत्य की प्राप्ति होती है।]

[जैसे एक देश (स्थान) स्थित पुष्प राशि, के सौरभ से वायु द्वारा सम्पूर्ण वन प्रान्त सुरभिव वना दिया जाता है तथा सभी दिशाएँ उसी से सुवासित हो जाती हैं। उसी प्रकार महात्मा मनोहरदास जी महाराज ने अपने तप-त्याग के प्रभाव से अपनी जन्म स्थले एवं तपोस्थली वैर लघुकाशी को ही नहीं अपितु यहाँ से दूर-दूर तक ज्ञानालोक एवं सुयश फैला दिया था।]

संसार का द्रत्येक प्राणी पदार्थ कालाधीन है।

इस चराचर जगत में हर प्राणी पदार्थ का कम या अधिक अवधि में अन्ततः विनाश हो ही जाता है इसलिए इस संसार को विनाश शील कहते हैं। "कालो हि दुरति क्रमः "उक्ति के अनुसार कोई भी काल से कवलित हुए बिना नहीं रह सकता। स्वयं जग निर्माता ब्रह्मा से लेकर सामान्य चींटी तक सभी कालक्रम से नियमित हैं अतः इस भौतिक संसारी देहदि के क्षण मंगुर सुख में वे मोहित नहीं हुए।

स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर लिखा है कि, "जो व्यक्ति सत्य को न जानकर अबोध की भाँति सन्सारिक भोग विलास में निमग्न हो जाता है उसके लिए यह समझो कि उसको ठीक मार्ग नहीं मिल सका, उसका पाँव फिसल गया है। दूसरी ओर जो व्यक्ति संसार को कोसता हुआ वन में चला जाता है, अपने शरीर को कष्ट देता है, उसे धीरे-धीरे सुखा कर मार डालता है अपने हृदय को शुष्क मरुभूमि बना देता है, अपने सभी भावों को कुचल देता है कठोर, वीभत्स व रूखा बन जाता है। उसके बारे में भी यह समझ लो कि वह मार्ग भूल गया है, राह भटक गया है। ये दोनों दो छोर की बातें हैं दोनों ही भ्रम में हैं एक इस ओर दूसय उस ओर। दोनों ही पथ भ्रष्ट हैं। दोनों ही लक्ष्य भ्रष्ट है।" (ज्ञान योग से, स्वामी विवेकानन्द)।

"बाबा" ने संसार को जो मार्ग दिखलाया उसमें मनुष्य के अपने वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, देश और वेश में कोई परिवर्तन न करने की आवश्यकता ही नहीं वरन् गीतोक्त मार्ग पर चलकर प्राणीमात्र का हित करते हुए अपने-अपने कर्तव्य कर्म का सच्चाई से

समाज को योग का मध्यम-मार्ग दिखलाया जिससे वे भोगाग्नि में अपने अमूल्य मानव जन्म की आहूति न देकर सत्य को हृदयंगम् करके एवं जीवन की नश्वरता को समझकर समाज एवं लोक कल्याण में उसे लगाएँ और अपने जीवन को सफल बनाएँ। संसार को मोक्ष का सबसे सरल मार्ग बतलाने के लिए वह एक छंद बोला करते थे–

मोक्ष मुक्ति जो चहत हौ, तजौ कामना काम।
मन इच्छा को मेटि कर, भजौ निरंजन नाम॥
भजौ निरंजन नाम, देह अभ्यास मिटाओ।
पंचन का तज स्वाद, आप में आप समाओ॥
जब छूटै झूँठी देह, जैसे के तैसे रहिया।
''चरनदास'' यह ज्ञान गुरु ने हम से कहिया॥

इस छंद में वेदान्त का सार-निहित है ''मन की इच्छा को समाप्त कर ईश्वर का जो नाम जपता है तथा मैं देह हूँ। ऐसे मिथ्या भ्रम से जो मुक्त हो जाता है, इन्द्रियों के स्वादों को तज कर जो आपे में समा जाता है, मिथ्या शरीर के छूटने पर आप स्वयं वैसा का वैसा अनुभव करता है वही सच्चा आत्मवेन्ता होता है।'' बाबा महाराज ने अपने तप, त्याग एवं साधना से आत्मनिष्ठा को प्राप्त किया था वे आज भी हमें अपने ज्ञानालोक से राह दिखला रहे हैं। उन्होंने अपने तप त्याग एवं आध्यात्मिक साधना के आलोक को चहुदिश फैलाया। यह लघुकाशी पूण्य भूमि वैर प्राचीन समय से ही संगीत, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में विख्यात रही है। यहाँ आचार्य सोमनाथ जो महाकवि सूदन के अनुज बताए जाते हैं जैसे, कवि डाँ, रांगेय राघव जैसे साहित्यकार एवं पं, लच्छीराम जी जैसे महान संगीतकारों की कर्मस्थली रही है, इसी भूमि पर लाला लच्छीराम जैसे वैद्यराज हरनारायण जैसे कविश्वर तथा पं, रामचरण चौधरी जैसे भीमकाय पहलवानों ने जन्म लिया था। यहाँ पर प्रताप दुर्ग श्वेत एवं लाल महलों, विविध देवालयों से संयुक्त आकर्षक फुलवारी के खंडहर आज भी इसके गौरवशाली अतीत की स्मृति दिखाते हैं। यह भूमि संगीत, साहित्य एवं कला की दृष्टि से ही नहीं यहाँ पर आध्यात्म, दर्शन एवं विविध सम्प्रदायों यथा शैव, वैष्णव, जैन, एवं शाक्तों द्वारा शान्तिपूर्वक अपनी-अपनी साधना पद्धतियों के माध्यम से आत्म शान्ति लाभ कमाते रहे हैं।

ऐसे ही परम-पावन परिवेश में परमात्मा की साधना में लीन होकर हमारे ''बाबा'' मनोहरदास ने आध्यात्म के क्षेत्र में एक ऐसी मिसाल कायम की जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके दिखाए मार्ग पर चलकर मानव समुदाय चाहे वह किसी वर्ण, जाति एवं सम्प्रदाय से सम्बन्धित क्यों न हो, युगों-युगों तक आत्मकल्याण एवं शान्ति का आलोक प्राप्त करता रहेगा। उनके उपदेश सीधे, सरल एवं व्यावहारिक थे लोगों को उन्होंने बड़ी ही सीधी-साधी साधना पद्धति और साधु संगत का लाभ समझाया–

दीनताई दया अरु नम्रताई दुनियां बीच।
वन्दगी से प्यार राखि भूखे को खिलाएगा॥
चार बीसी-चारि से, वचेगा तू मेरे यार।
साधुओं की संगत से तू बड़ा सुख पाएगा॥

(बाबा की वाणी)

अपने में दीनता एवं नम्रता धारण करके दुनिया में रहना, दीन-हीनों भूखे-प्यासों की यथा शक्ति मदद करना तथा नित्य नियम पूर्वक सदैव भगवद् भजन अर्थात् बंदगी में लगे रहने वाला चौरासीलाख के चक्र से मुक्त होकर परम् शान्ति को प्राप्त होगा इसमें कोई संदेह नहीं है। साधु संगत में तू अनिर्वचनीय आनंद की प्राप्ति करेगा। यह उपदेश उनका मानव समुदाय के लिए था। आगे के 18 अध्यायों में उनके जीवन एवं दर्शन से संबंधित विस्तृत वर्णन सादर प्रस्तुत है।

–लेखक

जीवन एवं दर्शन खण्ड

अध्याय 1

''औम श्री गुरु परमात्मने नमः''

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

प्रारम्भिक जीवन

तप, त्याग और वीरता के लिए प्रसिद्ध राजस्थान प्रान्त के पूर्व स्थित भरतपुर (लोहगढ़) जिले में ''लघुकाशी'' के नाम से विख्यात करया वैर में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में सं. 1952 (सन् 1894) भाद्रपद शुक्ला जलझूलनी एकादशी के दिन रात्रि के 11 बजे पुष्य नक्षत्र नें पं. श्री भजन लाल नगाइच के घर एक बालक का जन्म हुआ। पं. भजन लाल एक दिद्वान और सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति थे। जिनका घर प्रताप गंगा के उत्तरी तट पर नीम एवं दीपल के विशाल वृक्षों के बीच स्थित था। बालक का बचपन का नाम ''मूला'' रखा गया जिन्होंने आगे चलकर लघु काशी वैर को अपने तप, त्याग एवं भक्ति से गौरवान्वित किया और ''संत शिरोमणि बाबा मनोहरदास'' के नाम से विख्यात हुए।

बचपन से ही वे शान्त एवं गम्भीर स्वभाव वे थे। छोटे-बड़े सब के साथ हंसकर बोलना, किसी पर क्रोध न करना, सबकी सेवा में तत्पर रहना, हँसी मजाक से दूर रहन, एकांत में बैठकर घंटों विचारमग्न रहना ये सब उनके स्वाभाविक गुण थे। इनके पिताश्री ने इनकी शिक्षा दीक्षा की समुचित व्यवस्था की तथा स्वयं भी उनके लिए विविध विषर्चो का अध्यापन कराते थे। जैसा कि पूर्व में बताया गया है वैर जो कि ''लघु काशी'' के दान से विख्यात है, उस समय यहाँ पर अनेकों विद्वानों, महापण्डितों का शास्त्रार्थ चलता रहा करता था। आध्यात्म के विविध गूढ़तम प्रश्नों पर विचार-विमर्श होते रहा करते थे। ''श्री सीताराम जी महाराज'' के मन्दिर के आचार्य स्वामी श्री रंगाचार्य का नाम उन दिनों भारत के मूर्धन्य विद्वानों में गिना जाता था। ''कब तक पुकारुं'', मुर्दों का टीला, यई पर्वत तथा ''महामाया'' जैसे उपन्यासों और अनेकों कहानियों तथा सैकड़ों की तादाद में ग्रन्यो के रचनाकार स्वनाम धन्य श्री रांगेय राघव जैसे हिन्दी के महान साहित्यकार इन्हीं स्वानी रंगाचार्य जी के पुत्र थे। वैर का परिवेश उन दिनों साहित्य, संगीत एवं कला की दृष्टि से अपने पूर्ण यौवन पर था। ऐसे ही परिवेश में बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज की प्रारम्भिक शिक्षा- दीक्षा सम्पन्न हुई। आपको संस्कृत साहित्य ने अधिक प्रभटित किया उन्होंने अन्य सब विषयों से ध्यान हटाकर उपनिषद् और श्री मद्भगवद्गीता पर सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित किया। वे हमेशा ब्रह्म विद्या के विचार में लीन रहा करते थे। गीता का प्रभाव उनके आध्यात्मिक दर्शन पर अन्त तक देखा गया। पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ वे ''विज्ञान'' सम्पन्न हो चले थे। वेद शास्त्रों के अध्ययन से ईश्वर के बारे में प्राप्त अपरोक्ष ज्ञान को स्वानुभूति के द्वारा आत्म साक्षात्कार कर लेना ''विज्ञान'' कहलाता है। दचपन से ही इनकी सूक्ष्मदृष्टि आत्मज्ञान प्राप्ति में सहायक रही। एक ब्राह्मण में जो गुण सेने वाहिये उन सभी का इनमें पूर्ण विकास हो चला था।

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ (गी./18/42)

अर्थात् अन्तःकरण का निग्रह करना, (दमः) इन्द्रियों का दमन करना, (तपः) स्वधर्म के लिए कष्ट सहना, (शौच) बाहर भीतर की शुद्धि, (क्षान्ति) क्षमाभाव, (आर्जवम्) मन, इन्द्रियों एवं शरीर की सरलता, (ज्ञानं) शास्त्र विषयक ज्ञान, (विज्ञान) परमात्मतत्व का अनुभव तथा (आस्तिक्यं) आस्तिक बुद्धि ये नौ गुण जो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं इनमें पूर्ण रूपेण विकसित हो गए थे।

यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इनके ऊपर माता का ममता भरा साया छोटी उम्र में ही उठ गया था। असमय में माता की मृत्यु ने इनके हृदय पर वज्रणत किया। तब से ही इनके हृदय में इस संसार की असारता के अंकुर प्रस्फुटित हो जए थे। आपका ध्यान शिक्षा-दीक्षा से हटकर इस असार संसार एवं इसकी अनित्यता पर विचार करने में लग गया। जैसे वायु का तीव्र वेग नौका के मुख को फेर देता है, जैसे विशाल चट्टान से टक्कर खाकर नदी ,का बहाव बदल जाता, ठीक ऐसे ही इस अदृष्टपूर्ण घटना को देखकर ''मूला'' की चिन्तवृत्तियाँ अपने जीवन प्रवाह को क्रमशः बदलने लगी। विद्युतपात से कम्पित मनुष्य की भाँति भयभीत ये सोचने लगे, अहा! मेरी माता की भाँति सभी लोग एक-एक करके अवश्यमेव विकराल काल के गाल में चले जाएंगे। निश्चय ही मुझे भी उसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा। मृत्यु ऐसी अवश्यम्भावी है कि इससे छोटा-बड़ा, राजा या रंक कोई भी नहीं बच सकता। मृत्यु सरिता के इस घाट पर सभी को उतरना ही होगा।

दाने बीन चबाने वाले इसी घाट पर आए।

गगन ध्वजा लहराने वाले इसी घाट पर आए॥

अपने सुहृद सम्बन्धियों की असहाय विरह वेदना सभी को सहन करनी होती है। वह दुःर्दिन जीव मात्र को देखना होता है। सचमुच यह जीवन क्षण भंगुर है, जलदुद्वत् चंचल है, संध्या रागवत् अस्थिर है, पलास पत्र पर पड़े- ओस कण की भाँति चलायमान है। इनकी माता की मृत्यु क्या हुई, इनके मन मस्तिष्क में वैराग्य के विचारों का प्रवाह ही उमड़ पड़ा, जिसने इनके जीवन पथ की दिशा ही मोड़ दी। रात-दिन ये इस जीवन की असारता और क्षणभंगुरता के बारे में चिन्तन करते रहते और सोचते कि ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे जन्म मरण रूपी इस दारुण दुःख से छुटकारा पाया जा सके और मुक्ति का लाभ हो, अमर जीवन की उपलब्धि हो।

दोहा– *ये तन काचा कुम्भ है, लिए फिरै था साथ।*

ढवका लागा फुटि गया, कछु न आया हाथ॥

माता के मरणोपरांत ये उनके वियोग से उबरे भी न थे कि विधि का विधान कठिन प्रारब्ध भोग, घात के पश्चात् प्रतिघात एकमात्र सहारा इनके पिता भी इन्हें

इस संसार में सर्वथा अकेला-छोड़कर परमधाम सिधार गए। प्रारब्ध के बलवान भोग से कौन बच सकता है और जो होनहार होती है वह होके ही रहती है–

दोहा– *तुलसी जसि भवतव्यता, तैसी मिलै सहाय।*

आपुन आवई ताहि पहिं, ताहि तहाँ लै जाइ॥

अब इनके परिवार में कोई न था "एकमात्र पिता" जिनका इन्हें बड़ा सम्बल था। धीरे-धीरे मातृ-शोक से उबर रहे थे कि अब रही सही कसर भी पूरी हो गई। अपने एकमात्र प्रेमपात्र पिता की अचानक मृत्यु को देखकर उनकी आँखों से आँसू टप-टप करके गिर पड़े। उनकी ये दशा लोगों से देखी न गई। लोग करुण-कुन्दन करते हुए फूट-फूट कर रोने लगे। बालक "मूला" का धैर्य टूट गया अब वे बेसहारा थे। रोते-रोते उनकी आँखें सूज गईं। उन्होंने अपने गत सारे जीवन में इतना रोदन कभी न किया था। यह दूसरी घटना उनके जीवन में वैराग्य दावानल के संग-पवन का प्रसंग था। उनकी सम्वेग नदी का वेग बढ़ाने में महामेघ का वर्षण था, उनके विरक्ति हवन कुण्ड में घृत धारा का पात था। अब ये पूर्ण विरक्त हो गए, ऐसे कठिन समय में श्रीमद्भगवद् गीता ज्ञान का अपार सम्बल इन्हें मिला संसार की असारता एवं क्षण भंगुरता का इन्हें पक्का ज्ञान जो पहले पुस्तकीय था अब माता-पिता की मृत्यु ने उसे व्यवहारिक कर पुष्ट कर दिया उन्हें भगवान के वचन-याद आए कि–

"अनित्यमसुखं लोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम्"॥

अर्थात् "यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है, परन्तु है नाशवान और सुख-रहित, इसलिए काल का भरोसा न करके तथा अज्ञान से सुख रूप भासने वाले विषय भोगों में न फंसकर, निरंतर मेरा भजन कर"।

श्रीमद्भागवत गीता ज्ञान प्रकाश ने इनके हृदयचक्षु खोल दिये इनकी समझ में इस मृत्यु-लोक की असत् सत्ता का रहस्य अब पूर्ण रूपेण आ चुका था। उन्होंने देखा कि ये सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच मिथ्या है। यहाँ रचाई कुछ भी नहीं प्रारब्धाधीन सम्पूर्ण जीव जगत काल के गाल मे समाता जा रहा है, यह मेरी देह भी मरण धरमा है। ऐसा मन में विचार कर अमरपद प्राप्ति का और जीवन्मुक्त होने का उपाय सोचने लगे। मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि सदैव यथावत रहे, सभी को यहाँ से चले जना है। यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है जैसे-सूर्य उदय होकर अन्त में अस्त हो जाता है, कुछ समय के लिए फूल-खिलकर कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार हर चीज का आदि अंत है।

जो उग्या सो आंथवै, फूला सो कुम्हलाय।
जो चिणियाँ सो डहिपरै, जो आया सो जाय॥

महात्मा बुद्ध के जीवन में भी एक मृतक को देखकर परन वैराग्य का उदय हो गया था। तथागत जब बालक ही थे तो जयोतिषाचार्यो वे उनके पिता को यह

बतलाया कि "यह बालक या तो एक महान राजा होगा अथवा एक परम् वैराग्यवान संत"। विद्वानों की भविष्य वाणी ने उनके पिता को चिंतित कर दिया वे सोचने लगे कि बहुत प्रतीक्षा से प्राप्त पुत्र कहीं सन्यासी न हो जाए। उन्होंने तथागत गौतम की प्रारम्भिक व्यवस्था बहुत ही आकर्षक महल में की। उन्हें वैराग्य पैदा करने वाले दृश्यों से बचाया गया। रोगी, बुढ़ापा तथा मृत्यु के दृश्यों से उनको दूर रखा गया। उनके सेवकों एवं सेविकाओं में सभी सुन्दर एवं मनोहारी नवयुवक एवं नवयुवतियों को नियुक्त किया गया उनके प्रासाद के चारों ओर किसी भी प्रकार की चीख-पुकार पर पूर्ण प्रतिबन्ध रखा गया। यहाँ तक कि उनके बगीचे में से सूखे पत्तों को भी हटाकर दूर कर दिया जाता था। उन्हें किसी भी प्रकार का अभाव नहीं था। इन्हें मौत की छाया से दूर रखने के हर सम्भव प्रयास किये गए। लेकिन विधि का विधान, वे न रोक सके। जो सर्वव्यापी है उसे कब तक छुपाया जा सकता है। एक दिन गौतम बुद्ध अपने मित्र से बोले "आनन्द! यह संसार कितना सुन्दर है मेरी यशोधरा, मेरा पुत्र राहुल ये कैसे सुन्दर हैं, हमारा जीवन कितना सुखी है। क्या यह संसार इतना ही है?" आनन्द बोला– "राजकुमार यह संसार दहुत बड़ा है" आप तो एक क्षेत्र विशेष में ही निवास करते हैं।

"मैं यहाँ से बाहर का संसार देखना चाहता हूँ चलो रथ तैयार करो।" लेकिन आनन्द बोला–

"राजा साहब की आज्ञा आपको यहीं रहने की है।" राजकुमार गौतम ने कहा कि "क्या इस राज प्रासाद में मुझे बाँध कर रखा गया है? क्या मुझे बाहरी स्वतंत्रता नहीं और क्या तुम मेरे आदेश की पालना नहीं करोगे।" आनन्द विवश था, उसने रथ में राजकुमार को बिठा कर बाहरी दुनिया दिखाने की आज्ञा स्वीकार कर वैसा ही किया। रथ राजमार्ग पर ज्यों ही आगे बढ़ा तो उन्हें एक रोगी दिखाई दिया उस व्यक्ति के शरीर में व्याधि ने सारा रक्त सुखा कर पंजर मात्र कर दिया था। उसकी आकृति भयानक एवं डरावनी लगती थी। तथागत ने अपना रथ रुकवाया पूछा। "आनन्द! यह क्या है?" उत्तर मिला- "राजकुमार! यह व्याधि ग्रस्त मानव है, व्याधि के प्रकोप से यह व्याकुल हो रहा है।" राजकुमार उसे देखकर चिन्ता मग्न हो गया। उसने अपने मित्र आनन्द से पूछा यह ऐसा क्यों है? क्या कभी ये व्याधि मुझे और मेरी यशोधरा को भी हो सकती है? "क्यों नहीं?" "प्रारब्ध का भोग तो सब काहू को होय।" सारा संसार इसके प्रभाव में आता है व्याधि राजा या रंक को नहीं देखती।" ऐसा सुनते ही राजकुमार अपनी कल्पनाओं में व्याधिग्रस्त हो गया उसे अपनी यशोधरा भी उसी रूप में दिखाई देने लगी, वह दुःखी हो गया। रथ आगे बढ़ा तो रास्ते में एक बूढ़ा आदमी जिसकी कमर झुकी हुई थी, आँखें गड्ढे में धस रही थी, उसका एक-एक अंग जराजीर्ण हो गया था। उसकी एक अजीव आकृति देखकर राजकुमार ने पूर्ववत प्रश्न कर पूछा- "आनन्द देखो। वह क्या है?" आनन्द ने कहा- "राजकुमार यह भी कभी तुम्हारे जैसा सुन्दर नवयुवक था।

प्रकृति का विधान है कि प्रत्येक जीव जो पैदा हुआ वह बालक युवा अवस्थाओं को पार कर गया और जीवित रहा तो ठीक ऐसा ही हो जाता है। यह ''जरा'' (बुढ़ापा) प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की ही एक अवस्था है। आप और आपकी यशोधरा अगर पूर्णवयस्क होकर आगे जीवित रहे तो ठीक ऐसे ही हो जाएंगे।''

तथागत गौतम के कल्पनामात्र से रोंगटे खड़े हो गए उनके सुन्दर स्वर्णिम संसार की असारता का रहस्योद्घाटन हो रहा था। अपनी कल्पना में गौतम बूढ़ा हो गया। रथ आगे बढ़ाया गया तो कुछ लोग एक ठठरी को कन्धे पर उठाए हुए श्मशान की ओर जा रहे थे। गौतम ने पूछा- आनन्द! ये लोग क्या ढ़ककर ले जा रहे हैं? गौतम को उसके मित्र आनन्द ने मृत्यु का रहस्य समझाया कि प्रत्येक प्राणी, पदार्थ जो जन्म लेता है, उसका यह अन्तिम परिणाम है। अर्थात् जन्म, युवा, बुढ़ापा और उसके पश्चात् मृत्यु अवश्यम्भावी है। इनसे आज तक न कोई बचा है और न ही भविष्य में कोई बचेगा। आनन्द की वात सुनकर गौतम बुद्ध अपनी कल्पनाओं में मर गया उसका सारा सुखमई संसार मर गया। उसके पिता ने जिस जरा, व्याधि और मृत्यु के दर्शन से उसे बचा रखा था और उसे मौत की छाया से बचाना चाहा था, लेकिन जो व्याप्त है उससे कोई कहाँ तक वचेगा। आज उसकी समझ में मृत्यु का रहस्य आ चुका था। उसके हृदय में वैराग्य का अंकुर फूट चुका था, वह जरा, व्याधि से ग्रस्त होकर मर चुका था- उसे इस संसार की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति की असारता और क्षण भंगुरता का रहस्य ज्ञात हो गया। उसके सुखमय संसार का आज नाश हो चुका था। अब वे दुःखों के नाश एवं अमर जीवन की खोज के लिए सब कुछ छोड़कर निकल जाना चाहते थे। उन्होंने कहा- ''आनन्द! बस करो, मैंने वास्तविकता के दर्शन कर लिए हैं, मुझे धोखे में रखा गया अब मुझे वापिस ले चलो। उनके हृदय में परम वैराग्य का उदय हो चुका था। ठीक इसी प्रकार अपने पिता-माता के असमय (उनसे) विछोह ने ''मूला'' को बुरी तरह झकझोर दिया। उन्हें सारा संसार सूना-सूना सा दिखाई दिया। अब वे दिन रात विचार मग्न रहा करते कि इस मृत्यु व्याधि के नाश की औषधि कहाँ मिलेगी? अमर जीवन के लिए कौन-सा उपाय करना चाहिए? मुक्ति मार्ग में किस का भरोसा किया जाये?'' अन्त में उन्होंने यह पक्की धारणा बना ली कि मुक्ति प्राप्त करके ही रहूँगा और मृत्यु के मुख से छुटकारा पाकर ही रहूँगा। महात्मा बुद्धि के जीवन प्रसंग से हमने देखा कि महापुरुषों के जीवन में प्रायः इस प्रकार की घटनाएँ हुआ करती है जो उनके भविष्य निर्माण के लिए उत्तरदायी हुआ करती हैं। महात्मा तुलसीदास जी के बचपन में भी उनके सिर से माता-पिता की छत्रछाया हट गई थी। लेकिन जो प्रारब्ध को मंजूर था वही हुआ। आज इतिहास में वे अमर हो गए। ठीक यही संसार के अन्य महापुरुषों के जीवन वृत्तो को पढ़ने से जानकारी होती है कि प्रायः बड़े-बड़े संकटों से गुजरना पड़ा था महात्मा मनोहरदास जी के बचपन की इस हृदय विदारक घटना के पश्चात पाँच-दस दिन तक सहानुभूति रखने वाले लोग उन्हें ढ़ाढ़स बंधाने आते रहे लेकिन अन्त में वे अकेले थे। उनके परिवार सें अब उनके अलावा कोई न

था । उन्के पिता के समय जा उन्के पस जाय जाय करते, अब वे सब उन्का साथ छोइ गये । किसी मे ठीक ही कह है कि जब तक "बनी" होती तब तक सबी साथ देते है और जब "बनी" विगडती है तय अपना साया भी साथ छोड़ने लगता है |

"पते भि हर सजर के, साथी बहार तक हैं,
तिपटी रहेजी दुनियाम्, जय तक "बनी" रहेगी"॥

संसार की गति देखकर उनके मन मस्तिष्क में इसके प्रति वैराग्य हो चला। धीरे-धीरे अष अपने माता-पिता के शोक रो मुक्त होकर यह निर्लिप्त बवा से रहने लगे । अपने आध्यात्मिक चिन्तन में मग्न रहते । किसी मे उनके उस दु:खी जीवन में उन्का साथ् नहीं दिया । मातृ-पितृ विहीन अब ईश्वर की जीव का और उन्का झुकाव बढे लगा । उन्हें लगा कि यह संसार किसी का नहीं एक ईश्वर ही जीव का सधा सखा है । दु:खी जीवन ही जागरण काल होता है । जैसे बोध मनुष्य का पीड़ा के पश्चात् होता है, वैसा सामान्य जीवन में नहीं आज उनके हृदय में संसार के प्रति वैराग्य हो चला था । लोकिन यह उनका दृड़ वैराग्य न होकर आपात वैराग्य था जो माता और पिता की मृत्यु के कारण उत्पत्र हुआ था । शात्रों में वैराग्य के अनेक रूप बतलाए गए है यथ- पुराण वैराग्य, श्मशान वैराग्य, मर्कटयैराग्य आदि ये सभी आपात वैराग्य हैं । आपात वैराग्य का अर्थ है जो कुछ समय के लिए रहे और कुछ समय पश्चात्, न रहे वह आपात वैराग्य होता है । यह चार स्थानों पर मुख्य रूप से उत्पत्र होता है ।

चार ठौर सब नरन कें, कुछ वैराग्य चढंत ।
गर्भ-माहि शव के निकट कया-सुनत रति अन्त ॥

अर्थत् मनुष्यों को चार स्थानों पर कुछ वैराग्य देखा जाता है प्रथम जब जीव गर्भ में होता है तो उसे बहुत ही कष्ट झेलने होता हैं । माता के पेट में सिर नीचे पैर ऊपर रहते हैं और इस भयानक संकट के समय कोई बात भी नहीं पूछता रक्त, मल-मूत्र, विष्टा कीडे और कीच से घिरा हुआ जब यह गर्भ में पड़ा होता है, कोमल शरीर में जब भारी वेटना होती है तो यह सिर धुन-धुन कर रोता है । वहाँ इसे वैराग्य का उदय होता है । महात्मा तुलसीदास् जी ने अपनी विनय-पत्रिका में यह वर्णन इस प्रकार किया जया है -

तैं निज करम-डोरि दृढ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
ताते परबस परयो अभागे। ता फल गरभ-बास-दु:ख आगे॥
आगे अनेक समूह ससृति उदरगत जान्यो सोउ।
सिर हेठ, ऊपर चरन संकट बात नहिं पूछे कोउ॥
सोनित-पुरीस जो मूत्र-मल, कृमि-कर्दमावृत सोवई।
कोमल सरीर, गम्भीर वेदन, सीस धुनि-धुनि रोवई॥

विनय-पत्रिका (136-3)

उदय होता है, लेकिन जब ये जन्म लेकर गर्भ से बाहर होता है वह दैराग्य भाव समाप्त हो जाता है क्योंकि ऐसा वैराग्य दृढ़ नहीं आपात वैराग्य होता है-दूसरा वैराग्य (शव) के निकट बैठने पर होता है उसे लगता है कि इस संसार में से इसी प्रकार सबको चले जाना है, इसे श्मशान वैराग्य भी कहते हैं–

हाड़ जरै जस लाकरी, केश जरे जस घास।
सब जग जरता देखि कें, कविरा भया उदास॥

इस प्रकार ''शव के निकट'' जो वैराग्य होता है वह भी देखा जाता है कि स्थिर नहीं रहता कुछ समयोपरांत उसका प्रभाव मानव मन-मस्तिष्क से दूर हो जाता है ऐसा वैराग्य भी आपात वैराग्य की कोटि में आता है।

तीसरा वैराग्य पुराणों की कथाएँ सुनने पर कि इस वसुधा पर अनेक राजे महाराजे आये, सब इस पृथ्वी के लिए आपस में लड़ता-भिड़ते रहे, इसे मेरी मेरी कहकर अधिकार जमाते रहे लेकिन यह'' ''वसुधा काहू की न भई'' संसार की समस्त सम्पत्ति यहीं रह जाती है, जीव इसे छोड़कर असहाय की भाँति इस संसार से कूच कर जाता है। जरा-जरासी बात को लेकर दूसरे मनुष्यों की हिंसा करने वाले भोगों के संग्रह में लीन मनुष्यों को देखकर इस पृथ्वी माता को भी बड़ा आश्चर्य होता है कि ''अन्याय का सहारा लेकर धन-संग्रह एवं विभिन्न भोगों का संग्रहकर्त्ता यह नहीं जानता, कि मेरी आयु प्रायः समाप्त हो चली है, इन संग्रह किए भोगों को तू कब भोगेगा ?

हम जाने थे खाएँगें, बहुत जमी बहु-माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकरि लेगया काल॥

अतः पुराणों की कथाओं के माध्यम से जीवों को यह उपदेश दिया गया है कि जीवन अनित्य, क्षण-भंगुर है। काल का भरोसा नहीं करके हमें अवने भविष्य निर्माण में लगना चाहिए। इस पृथ्वी पर बड़े-बड़े राजे-महाराजे, बड़े-बड़े वलवान, जिन्होंने काल तक को परास्त कर दिया था। अन्त में इस वसुधा को छोड़कर चले गए तो एक सामान्य प्राणी की तो क्या सामर्थ्य कि इस पृथ्वी के भोगों को भोग सके और उन्हें अपने साथ ले जा सके। राम और कृष्ण जैसे अवतार और रावण, वाणासुर से महाबली भी जब काल के ग्रास बन गए तो और कौन ऐसा है जो इस वसुधा के भोगों को भोग सके और इस पर किए गए अपने अन्यायपूर्ण संग्रहों को अपने साथ ले जा सके। पुराणों की कथाएँ इसी बात को जीवों को समझा-समझा कर कहती हैं–

बड़ी-बड़ी सेनाओं वाले, बड़े-बड़े बहुराजे।
दिन दस अपनी बजा दुन्दुभी, भए मौत के खाजे॥

इस प्रकार की कथाएँ श्रोता के मन मस्तिष्क को झकझोर डालतो हैं। उन्हे

इस पृथ्वी पर सब कुछ स्थिर और क्षणभंगुर लगने लगता है। उसके हृदय में वैराग्य जाग उठता है। लेकिन कथा सुनकर ज्यों ही अपने घर जाता है, वह वैराग्य कपूर गन्धवत्, छूमन्तर हो जाता है। पुनः यथावत् जीवन अर्थात् भोग और संग्रह का चक्र पुनः चालू हो जाता है। यह हुआ आपात वैराग्य इसे पुराण वैराग्य के नाम से जाना जाता है।

चौथा वैराग्य "रति अन्त" में उत्पन्न होता है। नारी देह के आकर्षण ने बड़े-बड़े धीर, वीर, गम्भीर पुरुषां की मति को भी अपने रूप लावन्य के पाश में जकड़ दिया तो सामान्य प्रकार के पुरुष की क्या विसात जो उसके आकर्षण से मुक्त रह सके रामचरित मानस में कागभुसण्ड गरुड जी को समझाते हैं।

श्रीमद् बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर, का आस लागि न जाहि॥

अर्थात् कंचन कामिनी का प्रभाव और आकर्षण वहुत ही प्रभावशाली होता है। इससे संसार में कोई नहीं बच सकता। अगर कोई इनसे बचता भी है तो वह है "हरिदास" जो भगवान की कृपा से ही वचा रह सकता है। सुग्रीव अपने मित्र श्रीराम के काज को भी स्त्री और भोंग विलास में भूल गया। लक्ष्मण जी जब उसे पकड़ के लाए तो भगवान से वह बोला कि "प्रभो। मेरा कोई दोष नहीं क्योंकि–

"अतिसय प्रबलदेव तव माया"।

आपकी ये माया जो कंचन और कामिनी रूपा है, यह बड़ी ही प्रबल है मेरे जैसा निर्बल भोग लोलुप वानर इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। जो आपकी इस स्त्री रूपा माया से प्रभावित हुए बिना रह सकता है वह तो आपके सदृश्य ही हो जावेगा।

विषय वस्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पांवँर पशु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न वँधाया।
सो नर तुम समान रघुराया॥

उपरोक्त चौपाईयों का सार यह है कि सादा संसार काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत हो रहा है, देवता, मनुष्य और तपस्वी मुनि भी इन दोषों से नहीं बचे हैं। अर्थात् जिसके हृदय में "नारि नयन शर" नहीं लगे हों और जो घोर क्रोध रूपी रात्रि में भी जागता रहा हों, जिसने लोभ की फाँसी में अपना सिर नहीं फंसाया हो, ऐसा संसार में विरला हो कोई दिखाई देता है। अगर कोई ऐसा है भी तो वह ईश्वर

के तुल्य ही है यह सब-लिखने का मन्तव्य है कि नारि देह का आकर्षण पाकर मनुष्य उसके साथ रमण में प्रवृत्त होता है और रति कर्म के अन्त में उसे उस कर्म से महान ग्लानि होकर एक आपात वैराग्य उदय होता है कि मैं कितना विषयी हूँ जो नारि-देह रूपी नरक के कूप में गिर गया'' अब भविष्य में ऐसा नहीं होगा। अनेक प्रकार के दोषों का विचार करने लगता है कि मैंने किस अनर्थ में पग रखा क्योंकि स्त्री संग मनुष्य को कहीं का नहीं रहने देता–

जप तप नेम जलाश्रय झारी।
होय ग्रीषम सोखहि सय नारी॥

तथा उसे स्त्री सब दुःखों की खानि नजर आने लगती है–

अवगुन मूल सूल प्रद,
प्रमदा सब दुःख खानि।

उसे परम वैराग्य होता है लेकिन ''रतिअन्त'' का यह वैराग्य अस्थाई और क्षणिक, कुछ ही समय का होने के कारण ऐसा वैराग्य शास्त्रों में आपात वैराग्य के नाम से जाना जाता है, जो प्रायः सभी मनुष्यों को होता है। दृढ़ और स्थाई नहीं होने के कारण इसका कोई महत्त्व नहीं होता, यह एक सामान्य मानवीय स्वभाव होता है। यहाँ कोई ऐसा नहीं समझे कि ये वैराग्य पुरुषों में ही होता है, स्त्रियों में नहीं। यह तो सभी मनुष्य मात्र में उदय होता है। स्त्रियाँ इसकी अपवाद नहीं। गोस्वामी पाद तुलसीदास जी ने इस बात को अनेक स्थलों पर उजागर किया है अपनी विनय-पत्रिका के एक पद में उन्होंने एक उदाहरण दिया है कि युवती स्त्री सन्तान जनने के समय अत्यन्त असहाय कष्ट का अनुभव करती है (उस समय यह सोचती है कि अब पति का सेवन रति कर्म हेतु नहीं करूंगी) परन्तु प्रसवोपरांत कुछ समय पश्चात् वह मूर्खा सारी वेदना को भूलकर पुनः उसी दुःखदाई पति का सेवन करती है। उसे कुछ क्षण का वैराग्य कष्टोपरांत होता है लेकिन विषय सुख की कामना से वह पुनः विस्मृत हो जाता है। एक दूसरे उदाहरण में आप कुत्ते की वृत्ति को बतलाते हुए कहते हैं कि जैसे लालची (भोग-लोलुप) कुत्ता जहाँ जाता है, वहीं उसके सिर पर जूते पड़ते हैं तो भी वह नीच फिर उसी रास्ते भटकता है मूर्ख को जरा भी लज्जा नहीं आती थोड़ा भी वैराग्य नहीं होता–

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुःख उपजै।
है अनुकूल विसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजे।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहूँ न मूढ लजै॥

विनय-पत्रिका (89)

इस प्रकार पुराण शास्त्रों में आपात वैराग्य के लक्षण लिखकर यह बात स्पष्ट की गई है कि किसी की मृत्यु के आघात से उत्पन्न दुःख से पैदा हुआ वैराग्य चिरस्थाई नहीं होता। ऐसा ही बालक "मूला" के माता-पिता के स्वर्गवासी होने से उत्पन्न जो वैराग्य था। वह दृढ़ वैराग्य नहीं था। कुछ समयोपरांत सब कुछ सामान्य हो गया। पिता की मृत्यु के बाद उनको आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा। लेकिन जैसे-तैसे यह अपना समय काटते रहे लेकिन जब अर्थ संकट अधिक हुआ तो अपने कुछ साथियों के साथ पुलिस सेदा में प्रवेश कर गये। उल्लेखनीय है कि आपका कद और शरीर सौष्ठव अच्छा था सो उन्हें इस सेवा में प्रवेश में कोई बाधा नहीं आई। लोगों का कहना है कि वहाँ भी ये अधिकांश समय ईशआराधना एवं स्वाध्याय, सत्संग में ही व्यतीत करते थे। लोगों से ज्यादा मिलना-जुलना व्यर्थ के व्यसनों में समय की बर्बादी को यह ठीक नहीं समझते थे। पुलिस की सेवा और ईश आराधना के अतिरिक्त ये कुछ नहीं करते–

हरि का भजन, पेट का धन्धा।

नहीं करे सो मूरख अन्धा॥

परिश्रम की कमाई से इनकी साधना परवान पर चढ़ गई, कभी-कभी इन्हें अपनी ड्यूटी का भी भान नहीं रहता क्योंकि श्री मद्भागवद्गीता और विष्णु सहस्त्र नाम के पाठ में यह हमेशा तल्लीन रहा करते थे। भक्ति के संस्कार इनमें बचपन से ही थे, जो इन्हें इनके पिता श्री की देन थी। भक्ति और वह भी ज्ञान वैराग्य से संयुक्त। अब इन्हें पुलिस सेवा भारस्वरूप लगने लगी क्योंकि इससे इनकी हरि सेवा और ईश आराधना में विघ्न उपस्थित होते रहते थे।

इनके कुछ सम्बन्धियों ने इनसे विवाह कर लेने का प्रस्ताव किया। लेकिन इन्होंने उनसे स्पष्ट इन्कार कर दिया। क्योंकि अब इनमें पूर्ण-विवेक वैराग्य का उदय हो चुका था। विवाह कर लेने का विचार इन्होंने अपने मन से कतई निकाल दिया, लोगों ने कहा कि, तुम्हारा घर बस जावेगा, तुम्हें रोटी बनाने वाली की आवश्यकता है। लेकिन इन्होंने उन सबकी बातों को नहीं सुना।

कुछ समय और व्यतीत हुआ पुलिस सेवा चलती रही लेकिन प्रारब्ध का विधान और पुलिस का अन्न जल शायट अब पूरा हो चुका था। आराधना और श्रीमद्भागवद्गीता का अध्ययन वहाँ भी अनवरत रूप से चलता रहा। वे अपनी स्वभावानुसार सदैव गीता के ज्ञान में मग्न रहा करते थे। उन्हें पुलिस की सेवा अपने स्वभावानुसार रुचती नहीं थी। ईश्वर को भी अपने भक्तों की रुचि का ध्यान रखना पड़ता–

राम सदां सेवक रुचि राखी।

वेद पुरान संत सब साखी॥

ऐसा संयोग बन गया कि उन्हें यह क्षात्रकर्म (सिपाही कर्म) त्यागना पड़ा और योग्य गुरु की तलाश में निकल पड़े। उन्होंने उदयपुर की पहाड़ियों में स्थित एक सिद्धपुरुष श्री श्री 1008 श्री गणेशदास जी महाराज से विधिवत दीक्षा ली। ज्ञान के संस्कार जो बचपन से ही उनमें पड़ गये थे। श्री गुरुदेव की शरण में उस ज्ञान ने विज्ञान का रूप धारण कर लिया अर्थात् साधना के द्वारा उन्होंने परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया था। उन्होंने उपनिषद के ज्ञान का साक्षात्कार किया कि इस संसार में ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है जो ''है'' सो ''है''

ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किंन्च जगत्यां जगत।

तेन त्याक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात्–''अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़ चेतन स्वरूप जगत है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। इस ईश्वर के सहित अर्थात् ईश्वर को याद करते हुए, त्यागपूर्वक (उसी के समर्पण करके) इसे भोगते रहो, लेकिन इसकी इच्छा नहीं करनी है क्योंकि यह धन और भोग सामग्री किसकी है ''अर्थात् किसी की नहीं''।

करीब बारह वर्ष के उपरांत ''गुरुदेव'' पुनः लघु काशी की शोभा बढ़ाने वैर पधारे, तो यहाँ के निवासियों ने पाया कि ''हीरा'' जो पूरी तरह तराश कर गुरुदेव की कृपा से और मूल्यवान हो गया था। लघु काशी की शोभा को बढ़ाने के लिए आप पूर्ण सिद्धावस्था प्राप्त कर पधारे! यहाँ के पुरवासी उनका दर्शन करके कृतार्थ हुए जन्मभूमि पूण्यवती पवित्र हो गई–

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।

अपार संवित्सुखसागरे अस्मिल्लीनं परे ब्राह्मणी यस्य चेतः॥

(स्कन्द पुराण)

अर्थात्–''जिसका चित्त इस ज्ञान और अपार आनन्द सागर रूप परब्रह्म परमात्मा में लीन हो गया हो, उस महापुरुष से उसका कुल पवित्र हो जाता है, जन्म देने बाली माता कृतार्थ हो जाती है और उसके चरण टिकने से पृथ्वी पुण्यवती पवित्र हो जाती है।''

बाबा महाराज एक महान सिद्ध पुरुष अविनाशी और समरथ रूप में लोगों के समक्ष प्रकट हुए, धन्य हैं वे पूण्यात्मा जिन्होंने वाबा के अनोखे चरित्रों को अपनी आँखों से निहारा उनके संसर्ग और सत्संग से लाभ उठाया।

अखण्ड मण्डलाकारं, व्याप्तं येन सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

❑❑❑

अध्याय 2

।।ओम श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन

साधना हेतु प्रस्थान

सन् 1938, प्रातः ब्रह्ममुहूर्त की बेला शीतल मंद सुगन्धित पवन बह रहा है। सूर्यदेव के आगमन की सूचना पूर्व दिशा में उषा की लालिमा दे रही है। भरतपुर के प्राचीन मन्दिरों से शंखों एवं झालर घंटों का स्वर निकल कर मानवों को ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों के हृदयों में भी आनन्द का संचार कर रहा है। चिड़ियाएँ अटूट स्वर में चहक रही हैं, मानो उस प्रभात बेला में वे भी ईशआराधना में संलग्न हो रही हों। पुलिस लाईन के वीच एक संत्री अपने सम्पूर्ण लिवास में अपनी ड्यूटी पर तैनात है। उसके एक हाथ में बन्दूक है और दूसरे में एक पुस्तक है, जिसे वह बड़े मनोयोग से पढ़ रहा है। शस्त्र के साथ शास्त्र, वन्दूक के साथ पुस्तक का स्वाध्याय विचित्र संयोग। अचानक प्रातः भ्रमण हेतु पुलिस के उच्चाधिकारी का आगमन होता है, लेकिन संत्री अपने स्वाध्याय में इतना डूबा हुआ था कि अफसर के आगमन की भनक उसे न लग सकी।

"ओ मैन! यह क्या है? ड्यूटी टाइम में क्या स्टेडी करता है" अफसर ने बड़ी उत्तेजना के स्वर में कहकर संत्री से पूछा। संत्री का ध्यान भंग हुआ, देखा सामने सुपरिडेन्ट पुलिस (एस.पी.) एक गोरा चिट्ठा अंग्रेज खड़ा है? क्रोध के कारण जिसका चेहरा तमतमाया हुआ है। पहरेदार ने सर्वप्रथम सरकारी नियम के अनुसार उसे सेल्यूट किया। लेकिन उसने गर्जते हुए अपने पूर्व प्रश्न को पुनः दोहराते हुए कहा–

मैनः यह क्या पढ़ता है ?

"यह हमारा धर्मग्रंथ है, प्रभात की वेला में स्वाध्याय कर रहा था।"

सिपाही ने दड़ी नम्रता और निर्भीकता से उस अफसर को उत्तर दिया।

"नो, ड्यूटी टाइम में यह नहीं चलेगा। (ड्यूटी इज ड्यूटी) अंग्रेज अफसर अनेको उलूल-जलूल बातें अंग्रेजी में कह रहा था।

"यह नही चलेगा तो यह भी नहीं चलेगी, कहते हुए संत्री ने बन्दूक उसके सानने जमीन पर फेंक दी और अपनी संत्री की पोशाक को उतार फेंका, देखते-देर ते चलता वना–

ताजियेमनहरि विमुखन का संग
जाके संग कुवुधि उपजत है, परत भजन में भंग"

जहाँ कर्म के साथ धर्म नहीं वह तो कल्याणकारी कार्य नहीं उस कार्य को कभी नहीं करना चाहिए।

अंग्रेज अफसर हतप्रभ रह गया। जीवन में पहली बार ऐसे सिपाही को देखा जिसने एक पुस्तक की खातिर अपनी नौकरी को दांव पर लगा दिया।

आखिर उस पुस्तक में ऐसा क्या है जिसके नशे में अपनी ड्यूटी को अपने अफसर को तथा कानून को कुछ नहीं समझता हुआ चुनौतीपूर्वक चला गया। यह जानते हुए कि इस प्रकार बिना इजांजत के शस्त्र फेंकना तथा पुलिस की वर्दी की मन-हानि करना कानून की दृष्टि से कितना बड़ा संगीन जुर्म है।

अंग्रेज अफसर ने अपने कार्यालय में जाकर उक्त सिपाही के वारंट निकालते हुए अपने अन्य सिपाहियों को आदेश दिया कि उरो तुरन्त हिरासत में ले लिया जाये। चारों तरफ घटना विजली की गति से फैल गई। लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि 'मूला' जैसा अनुशासित सिपाही जो इतना कर्मठ एवं धर्म प्रिय था, आखिर क्यों इतना उत्तेजित हुआ। चारों और तलाशी के वाद भी उस सिपाही का कोई पता नहीं चला। वह उस ओर चला गया, जहाँ उसे जीवन का वास्तविक आनन्द लेना था।

यह संत्री और कोई नहीं हमारे गुरु देव वावा श्री मनोहरदास ही थे। उन्होंने अनुभव किया कि जिस कर्म के साय धर्म नहीं उस कर्म को तुरन्त त्यागकर धर्म साधना हेतु प्रस्थान करना चाहिए। वे उस प्रातःकाल की वेला में स्नान करके अपनी ड्यूटी पर तैनात थे और नित्य नियमानुसार गीता का स्वाध्याय भी कर रहे थे–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु माममनुस्मर युध्यच।
मध्यर्पित मनो वुद्धिर्माम वैष्यस्यसंयम्''

(आठ/सात/गीता)

श्रीमद् भागवद् गीता ने आपको यह संदेश दिया था कि समय को अमूल्य समझते हुए हर समय भगवान का स्मरण करते हुए, मनुष्य को भगवान की आज्ञानुसार कर्मों का आचरण करना चाहिए। यही गीता का सिद्धान्त है। उपर्युक्त श्लोक जिसमें भगवान अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं कि–''अर्जुन! तू सव समय निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध (कर्म) भी कर इस प्रकार मुझ में अर्पण किये हुए मन वुद्धि से युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'' (8/7)

भगवान् ने कर्म और धर्म दोनों को ही आवश्यक वतलाया है। जिस कर्म के साथ धर्म नहीं वह ''कर्मयोग'' के अन्तर्गत नहीं आता। वह थोथा कर्म है व्यर्थ का परिश्रम मात्र है। वावा महाराज ने गीता के वास्तविक तात्पर्य को हृदयांगम किया था। उन्हें देवयोग से ही सिपाही की नौकरी करनी पड़ी लेकिन–

तेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और।
उसके मन की हौन दे, वृथा मचावै सोर॥

एक ब्राह्मण का सहज धर्म वेद अध्ययन ''पठन पाठन'' है पुलिस का सिपाही बनकर किसी साहब की कोठी पर संत्री का कर्म एक ब्राह्मण का सहज धर्म न होकर

परधर्म ही है, उसका धर्म तो गीता के अनुसार एक ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

(18/42 गीता)

अर्थात् (शमः) अन्तःकरण का निग्रह करना (दमः) इन्द्रियों का दमन करना (तपः) धर्म के लिए कष्ट सहना, (शौचम्) वाहर भीतर की शुद्धि (क्षान्तिः) क्षमाभाव मन इन्द्रियों और शरीर में सरलता शास्त्रविषय ज्ञान, (विज्ञानम्) परमात्मतत्व का अनुभव, तथा (आस्तिक्यम्) आस्तिक वुद्धि यह नौ गुण ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म है। वास्तविकता यह है कि प्राणी जन्म जन्मान्तरों में जो कर्म करता है उनके संस्कार उसके हृदय में स्थित (हिता) नामक नाड़ी में संचित हो जाते हैं। इन संस्कारों से ही जीवों का (स्वभाव) बनता है। स्वभावानुसार ही प्राणियों के अन्तःकरण में सत्व, रज और तम् इन तीनों गुणों की वृत्तियाँ उत्पन्न होती है। मृत्यु ये गुणों की वृत्तियाँ ही जीवों का ब्राह्मण आदि वर्णों में उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होती है।

जिसके स्वभाव में सत्वगुण की अधिकता होती है उसका जन्म ब्राह्मण दर्ण में होता है और उसके स्वाभाविक कर्म शमदमादि बतलाये गये है। जिसका स्वभाव सत्वमिश्रित रजो गुण प्रधान होता है वह क्षत्रिय वर्ण में उत्पन्न होता है, उसके स्वाभाविक कर्म–

शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमाश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ (18/43)

अर्थात शूर वीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में न भागना, दान देना और स्वाभिभाव (शासन के द्वारा लोगों को अन्यायावरण से रोककर, सदाचार में प्रवृत्त करना, दुराचारियों को दण्ड देना, समस्त प्रजा को हित सोचकर निःस्वार्थ भाद से प्रेमपूर्वक पुत्र की भाँति उसकी रक्षा और पालन पोषण करना) ये उपरोक्त क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। ये सात कर्म क्षत्रिय में होते हैं। जिसके स्वभाव में तमो मिश्रित राजगुण अधिक होता है वह वैश्य होता है, उसका स्वाभाविक कर्म-

कृषिगौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभाजम्।

अर्थात् वैश्य का स्वाभाविक कर्म कृषि व्यापार एवं गौ पालन है। जिनके स्वभाव में रजोगुण के साथ तमोगुण का वाहुल्य होता है वह प्राणी शूद्र वर्ण का होता है, उसका स्वाभाविक कर्म तीनों की सेवा करना है।

परिचर्यात्मक्रं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥

इस प्रकार एक ब्राह्मण का कर्म, शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमाभाव, नन एवं इन्द्रियों की सरलता, ज्ञान (शास्त्र विषयक बोध) एवं विधान अर्थात् परमात्म तत्व

का वास्तविक अनुभव होना, तथा सच्ची आस्तिकता होता है। अपने वर्ण धर्मों के विकास में पुलिस सेवा सहायक नहीं हुई। अतः उसे अपने श्रेय मार्ग में बाधक जानकर इन्होंने उसका परित्याग कर दिया। इनके इष्टग्रन्थ श्रीमद् भागवद्गीता ने इन्हें स्पष्ट निर्देश दिया है कि–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ (18/47 गीता)

अर्थात्–अच्छी तरह से अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ होता है। कारण कि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता। अतः क्षात्र कर्म को इन्होंने त्याग कर अपने वर्ण धर्म की उन्नति एवं अपनी साधना को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। अपने जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं ने इस संसार के प्रति इनके आकर्षण को सर्वथा समाप्त कर वैराग्य के बीज बोए थे। वे अब अंकुर के रूप में प्रस्फुटित होने लगे। अब ये योग्य गुरु की तलाश में इधर-उधर भटकने लगे। इन्हें ऐसे पथ प्रदर्शक की आवश्यकता थी जो इन्हें इस असार संसार को छुटकारा दिला सके। जो आवागमन के चक्र से पीछा छुड़ा सके। शास्त्र विषयक पुस्तकीय ज्ञान से युक्त अनेकों साधु-सन्यासियों से उनका सत्संग हुआ लेकिन इनकी वास्तविक जिज्ञासा को कोई शान्त न कर सका। इन्हें सच्चे तत्ववेत्ता ब्रह्मनिष्ठ गुरु की तलाश थी, जो इन्हें आत्म तत्व का बोध करा सकें। ये कुछ समय अनेक साधुओं कर्म-काण्डियों और अनेक प्रकार की तन्त्र-मन्त्रं की साधना करने वालों के संसर्ग में आते रहे। लेकिन इन्हें श्रुति सम्मत श्रेष्ठ पुरुष की खोज थी जो स्वयं ब्रह्मवेत्ता हो और ब्रह्मानन्द रूपी परम सुख के दाता हों, जो अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने में सूर्य प्रभासम ज्ञान के दाता हों।

श्रुतियाँ इसी प्रकार के सद्गुरु की शरण जाने का उपदेश करते हुए कहती हैं–

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

(कठोपनिषद्)

"जन्म जन्मान्तर से अज्ञान निद्रा में सोये हुए मनुष्यों! उठो, परमात्मा के अनुग्रह से यह दुर्लभ मनुष्य देह मिला है, इसे पाकर एक क्षण भी प्रमाद में मत खोओ। शीघ्र सावधान हो जाओ। श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उजके उपदेश द्वारा अपने कल्याण मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो। परमात्मा का तत्व बड़ा गहन है उसके स्वरूप का ज्ञान उसकी प्राप्ति का मार्ग महापुरुषों की सहायता और परमात्मा की कृपा के बिना वैसा ही दुस्तर है, इस प्रकार छुरे की तेज धार पर चलना। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमतापूर्वक पार होने का सरल उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बतला सकते हैं जो स्वयं इसे पार कर चुके है।"

कहते हैं कि जब शिष्य में पक्की लग्न जागती है तो गुरुदेव स्वयं प्रकट हो जाते हैं। उन्हें उदयपुर के जंगलों में स्थित प्राचीन तपोस्थली में श्री श्री 1008 श्री गणेशदास जी महाराज के दर्शन हुए। उनके दर्शनों से लगा कि जिस ज्ञानपुन्ज की इन्हें तलाश थी वह इन्हें मिल गया। इन्होंने श्री गणेशदास जी महाराज से विधिवत दीक्षा ले ली। अब इनका नाम मूला के स्थान पर "श्री मनोहरदास" हो गया।

शास्त्रों से ज्ञान प्राप्ति हेतु जो आट अन्तरंग साधन कहे हैं उनमें से अधिकांश इनमें विद्यमान थे। गुरुदेव न एक योग्य शिष्य की प्राप्ति कर प्रसन्नतापूर्वक इन्हें योग के गूढ़तम रहस्यों को समझाया तथा साधना हेतु आवश्यक निर्देश देकर इन्हें अपने पास ही रख लिया। लगभग 12 वर्षों तक अपने गुरुदेव के समीप रहकर इन्होंने आत्म साक्षात्कार किया। अन्त में पूर्ण ब्रह्म निष्ठा को प्राप्त कर पुनः अपनी जन्मस्थली छोटी काशी वैर पधार अपनी शेष आयु के दिन इन्होंने अपनी तपोस्थली छोटी काशी में ही व्यतीत किये, अपने श्रद्धालुओं, भक्तों को ये अपनी अनोखी वाणियों द्वारा आध्यात्म विषायक ज्ञान दिया करते थे। लेकिन जब अल्पज्ञतावश जब वे नहीं समझते तो यह कह दिया करते कि "गुरु का ज्ञान न्यारा है तू समझता नहीं भला।" वास्तव में इनके गुरुदेव का जो गूढ़ ज्ञान था वह समझ से परे की चीज थी।

मोक्ष मुक्ति जो चहत हो, तजो कामना काम।
मन-इच्छा को मेटि कर, भजो निरंजन नाम॥
भजो निरंजन नाम देह अभ्यास मिटाओ।
पंचन का तजि स्वाद, आपमें आप समाओ॥
जब छूटहि झूंठी देह, जैसे के तैसे रहिआ।
चरनदास यह ज्ञान गुरु ने हम से कहिआ॥

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरि ॐ तत्सत्

अध्याय-3

"ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः"

बाबा मनोहरदास, जीवन दर्शन

सहज साधना के सोपान

हुजूर महाराज बाबा श्री मनोहरदास जी के आचरण व्यवहार एवं वाणियों को ध्यान से देखने पर हम पाते हैं कि उन पर निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयीशाखा के प्रधान कवियों जैसे कबीर, नानक देव, सुन्दरदास मलूकदास और दादूदयाल आदि का प्रभाव दिखाई देता है। ईश्वर को वे रंगरूप विहीन मनबुद्धि से परे, अनुभवगम्य, घट-घट का वासी मानते थे। निर्गुण धारा, भारतीय ब्रह्मज्ञान और योग साधना के साथ उनके विचार एकेश्वरवादियों से मेल खाते थे। उन्होंने अपनी गूढ़-वाणियों के माध्यम से हमें यह उपदेश किया कि हमारी उपासना पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती है, लेकिन उनके द्वारा प्राप्त होने वाला ईश्वर अलग-अलग नहीं। उन्होंने विभिन्न धर्मावलन्दियों को आपसी मतभेद भूलकर सच्चे साधकों के गुणों को अपनाने की वात समझाई–

दोहा– *दया गरीबी बन्दगी समता शील स्वभाव।*

ऐते लक्षण साधु के कहै कबीर विचार॥

कबीर साहव के इस दोहे को वह साधुता के लक्षणों एवं सच्ची मानवता के गुणों हेतु आदर्श वतलाया करते थे। उनके अनुसार प्रत्येक मानव में ये लक्षण होना धर्म एवं समाज के लिए आवश्यक है। बिना दया के न मानव-मानव कहलाने का अधिकारी है और न संत-संत ही, क्योंकि सभी दीन-दुःखी लोगों पर दया करके उनको सम्वल प्रदान करना ही सच्ची मानवता है और सच्चा धर्म भी–

जहाँ दया तहँ धरम है, जहाँ लोभ तहँ पाप।

जहाँ क्रोध तडँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

अतः गुरुदेव मानव मात्र के लिए (दया) भाव को धारण करना मानवता एवं धर्म के लिए एक अपरिहार्य गुण मानते थे। उनके जीवन वृत को देखने से हमें यह ठीक प्रकार से समझ में आता है कि उनके हृदय में मानव-मात्र ही नहीं जीवमात्र के प्रति दवा भाव कूट-कूटकर भरा था। दया के साथ गरीबी (नम्रता) बन्दगी (उपासना) और सभी वरिस्थितियों में (सम) रहना उच्चकोटि के मानव की पहचान है। मनुष्य (नाम) या "पद" से बड़ा नहीं होता। उसके अन्दर बड़प्पन के उपर्युक्त सभी गुण होना आवश्यक है। जिस व्यक्ति से जीव मात्र को सुख नहीं मिले वह समाज के लिए किसी काम का नहीं। "गरीबी" का तात्पर्य वे मनुष्य की अहंकार रहित-वृत्ति

को वतलाया करते थे क्योंकि अहंकारी के द्वारा जो दया और परोपकार आदि कर्म देखने को मिलते हैं उनके भी वह मात्र आत्म प्रदर्शन और अपने अहं की तुष्टि है। समाज सेवा के वहाने अपने सद्गुणों का प्रचार कराकर अपने को महात्मा दिखाना, समाज सेवक दिखाना ही उसका उद्देश्य होता है। अतः दया परोपकार आदि गुणों के साय नम्रता (गरीबी) होना वे बहुत आवश्यक मानते थे। संसार में नर्मता (लघुता) जिसमें जितनी मात्रा में होगी वह उतना ही महान् होगा और जिसमें इस गुण की कमी होगी या दूसरे शब्दों में जो इन्सान अहंकारी होता है, उसे समाज नफरत (घृणा) करता है। एक अन्य उदाहरण में आप कहते थे–

दो.– *सबते लघुताई भली, लघुता ते सब होय।*

जब दुतिया का चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥

अर्थात् ''लघुता'' ही मानता का प्रतीक है। समाज और साधु समाज में वे ही लोग सम्मान के पात्र होते हैं, जिनके अन्दर अन्य गुणों के साथ-साथ अहंकार शून्यता भी होती है।

''दया, गरीबी, बन्दगी, समता शील स्वभाव''

इन छः लक्षणों में तीसरी बात और विशेष महत्त्वपूर्ण बात जिस पर हुजूर महाराज विशेष जोर दिया करते थे और आपने तो अपने जीवन में उसे पूरी तरह से अपना ही लिया था। वह बात थी वन्दगी अर्थात् ईश्वर की अखण्ड आराधना, उसके नाम का जप, उसका ध्यान, (भजन) वे हमेशा अपने मन को अर्न्तमुखी करके उस परमेश्वर के भजन ध्यान में लगाए रखते थे। उनके समकालीन लोगों (भक्तों) से मैंने जितने भी साक्षात्कार किये उन सभी ने प्रायः एक बात जरूर बतलाई कि (हुजूर बाबा हमेशा) ओंम सोहं, शिवोहं, सोहं, का प्रत्येक क्षण प्रति सांस जप में लीन रहा करते थे। उन्होंने अपने मन प्राण और बुद्धि को अपने (इष्ट) में, जो अलख पुरुष अविनाशी और घट-घट का वासी था, लगा दिया था। उन्होंने ऐसा करके स्वयं को उसी में एकाकार कर लिया था, वे स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो गये थे।

उन्होंने हम सवके लिए मानो अपने कर्म द्वारा यह उपदेश किया कि कोरी धर्म- कर्म की वातें करने से, ही हम उस परम तत्व को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हमें उसके लिए अपने को सम्पूर्ण रूपेण समर्पित करना होगा। उसकी सच्चे दिल से आराधना करने और दिखावे से दूर रहने से ईश्वर जो नित्य प्राप्त है ही, हमेशा हमारे अंग-संग होता है, सच्ची लग्न से सच्चो मकि से हमारी इच्छानुसार हमें (मनचाहे रूप में) प्राप्त होता है। उन्होंने अपनी साधना के सिद्धावस्था प्राप्त कर हमें यह उपदेश किया कि अगर हम ''बन्दगी'' (भगवान का भजन) सच्ची लग्न से करें और उसमें कोई प्रकार की लापरवाही न आने दें तो ईश्वर'' हमें सहज ही प्राप्त हो जावेगा।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।

प्रेम से प्रकट होय मै जाना॥

अर्थात् ''बन्दगी'' हो और उससे प्यार किया जावे तो हमें उसकी प्राप्ति में विलम्ब नहीं अपने एक मनपसन्द पद में आप कहा करते कि–

दीनताई दया और नम्रताई दुनियाँ बीच।

बन्दगी से प्यार राखि भूखे को खिलाएगा॥

अर्थात्–नम्रता (दीनता) दया, के साथ अहंकार शून्यता का भाव अपने हृदय में धारण करके जो ईश्वर की वन्दगी करता है, साथ ही भूखे-प्यासों, दीन-हीनों की अपनी शक्ति सामर्थ्यानुसार नदद करता है। वही ईश्वर को प्यारा होता है। ईश्वर (भगवान) ऐसे पुरुष की हमेशा हर क्षण दर्शन देते रहते हैं। अर्थात् ईश्वर का वास सदैव उसके हृदय में रहता है। अहंकारी मनुष्य से ईश्वर वहुत दूर रहता है क्योंकि उसमें आत्न प्रशंसा और आत्म-प्रदर्शन भाव सर्वाधिक रहता है। चाहे संसार के समस्त गुण उसमें हों और सभी शास्त्रों को उसने कंठस्थ किया हुआ हो। अनेक प्रकार के कर्म काण्ड को विधि का ज्ञाता होने पर अगर उसमें ''दीनता'' और नम्रता के गुणों का अभाव है तो ईश्वर की दृष्टि में वह प्राणी कोई महत्त्व नहीं रखता उसकी दृष्टि से वह परम् अछूत और अस्पृश्यनीय है।

लाख ज्ञान उर में वसा, यदि कछू अभिमान।

भोजन के भण्डार में, मल की छींट समान॥

अनेक प्रकार के सद्गुणों और ज्ञान के भण्डार पुरुष में यदि लेशमात्र भी अहंकार (अभिमान) है तो वह ठीक उसी प्रकार से तजनीय है, जैसे अनेक प्रकार के पाक-शास्त्र में कुशल और चतुर रसोईयों द्वारा पवित्रता के साथ बनाया हुआ भोजन जरा सी ''मल'' की छींट से अपवित्र हो जाता है। ठीक उसी प्रकार अहंकार मनुष्य के सभी ज्ञान और गुणों का भक्षण कर जाता है। अतः साधकों के लिए ''हुजूर महाराज'' ने अपने जीवन से यह शिक्षा दी कि मनुष्य को हमेशा ''नम्रता'' धारण करके ही रहना चाहिए।

''बाबा साहब'' ने अन्य संत कवियों की भाँति छुआछूत, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच की भावना, वर्ण एवं जाति भेद को समाज से दूर करने का व्यावहारिक ज्ञान दिया। वे इन सबको मानवता के विरुद्ध किया गया अपराध ही मानते थे। अपने जीवन में उन्होंने इन सब बातों को कतई स्थान नहीं दिया था। प्रत्यक्षदर्शियों एवं भक्त भोगियों द्वारा सुनाए गए संस्मरणों से यह वात स्पष्ट दिखाई देती है कि उनकी दृष्टि समतापूर्ण थी। ऊँच-नीच छुआ-छूत तथा अस्पृश्यता उनके व्यक्तिगत जीवन में कही भी दिखाई नहीं देती थी। जेसा कि मैंने संस्मरणों के वर्णनों में लिखा है कि- एक बार एक हरिजन की लड़की से उसकी डलिया में से रोटी माँग कर खाने लगे तथा एक नाली जाति की

लड़की से जो कि अपने पिता को ''बाग'' पर रोटी देने जा रही थी, एक रोटी लेकर खाने लगे। इन सभी से यही निष्कर्ष निकलता है कि आपकी दृष्टि में कोई भेदभाव नहीं था। उनका धर्म मानव धर्म था। मानव मात्र में उनकी सम दृष्टि थी। बाह्य भेदों को उन्होंने कभी भी मान्यता प्रदान नहीं की। वर्ण एवं जाति भेद से वे सर्वथा मुक्त थे। सच्चे भाव वाला इन्सान, जो सीधा सरल भाव युक्त होता उन्हें बहुत भाता। उसका बड़ा ही सम्मान करते, तथा बाहरी दिखावे वाले छली-कपटी, अहंकार, व्यक्ति से वे उदासीन रहते थे। भगवान का भी कथन है–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

सहज साधना पर जोर-

हमारे पूजनीय गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने सहज साधना का मार्ग अपनाया। उन्हें जीवन में आडम्बर पसन्द नहीं था। सरल और सादगी पूर्ण और रहनी-सहनी पर उन्होंने बल दिया। धर्म एवं समाज दोनों क्षेत्रों में व्याप्त पाखण्डों का उन्होंने संतों की तरह ही बहिष्कार किया। उन्होंने बतलाया कि ईश्वर की आराधना के लिए किसी भी बाहरी स्वांग की आवश्यकता नहीं है। बाह्य आडम्बरों तिलक छापा, तीर्थ-यात्रा एवं अन्य बाहरी आचारों को उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया। उनके जीवनवृत्त से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए हमें न तिलक छापे की आवश्यकता है न कपड़े रंगने की। सहज स्वाभाविक ढंग से निश्छल और सरल जीवनयापन करते हुए दया, गरीबी, बन्दगी तथा समता, शील आदि गुणों को अपने हृदय में धारण करके जो इन्सान जीव मात्र की सेवा में तत्पर रहता है। ईश्वर उसके अंग-संग साक्षात रहता है। हमारे जीवन में जितना अधिक वनावटीपन होगा जितना अधिक बाहरी आडम्बर होगा, जितनी मात्रा में आत्मप्रदर्शन का भाव होगा हम ईश्वर से उतने ही दूर होंगे। हम क्या आराधना करते हैं, हम क्या जप करते हैं हम कौन का शुभ-कार्य करते हैं, इन सवका किसी को पता नहीं लगना चाहिए। हम अपनी आध्यात्म साधना हरि भजन, या योग साधना को जितना गुप्त रखेंगे हमें उतनी ही शीघ्र सिद्धि प्राप्त होगी। साधना की गोपनीयता पर ही उसकी प्रगति निर्भर है। साधना का उद्देश्य अगर प्रभु प्राप्ति है तो उसमें गोपनीयता परमावश्यक है। क्योंकि उसके प्रदर्शन से अहंकार का तुष्टीकरण ही होगा और हमारी ईश्वर से दूरी बढ़ जाएगी। ईश्वर (भगवान) हमारे घट-घट की जानन हारा है उसके लिए साधना गुप्त ही होनी चाहिए।

चौपाई– **प्रभु जानत सब विनहिं जनाएँ।**

कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥

भगवान तो बिना प्रदर्शन के भी हमारे अन्तःकरण के भाद कुभावों को जानने

वाला है हमें वाहरी आडम्वरा और क्रियाओं के विस्तार को क्या आवश्यकता है। हुजूर महाराज ने हमें साधना का मार्गदर्शन करते हुए समझाया कि साधना सहज स्वाभाविक ढंग से गुप्त रूप से करनी चाहिए, तभी हमें इष्टदेव के दर्शन हो सकते हैं।

साधना का उद्देश्य यदि लोक मान्यता प्राप्त करना ही है तो उसका प्रदर्शन करना आवश्यक है। जितना हम अण्नी साधना क्रियाओं और वातों का प्रदर्शन करेंगे संसार में ज्ञानी ध्यानी और साधक के नाम से विख्यात हो जाएंगे। लेकिन इस प्रकार के व्यक्ति को ईश्वर की प्राप्ति तीनों कालों में भी सम्भव नहीं। उसके लिए उसे साधना का गापन परम आवश्यक है। संसार में साधना का प्रदर्शन तप का प्रदर्शन, ज्ञान का प्रदर्शन करना साधकों का नहीं ठगों का काम है। जो अपनी क्रियाओं और पद्धतियों के प्रभाव से समाज में अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इस प्रकार के लोगों की अन्त में दुर्दशा, दुर्गति एवं पतन ही होता है। रामचरित मानस में कहा गया है कि–

''लोकमान्यता अनल सम,
करतप-कानन दाह''।

अर्थात् लोक मान्यता तपस्या रूपी जंगल को जलाने हेतु आग के समान होती है। अतः तपस्वियों, साधकों और भक्तों को साधान करते हुए हमारे गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री वावा मनोहरदास जी महाराज ने सहज योग युक्ति द्वारा गोपनीय साधना करके आत्म प्रदर्शन, लोक मान्यता से दूर रहने का उपदेश दिया था।

उन्होंने सम्पूर्ण विषय भोगों को त्याग कर अभिमान रहित होकर बिना किसी प्रदर्शन के अपने सहज योग का साधना को पूर्णता पर पहुँचाया था। उनके ''गुरु का ज्ञान न्यारा'' था। जो ज्ञान था वह इतना गोपनीय रखा कि भाग्यवान साधकों के अलावा कोई उसे न समझ सका न जान सका। इन पंक्तियों का लेखक उनकी महिमा का वर्णन करने में अपने आपको सर्वथा अल्पज्ञ समझकर संकोच के साथ हुजूर की महिमा का वर्णन करने में अपने आपको अधिकारी मानता है। क्योंकि जिसके चरित्र और गुणों को कोरे कागज पर लिखने का मैं दुस्साहस कर रहा हूँ। उन तक न मेरे मन की पहुँच है न वृद्धि ही की, और न मेरी यह लेखनी उनके महान व्यक्तित्व को उनकी साधना को, और न ही उनकी महिमा की लिखने की शक्ति रखतो है। मुझ से पूर्णवतीं कवियों ने भी हुजूर की महिमा का वर्णन अपने छन्दों में किया है। हमारे पूजनीय स्वर्गीय पं श्री नत्थीलाल जी (चौवे) ने अपने एक छंद में हुजूर की नहिमा कां वर्णन इस प्रकार किया है–

ओ३म् ओ३म् जपते थे, धूनी सदां रमते थे,
अलल पुरुष मूर्ती का, एक ज़वर नारा था॥

साधा था पूर्ण योग, त्यागे थे विषय भोग,

तुमने मोह-लोभ प्रदल, शत्रुओं को मारा था॥

योगी यती, जती सती, काहू को न पहुंची मती,

अलबेले गुरु का, छिपा हुआ ज्ञान न्यारा था।

बाबा मनोहरदास, वस्ती कर सूनी गये,

संत मण्डली का यहाँ चमकता सितारा था॥

इस प्रकार हमारे आराध्य गुरुदेव, प्रातः स्मरणीय श्री मनोहरदास जी ने अपने अनुभव ज्ञान द्वारा विशुद्ध मानदता को आधार बनाकर हमें सहज साधना पद्धति का व्यावहारिक ज्ञान दिया। उन्होंने साधकों को वे महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये जिससे किसी समाज और देश के का चाण के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता का और जीव मात्र का हित हो। धन्य है वे साधक भक्त और उनके अनुयायी जिन्होंने आपके बतलाए मार्ग पर चलकर सर्वजन हिटाय और सर्व जन सुखाय के, महान लक्ष्य की प्राप्ति की, तथा इस धरा धाम'' छोटो काशी वैर को गौरवान्वित किया।

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्

□□□

अध्याय-4

।।ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास, जीवन-दर्शन

गुरु वन्दना

ॐ गुरुदेव ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप,
आनन्द दाता कल्याणकारी।
अग्नि में, ज्योति में, प्रकाश में,
अजर-अमर अवनाशी।
घट-घट के वासी॥
निराकार निर्विकार
सर्वाधार अन्तर्यामी,
अलख-निरंजन भवमय भंजन,
संकट मोचन भय हारी॥
देवेश्वर योगेश्वर
प्रणेश्वर परमेश्वर,
ईश्वर॥
ॐ गुरुदेव-ब्रह्म, सच्चिदानंद आनन्दकंद
भगवन नमो नमः॥

दोहा– *गुरु मूरत मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।*
अष्ट प्रहर निरखत रहो श्री गुरु चरनन की ओर॥

अपने गुरुदेव को ''ब्रह्मस्वरूप''मानकर यह प्रार्थना हुजूर बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज स्वयं बोला करते थे। इसके बाद बाबा के शिष्य श्री नारायणदास जी एवं श्री कुन्दनदास जी भी गुरुदेव की पूजा के समय यही प्रार्थना बोला करते थे।

इस प्रार्थना से बाबा श्री मनोहरदास के अध्यात्म दर्शन की कुछ झलक मिलती है। वे ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप के उपासक थे। उनके मतानुसार वह सत् चित एवं आनन्द स्वरूप है तथा घट-घट का वासी है, संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ ईश्वर का वास नहीं हो। ईश्वर का कोई आकार नहीं वह निराकार

है और संसार के जितने भी घट-घटादि पदार्थ हैं उन सब में समान रूप से वह व्याप्त हो रहा है। इस संसार और शरीरों में जो जन्म-मृत्यु वृद्धि और बुढ़ापा आदि विकार तथा काम, क्रोध, मद, मत्सर लोभादि जो विकार देखने को मिलते हैं उन विकारों का ईश्वर में सर्वथा अभाव है इसलिए वह निर्विकार है। वह तत्व स्वसंसार का आधार है अखिल ब्रह्माण्ड उसके अन्दर उसी प्रकार स्थित है जैसे गूलर के वृक्ष पर सहस्त्रों फल लटके रहते हैं अतः ईश्वर को ''सर्वाधार'' कहा गया है। दूसरे शब्दों में सब कुछ उसके अन्दर है और 'वह' सबके अन्दर व्याप्त है, इसलिए उन्हें ''अन्तर्यामी'' कहा गया है। गुरुदेव, ब्रह्म के जिस रूप से अधिक प्रमाणित दिखाई देते हैं वह ''अलख निरंजन'' रूप। अलख शब्द का अर्थ है जिसे देखा न जा सके या जो इन चर्म चक्षुओं का विषय न हो, जिसे इन माया कृत नेत्रों द्वारा न देखा जा सके और ''निरंजन'' शब्द का तात्पर्य है - निः + रंजन जो माया से पूर्णतः परे हो जहाँ प्रलय महाप्रलय की भी पहुँच न हो, अर्थात् माया से रहित एकमात्र शुद्ध ब्रह्म। जब कुछ नहीं था तब भी ''निरंजन'' शेष था। अतः इस पद से ब्रह्म की सर्व उपाधियों से रहित स्थिति का वर्णन है। गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज अकसर एक प्रार्थना का पद और भी गुनगुनाया करते थे।

निरंजन को नमस्कार,
नमो गुरुदेव को,
गनपति और फन पति,
सरस्वती जी को प्रणाम है॥''.....

इस पद में भी सबसे प्रथम ''निरंजन'' को नमस्कार किया जाता है और उस निरंजन तत्व के प्रथम साकार रूप गुरुदेव को द्वितीय नमस्कार है लेकिन यहाँ यह भ्रम नडीं पाल लेना चाहिए कि गुरुदेव का स्थान गौण है। वास्तविकता यह है कि जो तत्व ''निरंजन'' माया से रहित था उसी ने अपनी इच्छा से नर रूप धारण कर लिया। अतः ''निरंजन'' और गुरुदेव की एकता ही है। गुरुदेव संसारी लोगों को मुक्ति का रहस्य बतलाते हुए कहा करते थे कि अगर जन्म-नरण और आवागमन से छूटना है तो उसका एकमात्र रास्ता यही है कि हमें ईश्वर के मायाहित रूप की उपासना करनी चाहिए–

''मोक्ष मुक्ति जो चहत हो,
तजो कामना काम।
मन इच्छा को भेंट कर,
भजो निरंजन नाम॥''

अतः ''निरंजन'' पद उस शुद्ध ब्रह्म का रूप है, जहाँ नन बुद्धि किसी की भी पहुंच नहीं, जो माया से सर्वथा रहित है। गुरुवन्दना का सार यह है कि गुरुदेव जो साक्षात नर रूप में ''हरि'' ही हैं। जिनके अनेक रूप हैं, यया वे देवेश्वर हैं, सभी

देवताओं के भी ईश्वर और समस्त योगियों के भी ध्येय रूप योगेश्वर हैं, समस्त प्राणियों आत्म रूप से प्राणेश्वर हैं, परमेश्वर एवं ईश्वर भी वे ही हैं जीवों को परमानन्द का दान कर उन्हें सव संकटों एवं भयों से मुक्त कर उनका परम कल्याण करने वाले आनन्द कंद भगवान को वारम्वार प्रणाम है। जो भाव इस गुरु वन्दना में है व सब वेदों का सार है। वेदों में ईश्वर का जो स्वरूप वर्णन किया गया है वह इस भाव से युक्त है। रामचरित्रमानस के वालकाण्ड में "शिव" पार्वती को उस परम तत्व का बोध कराते हुए कहते हैं।

आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिन पद चलई सुनई बिन काना। कर विनु करम करई बिध नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। विनु बानी वकता बड़ जोगी॥
तन बिन परस नयन विनु देखा। ग्रहई घ्रान बिनु बास असेखा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाई नहिं वरनी॥.....

इस प्रकार उस ब्रह्म का आदि अन्त न वेद जानते हैं, और न योगीजन ही, उसका जो प्रभाव है। सब प्रकार से अलौकिक है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ पर भगवान नहीं हो अर्थात् वे सभी स्थानों पर व्याप्त हैं इसलिए वे "घट-घट के वासी" और अन्तर्यामी नामों से कहे गए हैं। रामचरित मानस में एक प्रसंग आता है कि जब रावण के अत्याचारों से समस्त प्राणी दुःखी हो गए और संसार में आसुरी सम्प्रदाय का जोर हो गया। यहाँ तक कि पृथ्वी माता भी उन पापियों के अत्याचारों से पीड़ित हो गई तो देवगणों को साथ लेकर ब्रह्मलोक जाकर अपनी व्यथा रोकर ब्रह्मा जी को सुनाई। ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को ढांढस बंधाया और कहा–

सो.– *धरनि धरहि मन धीर कह विरंचि हरपद सुभिरू।*
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहि दारूण विपति॥ [बा. 184]

"हे पृथ्वी! तुम धैर्य धारण करो, भगवान अपने भक्तों की पीड़ा जानते हैं वे अवश्य ही हमारी इस दारूण विपत्ति से रक्षा करेंगे। हमें उनके चरण-कमलों का ध्यान करना चाहिए।" ऐसा कहकर सभी देवताओं के साथ विचार करने लगे कि प्रभु कहाँ मिलेंगे? कोई उन्हें वैकुण्ठ वासी बताकर वहीं चलने को कहते, तो कुछ कहते की श्री हरि क्षीर सागर में विराजते हैं। हमें वहीं चलना चाहिए। इस प्रकार एक साश्वत प्रश्न पर विचार विमर्श होने लगा कि "ईश्वर कहाँ रहते हैं ?" हमें ईश्वर की प्राप्ति हेतु कहाँ जाना चाहिए? अपने-अपने विवेकानुसार सभी अपने विचार प्रकट करने लगे। अन्त में ब्रह्माजी की नजर भगवान शिव पर पड़ी, जो पास ही ध्यान मग्न बैठे थे। भगवत् प्राप्ति हेतु उनके विचार पूछे गये। भगवान शिव जो भगवद् रहस्य के परम ज्ञाता हैं, उस समय देवताओं से अपना मत व्यक्त करते हुए ऐसा बोले–

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम से प्रकट होहिं मैं जाना।
देस काल दिसि विदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

अग जग में सब रहित विरागी॥ प्रेम ते प्रभु प्रगटई जिमि आगी॥

अर्थात भगवान सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं, कोई भी देश, और भूत-भविष्य और वर्तमान कोई भी समय ऐसा नहीं कि जब प्रभु न हो। भगवान प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक समय समान रूप से उपस्थित रहते हैं। समय और स्थान रूप जड़ संसार में परिवर्तन होता रहता है लेकिन "अलख निरंजन, भव भय भंजन" प्रभु जो निर्विकार है में कोई परिवर्तन नहीं। वह आज भी है, और जिस प्रकार भगवान अव और आज हैं उसी प्रकार कल भी रहेंगे क्योंकि वे अजर अमर अविनाशी हैं। बाबा महाराज के उपदेशों की प्रमुख बात यह थी कि वे अपने "हरि-रूप गुरुदेव" को सर्वत्र व्याप्त मानकर हमेशा उस भाव से भावित बने रहते थे? उनकी जुवान पर हमेशा "ओम् अलख पुरुष मूर्ति" ॐ गुरुदेव ब्रह्म, सच्चिदानंद आनन्द दाता, कल्याणकारी"। का नाम रहता था। इस प्रकार की धारणा से वे स्वयं भी ब्रह्म-स्वरूप हो गए। "बाबा महाराज का यह मानना था कि जब तक जीव पूर्ण समर्पण नहीं करता उसे उस तत्व का अनुभव नहीं हो सकता, कुछ पाने के लिए जव संसार में कुछ खोना (त्याग) जरूरी है। उसी प्रकार ईश्वर (सब कुछ) को पाने के लिए पूर्ण त्याग और समर्पण की आवश्यकता होती है। जब तक थोड़ा भी "मैं पन" (अहंकार) है तब तक उसे ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता, उसके लिए अपना "नामो-निशा" मिटाना होगा।

पहले जो अपना नामो-निशा मिटावे।
फिर उसकी पूरन ब्रह्म साफ दिखलावे॥
खुदी के समाप्त होने पर ही खुदा का दीदार सम्भव है।

दोहा– *जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँय।*
प्रेम गली अति सांकरी तामे दोइ न समाँय॥

इस प्रकार गुरुदेव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज की गुरु वन्दना से उनके आध्यात्म दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती हैं। वे ईश्वर को गुरु रूप में अपना इष्ट देव मानते थे। संसार में सर्वत्र जड़ चेतन में अपने गुरुदेव (ईश्वर) को व्याप्त समझकर उनकी अभिन्न भाव से पूर्ण समर्पण भाव से आराधना करके स्वयं ब्रह्म लीन हो गए और संसार को भी उस परमेश्वर को प्राप्त करने का क्रियात्मक ज्ञान दे गए। वे एक महान् संत थे सच्चे दिल से श्रद्धा रखने वालों को आज भी प्रेरणा और साधना के श्रोत हैं। उनके चरित्र कथन करने के लिए मैं अपनी लेखनी को भी धन्य और पवित्र अनुभव करता हूं। यद्यपि उनका महान् व्यक्तित्व और कृतित्व वर्णन से परे की वस्तु हैं।

दोहा– *समुदर की श्याही करूं, लेखनि सब बनराय।*
सकल अवनि कागद करूं, गुरु-गुनि कहयो न जाय॥

हरिः ॐ तत्सत्! हरिः ॐ तत्सत्!! हरिः ॐ तत्सत्!!!

❑❑❑

अध्याय-5

॥श्री परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जी जीवन-दर्शन

सर्व क्लेशों से विहीन महासंत

संसार के सभी जीव पंच क्लेशों से पीड़ित होकर चौरासी लाख जीव जोन में भटक कर अपने प्रारब्ध की भोग रहे हैं। लेकिन तपस्वी एवं स्वाध्याय सम्पन्न पुरुष अपने इन साधनों से जिन्हें ''क्रिया योग'' के नाम से जाना जाता है। इन क्लेशों की निवृत्ति का प्रयास किया करते हैं।

बाबा ने अपने तप और स्वाध्याय के बल पर इन सम्पूर्ण वलेशों पर विजय प्राप्त की थी तथा परम शान्ति को प्राप्त किया था।

''पातंजलि योग दर्शन'' के साधन पाद/सु. 3/ में पंच क्लेशों का विवरण दिया गया है।

''अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशः''।

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश योग शास्त्र में वर्णित हैं। इन पाँचों से गुरुदेव रहित थे।

1. अविद्या से रहित संत मनोहरदास

माया के दो रूप पुराण शास्त्रों में वताए गये हैं। एक विद्या और दूसरी अविद्या। विद्या मोक्षदायिका है अर्थात् जीव की मुक्ति देने वाली है और अविद्या इस जीव को चौरासी लाख योनियों में डालने वाली, उसका पतन करने वाली माया है– माया का परिचय भगवन श्रीराम जी अपने अनुज लक्ष्मण के पूछने पर रामचरित्र मानस में इस प्रकार दिया है–

गो-गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥

अविद्या को अत्यंत दुष्ट और दुःख रूपा बतलाया गया है। जिसके कारण यह जीव संसार रूपी कुएँ में पड़कर नाना प्रकार के दुःखों से परेशान होता है–

एक दुष्ट अतिसय दुःख रूपा। जा वस जीव परा भव कूपा॥

पंच क्लेशों में यह अविद्या ही प्रथम क्लेश है और अन्य चारों क्लेशों की मूल भी यही है क्योंकि अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश ये चारों अविद्या के कारण ही उत्पन्न होते हैं और अविद्या (अज्ञान) के शान्त होते ही चारों का भी अस्तित्व समाप्त

हो जाता है। जीव को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

अविद्या का मूल स्वरूप है–''विपर्यय ज्ञान'' अथवा ''मिथ्याज्ञान'', दूसरे शव्दों में अनित्य पदार्थों को नित्य मानना, अशुचि को शुचि (पवित्र) और दुःख को सुख समझना अनात्म तत्व में आत्म तत्व की प्रतीति होना।

बाबा साहब ने अविद्या के बन्धन को तप त्याग और स्वाध्याय/अखण्ड प्रणव के जप/ द्वारा तोड़ दिया था। संसार के समस्त पदार्थों और विषयों से अपनी मनोवृत्ति को खींचकर आत्म तत्व का साक्षात्कार किया था। उनकी आत्मा तथा अनात्मा, क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का सम्यक बोध था। जो पदार्थ हैं वे सब अनित्य और क्षण भंगुर हैं उनमें चित्त लगाना कहाँ की बुद्धिमानी है क्योंकि इस लोक एवं स्वर्गीय दिव्य भोग विलास सभी अनित्य एवं गन्धर्व नगर के सदृश्य असत हैं। ऐसा समझ कर उनका उन्होंने सर्वथा परित्याग कर दिया था। अतः अविद्या का प्रधान लक्षण है अनित्य और दुःखदायी भोगों को सुखदायी एवं स्थिर मानकर उसमें रमण करना, भोगों का संग्रह करना। बाबा ने अपने ज्ञान के आधार पर उपरोक्त सभी सांसारिक भोगों को योग मार्ग में बाधक समझकर त्याग दिया। उनका मन से भी चिन्तन नहीं किया, वे सदैव ब्रह्म में लीन रहा करते थे। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के नवम् अध्याय में इस सम्पूर्ण संसार को–

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम॥ (9/33)

अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार अनित्य है और सुख रहित है। मनुष्य शरीर प्राप्त करके उसे इन सांसारिक झूठे भोग विलासों में न लगाकर मेरे भजन में लगाओ।

बाबा को गीता का गहन अध्ययन था। भगवान के ये वचन उनकी समझ में पूर्णतः विश्वास के साथ बैठे थे। अतः वे अविया से छूटे हुए जीवन मुक्त महान संत थे। सांसारिक विषय वासनों को स्वरूप से भी त्याग दिया था क्योंकि इन सांसारिक पदार्थों का अगर मन से भी चिन्तन किया जावे तो मनुष्य को ये बाँध लेते हैं और उसका पतन कर डालते हैं। यथा–

''ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोअभिजायते॥

क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः। स्मृति भ्रशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ गीता (2/62, 63)

अर्थात् विषय चिन्तन मात्र से सर्वनाश हो जाता है। इस बात को दृढ़ता से ग्रहण करके ''गुरुदेव'' अपने मन को हमेशा उस परम तत्व में लीन रखा करते थे।

उपर्युक्त विवरण से हमें यह ज्ञाल हुआ कि अविद्या का प्रथम लक्षण असत् को सत् मानकर उसमें रमण करना है। अर्थात् सांसारिक विषय भोग जो वस्तुतः है

अनित्य और क्षणभंगुर, उनकी सत्ता को सत्य स्वीकार करना तथा उनको भोगने में तत्पर होना ही अज्ञान है। इसके विपरीत अनित्य संसार को नित्य न समझकर अनित्य और दुःखदायी समझना ही ''विद्या'' है ''ज्ञान'' है। उन्होंने गीता के इस ज्ञान का आशय लिया और अपने जीवन में सांगोपांग रूप से उतारा तथा नित्य तत्व (ब्रह्म) का साक्षात्कार किया।

अशुचि अर्थात अपवित्र, हेय पदार्थों को शुचि (पवित्र) समझकर उनको प्राप्त करने का प्रयास प्राप्त कर उनका भोग करना तर्था संग्रह करना तथा उनके वियोग में अपने को परम दुःखी अनुभव करना अविद्या से ग्रसित जीव का दूसरा लक्षण है।

बाबा महाराज के कंचन (धन) एवं कामिनी (स्त्री) का सर्वथा त्याग किया था क्योंकि योगी के लिए ये दोनों ही वस्तु हेय हैं तथा योग में वाधक हैं। संसार के महान तपस्वी एवं साधकों की साधना को इन दोनों ने ही वहुत बाधाएँ उत्पन्न की हैं। ये दोनों ही अविद्या के शक्तिशाली अवयव हैं। इनको परम अपवित्र (अशुचि) समझकर गुरुदेव ने इनका त्याग किया।

मानव शरीर जो महान अपवित्र वताया गया है संसार के लोग उसे रात-दिन सजाने-संवारने में (फैशन परस्ती) में ही लगे रहते हैं, लेकिन वावा को देह का कोई विशेष ध्यान नहीं था। वे जानते थे कि यह शरीर महान अपवित्र है, ऊपर से धोने सजाने से इसको पवित्र नहीं किया जा सकता। वे मन की पवित्रता पर विशेष ध्यान देते थे क्योंकि मनोविकार ही मनुष्य की साधना के शत्रु हैं। काया को माजने से मन के विकार दूर नडीं किये जा सकते हैं। ''कबीर'' की तथा अन्य संतों की तरह बाबा हुजूर भी बाह्य क्रिया, स्नान, चन्दन, माला तथा बाहरी जप की दिखाऊ क्रियाओं की साधना के लिए आवश्यक नहीं मानते थे–

''काया नाजसि कौन गुना, जो घट भीतर है मलिना''।

कहने का तात्पर्य है कि सांसारिक शौचाशौच से उनकी शुचिता न्यारी थी। मनुष्य शरीर की अत्यन्त अपवित्रता प्रत्यक्ष सिद्ध है। यह मनुष्य शरीर मल-मूत्रादि अत्यन्त दुर्गन्धित पदार्थो से लिप्त माता के उदर से उत्पन्न होता है। माता और पिता का अत्यन्त मलिन ''रज'' और ''वीर्य'' इस शरीर का उपादान कारण है। इससे मलमूत्र प्रस्वेद आदि अत्यन्त अपवित्र पदार्थ तो सर्वदा झरते रहते हैं। संसार के अपवित्र (अशुचि) समझे जाने वाले रक्त, मांस, हड्डी, कफ, पित्त आदि पदार्थों का यह मानों भण्डार ही है। ऐसा होने पर भी हमें इसे परम पवित्र मानकर इसे चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से और वस्त्रालंकारों से इसे विभूषित कर फूले नहीं समाते। यह अशुचि को शुचि मान लेना अविद्या का लक्षण है।

बाबा महाराज की रहनी-सहनी क्रिया-कलापों से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वे इस शरीर को मलागार मानकर इसमें व्याप्त आत्मा में अचल स्थिर रहते थे।

माया के प्रधान रूप स्त्री शरीर में समस्त विश्व आसक्त हो रहा है। उसे परम सुन्दर मानकर वह इसे प्राप्त करने के लिए तन-मन और धन के साथ धर्म को भी त्याग देता है। मनुष्य शरीर वीभत्स और घृणास्पद होने पर भी इसे परम सुन्दर मानना और किसी स्त्री की सुन्दरता में अविवेक पूर्ण रीति के आसक्त होकर कामान्ध होकर उसके साथ रमण करना ठीक इसी प्रकार से है, जैसे मल-मूत्र की नाली में विहार करने वाला कोई क्रीड़ा हो।

बाबा के समकालीन लोगों का कथन है कि गुरुदेव ने आजीवन ब्रह्मचारी व्रत का पालन किया। वे ''उर्धरता ब्रह्मचारी'' थे। शास्त्रों में स्त्री सहवास को निन्दित कार्य कहा गया है और सन्यासी के लिए तो यहाँ तक कहा गया है कि वह काठ की वनी स्त्री मूर्ति की ओर भी दृष्टि न डाले। मानस में नारद को उपदेश करते हुए भगवान श्रीराम कहते हैं–

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि॥ (अरण्य./43)

अर्थात् मोह (अविद्या) की सेना में काम, क्रोध, अहंकार लोभ शक्तिशाली सैनिक हैं, लेकिन सबसे अधिक दारूण दुःख देने वाली माया (अविद्या का स्वरूप) रूपी स्त्री है।

मोह (अज्ञान) रूपी जंगल के लिए स्त्री वसंत ऋतु के तुल्य है। विवेकी जन इसमें कभी भी रमण न करें क्योंकि यह अकेली ही मनुष्य की बुद्धि, वल एवं शील का नाश कर अधोगति प्रदान करती है, यह सम्पूर्ण अवगुणों की मूल है–

''अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुःख खानि''। (अरण्य./44)

अतः अविद्या रूप इस कामिनी का योगी सर्वथा त्याग करते हैं और अज्ञानी अविद्या ग्रसित मूर्ख स्त्री में सुन्दरता और पवित्रता मानकर उसमें आसक्त हो अपना सर्वनाश करते हैं।

''जगद्गुरु शंकराचार्य'' ने स्त्री शरीर को माँस और वसा का विकार बतलाकर उसमें आसक्त न होने का उपदेश किया है–

नारिस्तनभरनाभिनिवेशं, मिथ्यामायामोहावेशम्। एतन्मांसवसादि विकारं मनसि विचारय बारम्बारम्''॥ भज गोविन्दं, भज गोविदं मूढ़मते॥''

(चर्पटपंजरिकास्त्रोत्रम्)

अतः अशुचि मानव शरीर को परम अपवित्र मानकर गुरुदेव ने उसे हमेशा ईश भजन साधना का माध्यम बनाकर संसार सागर को सुखपूर्वक पार किया था।

कामिनी तथा कंचन को सर्वथा अनित्य एवं असुखकारी समझने वाले ही बुद्धिमान हैं। योगी पुरुष का इनमें सत्यत्व भाव नहीं होता, इनमें उसके मन की

वृत्ति कभी भी नहीं रमती। उनकी सांसारिक धन और स्त्रियों में–

''मातृ व्रत पर दारेषु, पर द्रव्य लोष्टवत''

अर्थात् संसार की स्त्रियों को माता के समान तथा सांसारिक धन दौलत को मिट्टी के ढेले के समान समझकर व्यवहार करता है। बाबा मनोहरदास जी महाराज की दृष्टि में धन दौलत एवं रुपया पैसे का कोई महत्त्व नहीं था। वे परम संतोषी वैराग्य सम्पन्न महापुरुष थे, क्योंकि–

''जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान''।।

कामिनी की तरह कंचन भी माया (अविद्या) का ही एक अंग है। यह जीवों को सुखी एवं शान्त नहीं होने देती। सारा संसार धन-दौलत के लिए मारा-मारा फिर रहा है। क्या राजा क्या रंक सब धन दौलत की प्राप्ति के चक्र में घूम रहे हैं। लेकिन बिना धर्म के धन की प्राप्ति नहीं होती और संसार के अधर्म की वृद्धि हो रही है।

गुरुदेव कभी किसी से रुपये पैसे की भेंट स्वीकार नहीं करते थे। योगी पुरुष जानते हैं कि धन में अनेकों विकार भरे पड़े हैं। यह अनेक प्रकार के अनर्थों की जड़ है। साधक की साधना के प्रधान शत्रु कंचन और कामिनी ही है। अतः अपना कल्याण चाहने वाले योगी पुरुष धन और मान दोनों से सावधान रहते हैं। सारे दोषों के मूल धन को विकारवर्धक जान के गुरुदेव सदा अपने आत्मा में ही तृप्त रहा करते थे।

अनेक अनर्थ कर्मों के द्वारा कमाए धन को पवित्र समझना मिथ्या ज्ञान है। श्रीमद्भागवत में धन के दोषों को गिनाते हुए स्वयं श्री कृष्ण महाराज अपने परम भक्त उद्धवाजी से कहते हैं।

''स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयोमदः।

भेदो वैरम् विश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥

ऐते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम।

तस्मादलर्थमर्धारव्यं श्रेयोअर्थी दूरतस्त्यजेत॥

श्रीमद्भागवदत 11/23/18, 19

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, क्षोभ, मद, भेद, वुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा और स्त्री जुआ एवं नद्य (शराव) का व्यवसन, ये पन्द्रह दोष मनुष्यों में धन के कारण ही होते हैं। अतः श्रेयार्थी पुरुषों को इस अर्थरूपी अनर्थ को दूर से ही त्याग कर देना चाहिये।

गुरुदेव महान त्यागी और पर वैराग्यवान महान संत थे। अविद्या के दोनों रूपों **कंचन एवं कामिनी को उन्होंने अपने जीवन में क्रिंचित** मात्र भी स्थान नहीं दिया **था।**

पंच क्लेशों के संदर्भ में उपर्युक्त विदरण यह स्पष्ट करता है कि गुरुदेव ने पंच क्लेशों में प्रथम और महत्त्वपूर्ण क्लेश अविद्या को समाप्त कर दिया था। जो अन्य चारों क्लेशों की जननी है।

2. अस्मिता

पंच क्लेशों में अविद्या के बाद दूसरे स्थान पर है। शास्त्रों में ''अस्मिता'' का स्वरूप दृकशक्ति (दृष्टा अर्थात् पुरुष) और दर्शन शक्ति (बुद्धि) जो सर्वथा एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है, की एकता सी प्रतीत होना अस्मिता नामक क्लेश कहा गया है।

गुरुदेव की अस्मिता (अहंकार) का सर्वथा नाश होकर आत्म भाव में स्थिति हो गुरुदेव की अस्मिता/ अहंकार का सर्वथा नाश होकर आत्म भाव में स्थिति हो गई थी। ये हमेशा ''अलख पुरुष मूर्ति'' क ध्यान में मस्त रहा करते थे। वे आत्म ज्ञान सम्पन्न थे तथा सर्वात्मा के साथ एकाकार हो गये थे। उन्हें आत्मा एवं अनात्मा का सम्यक बोध हो चुका था। अतः अस्मिता के क्लेश को पूर्ण निवृत्ति हो चुकी थी।

यडाँ पर ''अस्मिता'' के विषय में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पुरुप (ब्रह्म) और बुद्धि (माया) वस्तुतः अत्यन्त विलक्षण तत्व है। पुरुष को गीता एवं उपनिषदादि शास्त्रों में कूटस्थ, शुद्ध चेतन तथा भोक्ता कहा गया है।

''चेतन अमल सहज सुखरासी'' और इसके विपरीत बुद्धि को परिणामी मलिन और जड़ बतलाया है। इन दोनों की अर्थात पुरुष और बुद्धि की अज्ञान (अविद्या) के कारण एकता (अभिन्नता) सी प्रतीत होना ही अस्मिता है। यह अस्मिता ही पुरुष के लिए भोग का कारण होती है। यह जड़ और चेतन की ग्रन्थि ही दुःखों का मूल कारण है। इसी के कारण नित्य, शुद्ध, चेतन अविकारी और कूटस्थ होकर भी पुरुष अपने को जड़ बुद्धि से भिन्न न मानकर अपने को कर्ता मान लेता है। कर्ता के साथ ही यह भोक्ता भी बन जाता है और चोर संसारी बन कर विविध प्रकार के कर्म चक्र और भोग चक्र में भमता रहता है। यहीं से इसके पतन की शुरूआत होती है। यह जड़ एवं चेतन की ''ग्रन्थि'' पड़ते ही यह सुखी एवं दुःखी बनता है

अरिमता का स्वरूप वर्णन करते हुए ऊपर कहा गया है कि पुरुष और वुद्धि यद्यपि न्यारे-न्यारे हैं, लेकिन उनमें जो एकता सी भक्ति हो रही है यह मिथ्या ही है–

''जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनाई।''

यद्यपि यह तीनों कालों में मिथ्या आभास है लेकिन यह सत्य सा लगता है। अस्मिता के कारण ही ईश्वर का अंश जीव जड़ के साथ संसर्ग दोष को स्वीकार करके बंध जाता है।

गुरुदेव बाबा मनोहरदास ने उपर्युक्त ग्रंथि का भेदन कर अपने आत्म स्वरूप का साझात्कार किया था। अनात्म में आत्म वस्तु का आरोप कर जो अस्मिता रुप

क्लेश संसार को दुःखी-सुखी किये हैं वे उससे सर्वथा मुक्त थे। अपने को शुद्ध अमर अविनाशी ब्रह्मरूप न मानकर विनाशी एवं एक देशीय मान लेना, चेतन के स्थान पर अपने को शरीर रूप से जड़ मानना ही अस्मिता क्लेश है। रामचरितमानस में इस स्थिति का वर्णन गोस्वामी पाद ने इस प्रकार किया है–

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनई न जाइ बखानी।
ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भयऊ गुसांई। बंध्यौ कीर मरकट की नाई॥ [उत्तर काण्ड]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यह जीव जो स्वयं ईश्वर का अंश है माया (अविद्या) के कारण अपने चेतन अमल और सहज सुखरूपी स्वरूप को विस्मृत कर के त्रिगुण भई माया से मजवूत वँध सा गया है-यहाँ पर बन्धन के दो उदाहरण दिये हैं–

''वँध्यौ कीर मरकट की नाई'' तोते का बन्धन और वानर का बन्धन स्वयं के माने का ही होता है। वे किसी के द्वारा वाँधे नहीं जाते, अपितु अपने को वँधा हुआ सा मान लेते हैं।

तोते पकड़ने वाले एक रस्सी में एक घिरनी सी वाँध देते हैं। जब तोता उस पर बैठता है तो वह नीचे की ओर घूम जाती है। तोता जो स्वयं ही उसे पकड़े रहता है नीचे की ओर घूम जाता है। उसे मिथ्या यह आभास हो जाता है कि मैं पकड़ा गया और अपने को वंधा हुआ समझ लेता है। वह चाहे तो उस घिरनी को छोड़कर उड़ सकता है लेकिन वह अपने आपको वंधा सा मान लेता है। यह अस्मिता का सुन्दर उदाहरण है।

दूसरा उदाहरण मरकट (वानर) वन्धन का है। एक संकरे मुँह के मटके में चने निकालने के लिए वानर ने हाथ डाला और अपनी मुट्ठी चनों से भर ली, जब बाहर निकालने लगा तो मुट्टी बंधी होने के कारण अटक गई। वानर ने समझ लिया कि मुझे इस मटके ने पकड़ लिया। वह दुःखी होने लगता है। ऐसे अज्ञान के कारण ही आभासित होता है। वह चाहे तो चनों का लोभ त्याग कर मुट्ठी खोल कर अपने को मुक्त कर सकता है लेकिन अविद्या के कारण अपने को बँधा हुआ सा मान लिया। यह जड़ चेतन के बीच जो ग्रन्थि है वह असत्य है लेकिन अविद्या के कारण सत्य सी जान पड़ रही है–

''जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनाई।।
जब ते जीव भयऊ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होय सुखारी॥

मानस (उत्तर काण्ड)

इस मिथ्या बन्धन से छूटने के लिए यह अनेकों उपाय करता है। लेकिन अस्मिता के कारण यह उल्टा उसमें फँसता चला जाता है। श्रुति पुराणों में जितने भी

जप, तप, व्रत, ।नयम आाद अनका उपाय कहे गये है। यह छूटने के लिए सबका सहारा लेता है। लेकिन जड़ शरीर में आत्म बुद्धि (देहाभिमान) के कारण उन शुभ कर्मों का अपने को कर्ता मान लेता है और उनके परिणाम का भोक्ता बन जाता है। इसके कर्तव्य एवं भोक्तृव्य का क्रम कभी समाप्त नहीं होता। यह अविद्या माया की प्रेरणा से काल, कर्म और तीनों गुणों (सत्व गुण, रजो गुण एवं तमो गुण) के घेरे से कभी मुक्त नहीं हो पाता।

हमारे गुरुदेव महान ज्ञानी और विज्ञानी महात्मा थे। उन्हें कभी किसी ने बाहरी क्रिया, जप, तप, व्रत, तीर्थ आदि का सहारा लेते नहीं देखा क्योंकि ये सब कार्य जड़ शरीर के द्वारा सम्पन्न होते हैं। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। जब अविद्या शांत हो जाती है तो सभी शुभ एवं अशुभ कर्म शांत हो जाते हैं।

''त्यागहि कर्म शुभाशुभ दायक''

अस्मिता के कारण ही कर्म सम्पादन होते हैं। जब अपने को पूर्ण ब्रह्म जान लेता है तो फिर कर्म कहाँ।

बाबा ने अपने दृष्टा रूप को पहचान लिया था। दृश्य से वे सर्वथा न्यारे रहे क्योंकि तत्वतः दृष्टा और दृश्य कभी एक नहीं हो सकते तो अज्ञान (अविद्या) के कारण ही मान लिया जाता है।

दृष्टा की दृश्य रूप से सत्ता मान लेना ही बन्धन है, दृश्य के बस में होने के कारण ही यह (अविनाशी) बद्ध है। अगर यह अपने स्वरूप में स्थिर होकर दृश्य को मिथ्या जान ले तो यह मुक्त ही है।

हुजूर महाराज ने अपने स्वाध्याय और तप के द्वारा अस्मिता नामक क्लेश को शांत कर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लिया था।

3, 4. राग एवं द्वेष

पंच क्लेशों में अविद्या, अस्मिता के पश्चात् तीसरे व चौथे नम्बर पर राग एवं द्वेष नामक क्लेश आते हैं, जिनके कारण इस जीव का वंधन और दृढ़ हो जाता है। शास्त्रों में राग द्वेष का परिचय देते हुए कहा गया है कि सुखानुभव के पश्चात चित्त में सुख के संस्कार स्थिर हो जाते हैं। इस हमेशा सुख की अभिलाषा रहती है। इस सुख की अभिलाषा को ही ''राग'' कहते हैं। इसके विपरीत दुःखानुभव के अनन्तर चित्त में रहने वाली दुःख के निराकरण करने की इच्छा का नाम द्वेष है।

अशुभ कर्मों के फलस्वरूप इसे दुःखों की प्राप्ति होती है। जिससे यह जीव अनेक प्रकार की यम यातनाओं को भोगता है और इस जीवन में भी अनेक प्रकार की दुःखदायक परिस्थितियों से गुजरता है। दुःख भोग के अनन्तर इसके चित्त में दुःख के संस्कार स्थिर हो जाते हैं। यह हमेशा उन दुःखदायिक परिस्थितियों से दूर रहने की अभिलाषा करता है। जिसे द्वेष कहते हैं। ये राग और द्वेष क्लेश रूप हैं।

यह मानव को हमेशा दुःखी एवं सुखी करने वाले महान शत्रु हैं। हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने राग एवं द्वेष दोनों क्लेशों पर विजय प्राप्त की थी। वे सुखदायक एवं दुःख़दायक दोनों परिस्थितियों में ''सम'' देखे गये। न उन्हें सुख की कामना थी न वे दुःख से व्यथित होते थे। उन्होंने ज्ञानाग्नि में सर्व कर्मों को भस्म कर दिया था वे प्रारब्ध को भोग कर समाप्त कर देने में विश्वास रखते थे। न तो उन्हें इष्ट वस्तु में राग था न अनिष्ट में द्वेष। वे राग द्वेष से सर्वथा रहित समता गुण से सम्पन्न महात्मा थे।

''योग वशिष्ट'' में श्रीरामचन्द्र जी ने इन दोनों को महान रोगों की संज्ञा दी है।

''राग द्वेष महा रोगा भोग पूगाविभूतयः।''

वस्तुतः इन दोनों के वशीभूत होकर ही सब अर्थ कर्मों में जीव प्रवृत होता है और यह अविनाशी चोर दुःखों का भाजन बनता है। श्रीमद् भागवद् गीता में भगवान कहते हैं–

''इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे राग द्वेषो व्यवस्थितौ।

तयोर्न वशमागच्छेतौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ गीता (3/34)

अर्थात् सभी इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में राग और द्वेष स्थित रहते हैं अर्यात् इष्ट वस्तु में राग और अनिष्ट में द्वेष रहता है। अतः कल्याण कामी पुरुष को इन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये। ''कल्याण'' अर्थात् मुक्ति के मार्ग में राग द्वेष नामक दोनों क्लेश महान बाधक और (परि पन्थी) विध्न कारक होते हैं।

5. अभिनिवेश/ मरणभय-

पंच क्लेशों में अन्तिम क्लेश है ''अभिनिवेश''। अभिनिवेश का तात्पर्य है ''मरण का भय''। प्रत्येक प्राणी का सबसे बड़ा भय है मृत्यु से, कोई भी जीव चाहे कितना ही दुःखी और जीर्णकाय क्यों न हो जाये, लेकिन मरने का नाम सुनते ही उसके हृदय में महान भय उपस्थित हो जाता है। प्रत्येक प्राणी की यह अभिलाषा रहती है कि मैं हमेशा जीता रहूँ। कभी न मरूं। ऐसी इच्छा का नाम ही ''अभिनिवेश'' है।

गुरुदेव महान विवेकी एवं भगवद्भक्त महान संत थे। भय नाम की कोई सत्ता उनके चित्त को मलिन नहीं कर सकती थी। वे हमेशा सात नाम की शिक्षा देते थे और आत्मा के गुणवाची नामों का स्वयं भी ध्यान करते थे। ''अभयनाम, अजरनाम'' द्वारा वह यह उपदेश दिया करते थे कि यह आत्मा न कभी मरती है और न कभी बुढ़ी होती है, मरती तो यह विनाशी देह है। वे अपने को शरीर नहीं शरीर (आत्मा) मानकर रहते थे और आत्मा को कभी न जन्मने और न मरने वाला मानकर उसके सहज सच्चिदानंद स्वरूप में मग्न रहते थे। गुरुदेव को गीता का विशेष ज्ञान था। वे

सच्चे अर्थों में "सांख्य योगी" थे। उनकी दृष्टि में यह आत्मा–

"न जायते म्रियते व कदाचिन। नायं भुत्वा भविता वान भूयः॥

अजो नित्यः शाश्वतोअयं पुराणो। न हन्यने शरीरे॥ (2/20)

अर्थात यह आत्मा किसी काल में न जन्मता है और न मरता है अथवा न आत्मा होकर के फिर होने वाला है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

बाबा महाराज ने अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त को एकाग्रता प्राप्त कर ली। वे सदैव प्रणय के जप में लीन रहा करते थे। एकाग्रचित्त से सच्चिदानन्द घन परमेश्वर के ध्यान द्वारा उन्होंने उपर्युक्त पंच क्लेशों को दग्ध कर दिया था। वे हमेशा "हरि शरणं" थे। भगवान की भक्ति से सारे क्लेश स्वतः ही शान्त होते हैं। समस्त वेदों के सार उपनिषद हैं। उपनिषदों का सार श्रीमद्भागवद् गीता है और भगवद् गीता का सार तत्व परम उपदेश प्रभु शरणागति है। भगवान का आदेश और सदोपदेश है–

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहंत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (18/66)

अतः उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों का आश्रय छोड़कर परमात्मा की अनन्य शरणागति ग्रहण कर एकरूपता का अनुभव किया था।

हरिः ॐ तत्सत! हरिः ॐ तत्सत!! हरिः ॐ तत्सत!!!

❑❑❑

अध्याय-6

॥ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन

ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी

बाबा हुजूर के जीवनवृत को देखने पर हमें यह ज्ञात होता है कि अपने परम कल्याण की जिज्ञासा से सम्पन्न होकर तथा संसार के दुःखों से दूर अमर पद की प्राप्ति हेतु अपने योग्यतम ''गुरु'' की खोज की। जब इनकी स्वेच्छा प्रबल हुई तो कहते हैं कि- जहाँ चाह वहां राह इन्हें शब्द ब्रह्म एवं वेदों के परदर्शी विद्वान तथा परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्व ज्ञानी गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने इन्हें अपने अनुभव द्वारा प्राप्त ब्रह्म-विद्या एवं उसके रहस्य को सांगोपांग समझा कर इन्हें भी ब्रह्म विद् बना दिया। अपने शिष्य की योग्यता एवं लगन से प्रभावित होकर ''गुरुदेव'' ने इन्हें ईश्वर का वास्तविक तत्व रहस्य समझाकर इन्हें ''विज्ञान'' सम्पन्न बना दिया। क्योंकि योग के गूढ़तम रहस्यों को प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी हैं। इन्हें ऐसा सोचकर अति गोपनीय ब्रह्म विद्या के रहस्य को गुरुदेव ने इन्हें प्रदान किया–

गूढउ तत्व न साधु दुरावहि।

आरत अधिकारी जव पावहि॥

वास्तव में आप उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए योग्य अधिकारी थे। इसलिए अपनी गुप्ततम पूंजी को गुरुदेव ने इन्हें प्रसन्नतापूर्वक सौंपकर इन्हें ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न कर दिया।

अधिकारी भेद से श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार के योग बतलाये हैं–कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग। इन तीनों योग मार्गों के अतिरिक्त संसार में और कोई चौथा कल्याण का मार्ग है ही नहीं। जितने भी साधन वेद और शास्त्रों में जीव के कल्याण के लिए लिखे गये हैं वे प्रकारान्तर से इन्हीं तीनों के ही अंग-उपांग मात्र है। संसारी जीवों को कर्मानुसार अनेक प्रकार की प्रकृतियाँ होती हैं। जिसकी जैसी वृत्ति होती है वह उसी ''योग'' का अधिकारी होता है। अपनी प्रकृति या स्वभाव के विरुद्ध ''योग'' की साधना कभी भी सफल नहीं हो सकती। हाँ, उसके द्वारा कोई हानि नहीं होती। जो लोग संसार में रचे-बसे है अर्थात् पूर्णरूपेण संसार और उसके आकर्षण में आसक्त हैं वे कर्मयोग के अधिकारी हैं। जो वैर वैराग्यवान हैं वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं तथा जो न अत्यन्त आसक्त हैं और न ही अत्यन्त विरक्त ऐसे स्वभाव के जीव भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। श्रीमद्भागवत् में भगवान कहते हैं–

योगस्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेष्ठो विधित्सय।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायो अन्यो अस्ति कुत्रचित॥

(श्रीम. 11-20-6)

गुरुदेव ने इनको षट् सम्पत्ति से युक्त परम् वैराग्यवान स्वभाव वाला जीव समझकर इन्हें ज्ञान-योग का अधिकारी माना और इन्होंने इसी मार्ग से अपने परम लक्ष्य ब्रह्म साक्षात्कार को प्राप्त किया। उपर्युक्त तीनों योगों के बारे में विशेष उल्लेखनीय तत्व यह है कि जीव के तीन शरीर होते हैं। ये तीनों स्थूल देह, दूसरी सूक्ष्म देह, तीसरी देह कारण देह होती है। ये तीनों ही इसी संसार से प्राप्त होती है, तीनों ही जड़ और संसार की सामग्री होती हैं। कर्मयोगी इन तीनों शरीरों को संसार की सेवा में लगा देता है, जब स्वयं इन तीनों से अपने को असंगमान लेता है तब यह ज्ञानयोग के अन्तर्गत आता है और स्वयं को भगवान को अर्पित कर देना "भक्तियोग" है। प्रत्येक मनुष्य को तीन शक्तियाँ प्राप्त होती है। करने की शक्ति, जानने की शक्ति एवं माननें की शक्ति। संक्षेप में इन्हें क्रियाशक्ति, ज्ञान शक्ति एवं विश्वास शक्ति कहा जा सकता है। तीनों योगों से सम्बन्धित ये तीनों शक्तियाँ ही जीव का कल्याण करने हेतु कही गई है। जो क्रिया प्रधान व्यक्ति है इन्हें संसार की सेवा करनी चाहिए वह कर्मयोगी है। अपने स्वरूप की जानकारी या आत्म अनुभव करना ज्ञान योग विषय है तया भगवान को ही अपना मानना, यह श्रद्धा विश्वास भक्ति योग का मूल है।

हमारे गुरुदेव बाबा श्रद्धा-विश्वास से सम्पन्न महात्मा थे। उन्होंने "ज्ञानयोग" द्वारा अपने कल्याण का मार्ग चुना। प्रारम्भ को साधना को देखते हुये लगता है कि हुजूर में मूलतः भक्ति के अंकुर थे। क्योंकि आप विष्णु सहस्त्रनाम के जप एवं श्रीमद्भागवत् गीता के स्वाध्याय में मग्न रहा करते थे। लेकिन आगे चलकर ये शुद्ध अद्वैत की ओर झुक गये एवं "ज्ञानयोग" जो आत्मबोधात्मक मार्ग है उस पर चलकर गुरुदेव के निर्देशानुसार आप साधना करके विज्ञान सम्पन्न हो गये। अन्त में इनके पूर्ण विरक्ति का भाव स्थिर हो गया। शास्त्रों में स्पष्ट लिखा हुआ है कि जो लोग कर्म एवं उनके फलों से विरक्त हो जाते हैं, जिन्हें कुछ नहीं चाहिए और जो परम वैराग्यवान होते हैं, वे ही सद्ये ज्ञानयोगपथ के पथिक होते हैं और जिनके चित्त में कर्मों के संसार भरे रहते हैं तथा कर्मों और उनके फलों में आसक्ति रहती है वे सकाम कामना वाले कर्मयोग के अधिकारी होते हैं।

लेकिन जो पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त ही है और न अत्यन्त आसक्त ही सत्संग एवं स्वाध्याय से जिनके हृदय में भगवान के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाती है। वह भक्ति योग का अधिकारी होता है। उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज" अपने बचपन से ही वैराग्य प्रधान स्वभाव वाले थे। इन्हें अपने माता-पिता से भक्ति के संस्कार मिले जरूर थे, लेकिन उनके वियोग ने इस असार संसार की आसक्ति को पूर्ण रूपेण निकाल कर इन्हें परम वैरागी बना दिया। आपके गुरुदेव ने इन्हें पहले इस संसार (माया) का नश्वर रूप समझाया

और फिर जीव का स्वरूप, तदोपरांत जीव-ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया। इस प्रकार इन्हें शास्त्र ''ज्ञान'' जिसे वाचक ''ज्ञान और पुस्तकीय ज्ञान'' भी कहा गया है समझाया। लेकिन यही पर्याय नहीं। इन्हें स्वानुभव से प्राप्त गुप्त रहस्य को भी समझाया जो योग्य गुरुदेव की अपने शिष्यों को अन्तिम देन होती है। इन्हें ''तत्वमसि'' के द्वारा उस परम तत्व का निर्देश किया।

दोहा– तूही ज्ञान प्रकाश है चेतन-आतम् तात।

भेद-भाव अज्ञान का, सो भूल आप को जात॥

''तत्वमसि'' महा वाक्य का तात्पर्य समझाते हुये गुरुदेव ने कहा कि (तत + त्वम् + असि) वह ब्रह्म तुझसे अलग नहीं ''वह तू ही है! जिस तत्व को हम इस जड़ संसार में अपने जड़ अवयवों अर्थात् मन बुद्धि चिन्त एवं जडेन्द्रियों के द्वारा जिसे देखना, अनुभव करना तथा जानना चाहते हैं वह ईश्वर तत्व तू ही है। (त्वमसि) वह तेरे बाहर भीतर सभी जगह बर्फ में जल के सदृश्य व्याप्त है। जिसे तू अब तक इस संसार में इधर-उधर भटक कर अनेक प्रकार की क्रियाओं और अनुष्ठानों का सहारा लेकर यत्र-तत्र सर्वत्र ढूंढ़ रहा था। वह और कोई नहीं स्वयं तू ही है। तू स्वयं ही अपने को भूल गया था और स्वतंत्र होते हुये भी अपने को वन्धन युक्त मान लिया था वह सव अज्ञान के कारण था–

दोहा– आप भुलानौ ''आप में'' बंध्यौ आप में आप।

जो तू खोजत फिरे बाबरे, सो तू आपम आप॥

इस प्रकार गुरुदेव ने तत्वमसि आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ को इन्हें समझाया तथा द्वैत रहित नित्य, अमल सच्चिदानन्द स्वरूप का बोध कराके इन्हें विज्ञान सम्पन्न किया। पाठकों एवं साधकों के ज्ञानार्थ यहाँ ज्ञान एवं विज्ञान पदों के रहस्य को लिखना आवश्यक हो गया। अतः ज्ञान और विज्ञान जो दोनों भिन्नताओं में शास्त्रों में प्रयुक्त हुये हैं इस प्रकार हैं। ज्ञान शास्त्रों के अध्ययन और सत्संग के द्वारा आध्यात्मिक जानकारी तो प्राप्त कर लें पर न तो उसके अनुसार तत्व (वास्तविकता) का अनुभव करें और न ध्यान अभ्यास तथा कर्मफल त्यागरूप साधन का ही अनुष्ठान करें ऐसी केवल शास्त्रों की पुस्तकीय जानकारी को ''ज्ञान'' कहा जाता हैं। आध्यात्मिक उन्नति के लिए ऐसी जानकारी आवश्यक तो होती है लेकिन तदानुसार क्रिया-अनुभव के अभाव में यह केवल भार स्वरूप ही होती है। बिना जानकारी के अभ्यास सफल नहीं होता। अतः शास्त्रों के अध्ययन से ईश्वर के बारे में जो अप्रत्यक्ष जानकारी होती है, यह ज्ञान के अन्तर्गत आती है।

भगवान के वास्तविक तत्व रहस्यों का प्रत्यक्ष अनुभव करना ''विज्ञान'' पद से जाना जाता है। ज्ञानी की अपेक्षा विज्ञानी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन अनेक शास्त्रों में किया गया है। रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में भगवान अपने प्रिय भक्त श्री काकभुसुण्डि जी को प्रसन्न होकर वरदान देते हैं–

सुनविहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन वसिहहि उर तोरें॥

भगति ज्ञान विज्ञान विरागा। जोग चरित्र रहस्य विभागा॥

जानत तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा॥

यहाँ पर भगवान के ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न होने का वरदान दिया। शास्त्र ज्ञान या वाचक ज्ञान मनुष्य की वुद्धि को कभी-कभी भमित कर उसे वास्तविकता से दूर भी कर देता हैं। योग्य गुरुदेव की शरण लिए बगैर कोई कोरे शास्त्र ज्ञान के आधार पर अपना कल्याण नहीं कर सकता। क्योंकि विविध सान्प्रदायिक ग्रन्थों और विचारों को पढ़-सुनकर साधक की वुद्धि निर्णय नहीं कर पाती कि साधना का उचित पथ कौन सा है?

क्योंकि अनेक पुराणों शास्त्रों एवं विविध साम्प्रदायिक ग्रन्थों ने उस तत्व रहस्य को पूर्ण रूपेण गोपनीय रखा है और उसका सही-सही तात्पर्य नहीं खोला। सामान्य प्रज्ञा का पुरुष यह निश्चित नहीं कर पाता कि क्या करें क्या नहीं? अतः शास्त्र ज्ञान को ''शब्द जाल'' की तुलना देते हुए कहा गया है। ''(शास्त्र ज्ञान) शब्द जाल महारण्यं चित्त भ्रम कारणम्'' अतः ''विनु गुरु होय कि ज्ञान'' बिना योग्य पथ प्रदर्शक के कोई भी साधक आज तक सिद्धि नहीं प्राप्त कर सका है। कभी-कभी कोरे शास्त्र ज्ञानी की दुर्गति भी देखने को मिलती है।

दोहा– ब्रह्म ज्ञान जान्यौ नहीं, कर्म दिये छिटकाय।

तुलसी ऐसी आत्मा, सहज नरक को जाय॥

शास्त्रों में कर्म त्याग अर्थात सन्यास के विवरण को पढ़कर मूर्ख लोग कर्म धर्म को भूल बैठते हैं। और आलस्य में परजीवी बनकर संसार के टुकड़ों पर जीकर अपने को तत्वदर्शी सन्यासी समझकर अपना यह लोक एवं परलोक बर्बाद कर लेते हैं और इसके परिणामस्वरूप नरकों की विविध यातनाएँ झेलते रहते हैं। अतः ज्ञान अर्थात कोरी शास्त्रीय ज्ञान कभी कल्याण कारक नहीं होता। भगवान ने ज्ञानी की अपेक्षा विंज्ञानी को अपना प्रिय कहा है।

निज सिद्धान्त सुनाबऊँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥

मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबते अधिक मनुज मोहि भाए॥

तिन्ह में द्विज, द्विज महँ श्रुतिधारी॥ तिन्ह महुँ निगम धरन अनुसारी॥

तिन्ह महुँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ग्यानिहुते अति प्रिय विज्ञानी॥

भगवान ने अपना सिद्धान्त वर्णन करते हुए उपर्युक्त चौपईयों में सार रूप से यह बतलाया है कि यद्यपि यह चराचर जगत मेरी माया द्वारा उत्पन्न किया गया है, इसलिए भी जीव मुझे प्रिय है क्योंकि जीव, मात्र ही सनातन अंश है मेरे द्वारा

उत्पन्न हैं–लेकिन सभी योनियों की अपेक्षा मनुष्य मुझे अधिक प्रिय हैं। मनुष्यों में भी ब्राह्मण और ब्राह्मणों में भी वेद विद् शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को मैं अधिक प्रेम करता हूँ। लेकिन उन वेद विद् शास्त्रियों से भी मुझे वे अधिक प्रिय हैं जो तदानुसार अपना जीवन ढालते हैं तथा ज्ञान के साथ वैराग्यवान भी हैं। जिन्होंने इस संसार के समस्त विषय भोगों से आसक्ति हटाकर मुझे प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। अन्त में भगवान कहते हैं कि–

''ज्ञानिहुते अति प्रिय विज्ञानी''

अर्थात् जो अभेद रूप से मुझे अपनी आत्मा मानकर उसी में रमण करने वाले ब्रह्मनिष्ठ योगी तो मेरी आत्मा ही हैं वे मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं।

हमारे पूजनीय ''बाबा'' श्री मनोहरदास जी महाराज ने अपनी आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था। सारे संसार को वे गुरु स्वरूप और अपने आत्म स्वरूप में ही एकाकार पाते थे। उन्हें, सच्चिदानन्द स्वरूप गुरुदेव स्वरूप ईश्वर का घट-घट में अनुभव हो गया था। वे स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो गए थे। सच्चे अर्थों में वे विज्ञानी महात्मा थे। इन्होंने शास्त्रों-पुराणों का अध्ययन किया अवश्य था, लेकिन केवल कथाओं से अपने को ज्ञानी सिद्ध करना उनका उद्देश्य न था। उन्होंने वेदों एवं उपनिषदों श्रीमद्भागवद् गीता जैसे सदशास्त्रों को अपनी साधना और अपनी धारणा का आधार वनाया था। वे कभी भी पंडितों की भाँति वेद शास्त्रों की कोरी वातें नहीं करते थे और ना ही अपने ज्ञान का प्रदर्शन। उन्होंने उनके माध्यम से, अपनी ईश्वर सम्बन्धी (आध्यात्मिक) धारणा को मजबूत किया था। जो शास्त्र का अध्ययन केवल पांडित्य प्रदर्शन हेतु करते हैं। वे प्रायः संसार में सम्मान नहीं पाते। उनकी वाणी का श्रोता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उनकी करनी और कथनी प्रायः भिन्न होती है। उन्होंने जो ज्ञान की कथाएँ सीखी हैं, उनसे वे अपने पेट का पालन करते है। दुनिया को अपनी बातों से रिझाना और अपने को श्रेष्ठ ज्ञानी सिद्ध करना मात्र उनका उद्देश्य होता है। हम देखते हैं कि समाज में ऐसे विज्ञान विडीन (आचरण विहीन) पुरुषों को हास्यास्पद स्थिति होती–

ज्ञान कथा सीखी घनी, प्रश्न करै अतिगूढ़।
नारायन बिनु धारणा, व्यर्थ बकत है मूढ॥

बिना ज्ञान की धारणा के ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं कोरा श्रम मात्र ही है। अतः शास्त्र ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य यह है कि हम ईश्वर के स्वरूप की जानकारी पढ़कर सुनकर, तदानुसार ''धारणा'' करें। अपने हृदय में उस स्वरूप की दृढ़ धारणा करते ही हमें उस तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। हमें परम शान्ति प्राप्त होती है।

हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी ने ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया था। उन्होंने कहा नहीं, करके दिखलाया। संसार को जो उपदेश

व्यवहार द्वारा किया जाता है, वह स्थाई और प्रभावकारी होता है। करनी और कथनी में उनकी रत्तीभर भी अन्तर नहीं था। जो वे बाहर थे वैसे ही उदासीन हृदय, भगवन्निष्ठ उनका अन्तःकरण था। उनके दर्शन-मात्र से संशय छिन्न-भिन्न होकर परमशान्ति की प्राप्ति होती थी। उनके वचनों का श्रोता पर अमिट प्रभाव होता था। उनके वचन सदैव सत्य होकर रहते थे। उन्हें भूत-भविष्य एवं वर्तमान की यथार्थ जानकारी थी। वे सुनी सुनाई एवं पढ़ी-पढ़ाई बातों को न कहकर अपनी "साधुकड़ी ब्रजभाषा" में योग के गूढ़तम रहस्यों को खोल दिया करते थे। लेकिन उनकी वाणी के रहस्य एवं तात्पर्य को बहुत कम लोगों ने समझा, वे प्रायः एक बात कहा करते थे–

"मेरे मटा! गुरुन् का ज्ञान न्यारा" है तू समझता तो है नहीं" वास्तव में जो गुरुन का ज्ञान था, वह किसी वाणी का बुद्धि का विषय न होकर अनुभवगम्य था जो कहने और सुनने का विषय नहीं था–

दोहा– *भीखा बात अग्म्य की, कहे सुने की नायं।*

जो जानें सो न कहै, कहै सो जानैं नायं॥

वह गूढ़ रहस्य को एक विज्ञानी ही समझ सकता है क्योंकि जो ज्ञान, मन, बुद्धि एवं चित्त के माध्यम और इन्द्रियों के सहयोग से होता है वह वास्तविक ज्ञान (तत्व ज्ञान) नहीं होता। आभास मात्र होता है, उसके लिए सद्गुरु की कृपा आवश्यक होती है, गुरु का ज्ञान पुस्तकों में नहीं।

"वेद हमारे भेद हैं"। *"वेदन् में हम नांय॥"*

अर्थात् वेद उसके ज्ञान को नेति-नेति कहकर निरूपित करते हैं और मात्र उसका आभास मात्र देते हैं। संसार में जिसे ज्ञान कहा जाता है वह तो मात्र उसका बाह्य स्वरूप निर्देश मात्र है। वक्ता प्रायः सुनी हुई और पढ़ी हुई परम्परा से प्राप्त बातों का प्रकारान्तर से दिखाऊ और शोभा युक्त भाषा में बखान करके इधर-उधर लोगों का मनोरंजन मात्र करके उनकी जेब से धर्म के नाम पर धन का व्यापार मात्र करता है। उसे यह तत्व रहस्य की वास्तविक जानकारी स्वयं को भी नहीं होती। जो कुछ वह अपने भाषणों, उपदेशों में कंहता है, वह स्वयं उसका पालन नहीं करता। उसकी बातें किताबी और सात्विक मनोरंजन मात्र हैं। संत पुरुषों में तथा तत्वदर्शी पुरुषों में, उसकी बातों को ध्यान से नहीं किया जाता है। इसका मतलब यह है कि उसकी कथनी एवं करनी, उसके ज्ञान एवं क्रिया में बहुत अन्तर होता है।

दोहा– *करनी विनु कथनी कथै, अज्ञानी दिनरात।*

कूकर ज्यों भूँकत फिरैं, सुनी सुनाई बात॥

सन्तों ने अपनी बांणियों नें ऐसे जटिल स्वभाव वाले वक्ताओं, पंडितों और मुल्ला-मौलवियों की कड़े शब्दों मे खबर ली है। इस उपर्युक्त दोहे में इस बात को बतलाया गया है कि जो व्यक्ति बिना करनी (कर्तव्य कर्म के कथनी) ज्ञान की वातें करता है वह तो मूर्ख है, अज्ञानी है, उसका ज्ञान ही सही नहीं। उसकी वातों में ज्यादा दम नहीं। हमें ऐसे व्यक्ति की बात पर विश्वास होता नहीं और करना भी खतरे से खाली नहीं। क्योंकि जो बात कह रहा है, वह खुद उस पर स्वयं अमल नहीं करता उसका व्यक्तित्व जटित है। वह सरल स्वभाव का इन्सान नहीं। यहाँ मैंने सरल-स्वभाव और जटिल स्वभाव दो प्रकार के स्वभावों का विशेष रूप से उल्लेख किया है–इन दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना जमीन और आसमान में अर्थात् दोनो विपरीत ध्रुव की बातें हैं, एक आसुरी सम्प्रदाय का व्यक्ति है, दूसरा दैवी सम्प्रदाय का।

जो व्यक्ति जैसा दूसरे से कहता है और स्वयं भी उसी रास्ते पर चलता है तो समझो कि वह सरल स्वभाव क है और कहता कुछ और कर्ता कुछ और तो आप स्वयं समझ सकते हैं कि वह कौन से सम्प्रदाय के सज्जन हैं।

हमारे हुजूर बाबा तो इन दोनों से ही विचित्र स्वभाव के महान् संत थे। उनके स्वभाव का वर्णन करना तो बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ विद्वानों का भी विषय नहीं मेरे जैसा अल्पज्ञ कैसे इस विषय में अपनी लेखनी चलाने का साहस कर सकता है। हाँ जैसा कि मैंने हुजूर के समकालीन सेवकों एवं प्रत्यक्षदर्शियों से सुना है, और बालकपन में देखा भी है, अतः उनके स्वभाव का निरूपण करने की मुझे कुछ सुविधा मिल गई है।

लोगों का कहना है–कि आप कहते न थे करके दिखा दिया करते थे। आप के स्वभाव में करनी तो देखी गई लेकिन कथनी नहीं, या बहुत ही कम देखी गई। इसलिए उनका संत स्वभाव था जो अलौकिक और अनोखा था। अतः वे ज्ञानी नहीं विज्ञानी थे। उपर्युक्त समस्त विवरण का सार यह है कि हमारे गुरुदेव ब्रह्मनिष्ठ एवं विज्ञानी महात्मा थे। जो भी वह अपने मुख से कहते उस सबका श्रोता पर अमिट प्रभाव पड़ता। क्योंकि लोगों का उन पर पूर्ण विश्वास था। उनके प्रति मानवमात्र चाहे वो किसी भी वर्ण, जाति या सन्प्रदाय का क्यों न हो एक अटूट और अपार श्रद्धा थी। एसा क्यों था? क्योंकि लोग यह मानते थे कि जो इनके मुखार्विंद से शब्द निकल रहा है वह सीधा सत्यलोक से आ रहा है। इनकी काया के माध्यम से ब्रह्म ही बोल रहा, और यह अवश्य ही सत्व होकर रहेगा। इसको विधाता भी नहीं मेंट सकता। विज्ञानी की आवाज व्रह्म वाणी ही है और ज्ञानी (पुस्तक कीट) को आवाज पर बहुत कम लोग विश्वास करते हैं। क्योंकि वह जटिल-व्यक्तित्व वाला है, विज्ञानी सरल स्वभाव अर्थात कथनी और करनी एक वाला है। एक ही शब्द अधिकारी भेद से व्यारा-व्यारा प्रभाव दिखलात है। ज्ञानी (वाचक ज्ञानी) अपनी ज्ञान की कथा में कहता है "अहिंसा परमोधर्मा" श्रोता भी सुन लेते हैं कि व्यास जी कथा में हिंसा

त्याग की बात कह रहे हैं, और वह बात अच्छी तरह याद भी कर लेते हैं ''अहिंसा परमोधर्माः'' लेकिन व्यवहार में उनके कदम-कदम पर हिंसा देखने में आती है। उसकी कठोर-वाणी से लोगों के हृदय बिंध जाते हैं। उनके मन में भी लोगों को हिंसा उनको छलकपट से लूट लेने, उन्हें धोखा देने के विचार, धन की खातिर तन की खातिर, दूसरे का गला काट देने के विचार भरे रहते हैं। उसके कर्मों में भी हिंसा दिखाई दे जाती है। खोटे हृदय के लोग अपनी पत्नी, पुत्र, माता-पिता गुरु का घात करने में नहीं हिचकते। कहने का मुख्य सार यह है कि उनके मन-वाणी एवं कर्म अर्थात् मन वचन कर्म से जो हिंसा के पुजारी हैं। और कथा में पंडितजी से और धर्म ग्रन्थों में दोहे चौपाई और संस्कृत श्लोकों में इन बातों को पढ़ते हैं। लेकिन व्यवहार में परिवर्तन नहीं तो ऐसे ब्रह्मज्ञानी, झूंठे, लवार धर्म ध्वंजी लोगों के समुदाय वर्तमान में अधिकांश दिखाई दे जाएंगे। हमारे गुसांई तुलसी दास जी वहुत पहले लिखे गये–

दोहा– ***ब्रह्म ज्ञान विनु नारि नर, कहहिं न दूसरी बात।***

कौड़ी लागि लोभ बस, करहि विप्र गुरु घात॥

इस दोहे का अर्थ सरल है। अतः पाठकों को अर्थ लिखकर अपनी विद्वता का प्रदर्शन करना मैं ठीक नहीं समझता क्योंकि स्वयं को विद्वान समझकर और दूसरों को मूर्ख समझना कोरे ज्ञान-गुमानियों का ही काम है। तथापि भावार्य निवेदन करने के अपने अधिकार को सुरक्षित रखते हुये मैं लिखना चाहूँगा कि अव स्त्री या पुरुष जिससे आप बातें करेंगे तो आपको सभी के मुख से ब्रह्मज्ञान की वातें सुनने को मिल जायेगी और विशेषता यह मिलेगी कि ब्रह्मज्ञान'' के अलावा आप उनसे दूसरी बात नहीं सुनोगे अर्थात्–

''ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर'',

करहि न दूसरि बात॥

''कौड़ी लागि लोभ बस,

करहिं विप्र गुरु घात॥''

कैसी विडम्बना कथनी कुछ और करनी कुछ और। ब्रह्मज्ञानी जी कहते तो हैं, अहिंसा परमो धर्माः ''सर्व खल्विदं ब्रह्म'' जैसा वेद वाणी की सारभूत बातें। लेकिन अगर हिसाब-किताब में एक कौड़ी का भी अन्तर पाया गया तो, ब्राह्मण हों या बाणियां, और गुरुजी हों या चेलाजी फौरन यानी घात कर दिया करते हैं। यह सब विवरण मैंने ''ज्ञानी'' (छद्म ब्रह्मज्ञानी'' के टिल स्वभाव का है और यह सब लिखने का मेरा एक ही तात्पर्य है कि हमारे गुरुदेव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज का स्वभाव निर्मल सरल था उनकी कथनी एवं करनी में एक प्रतिशत भी अन्तर नहीं था। ऐसा मैंने अनुभव किया है और संस्मरणों में सुना भी है। वे

सच्चे विज्ञानी थे उन्होंने वास्तविक ब्रह्मनिष्ठा को प्राप्त किया था। उनके व्यक्ति का प्रमुख गुण मन-वाणी की सरलता थी। वे निर्मल मन एवं सरल हृदय के ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी महात्मा थे। उपर्युक्त समस्त विवरण को लिखने का मेरा यही प्रमुख मन्तव्य है। विद्वतजन मुझे क्षमा करेंगे। क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे क्षमा सिन्धु, दया-सागर और क्षमामंदिर ही होते हैं। मेरे ज्ञानी एवं विज्ञानी के स्वभाव निरूपण से यह अर्थ नहीं ग्रहण करें, कि ज्ञानी अर्थात जिसे मैंने पुस्तकीय या शास्त्रज्ञ कहा है पूर्णरूपेण लवार हैं, और उनकी कोई आवश्यकता ही नहीं। विज्ञानी की पूर्व कक्षा शास्त्रों के अध्यापन एवं अध्ययन द्वारा ईश्वर का परोक्ष ज्ञान प्राप्त करना ही है। वह साधारण कोटि के साधकों को पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। उनमें गुरुजी के मुख से सूत्र रूप वताए हुए तत्व का ही विस्तृत रूप है (ब्रह्मं अगर बीज है तो जगत उसका वृक्ष और ईश्वर अगर परमपिता है तो जीव उसका अंश'' प्रणव अगर शब्द ब्रह्म है तो वेद उसकी वाणी, और वही ''शव्द ब्रह्म'' कभी पश्यन्ति वाणी के रूप में विद्वानों तत्व दर्शियों और फकीरों के मुखार्विन्द से प्रकट सुनाई देता है। जो कुछ संतों-साधु पुरुषों और दरवेशों, पीरों, फकीरों के मुखार्विन्द से वाणियाँ निकली हैं वे साक्षात ब्रह्मवाणी समझो, क्योंकि ब्रह्म तो निराकार है उसके न हाथ है न पाँव है न मुख है न जिह्वा, अर्थात वह ब्रह्म–''सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्'' है। इसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि ब्रह्म के एक भी इन्द्रिय नहीं होती है फिर ब्रह्म वाणी या अनहदनाद का स्वर हम तक कैसे आवेगा। शास्त्र कहते है कि वह अनोखा वक्ता भी है। वह वाणी सन्तों की काया का सहारा लेकर भक्तों साधकों एवं योग्य शिष्यों तक पहुँचती है। ब्रह्म हमेशा महापुरुषों सिद्धा-भक्तों एवं ज्ञान के साथ जो विज्ञान सम्पन्न हैं उनकी जबान से बोलता है। अगर ''ब्रह्म'' को अपनी अंश भूत जीवों को कोई विशेष सन्देश देना होता है तो अपने किसी बन्दे, अपने प्रेमी भक्त एवं विज्ञानी योगी की जिह्वा पर चढ़कर बोलता है।

''काया बिना ब्रह्म क्या बोले''।

''ब्रह्म बोले काया के ओले''।

जैसे–भक्तों की काया में उनके सीता राम बोलते हैं ठीक उसी प्रकार ज्ञानी-विज्ञानी योगियों की काया के पीछे से ब्रह्मवाणी ही बोलती है। अतः हमारे ''गुरुदेव बाबा'' जो ''वचन'' फर्माते थे, वो वेदान्त का सार होता था। उस वाणी में जीव मात्र के कल्याण का स्वर और सन्देश छुपा रहता था। आज भी हम उनकी अमर वाणियों को पढ़कर उस सुखदायक संदेश का लाभ उठाकर परम शान्ति का लाभ ले सकते हैं। यह हुई गुरु के ज्ञान की बातें अब शास्त्री लोगों, वेद पाठियों और आधुनिक कलयुगी विद्वत समाज के ज्ञान ध्यान, की बातें, जो सुनने में बहुत मीठी और परिणाम में भी अपार कल्याणकारी होती हैं। क्योंकि वह उनकी स्वयं की बात न होकर किसी शास्त्र-पुराण गुरु वाणी या कुरान बाईबिल की बातें ही हैं। जो सीधी ब्रह्मा गुरुदेवों या मौहम्मद साहब और ईशा, मूंसा के वचन मुखार्विद से जीवमात्र के

कल्याणार्थ निकली है। अतः उसे सुनकर भी हम आनन्दित हुये बिना नहीं रहते। हम स्वाध्याय में रोज गीता, रामायण और श्रीमद् भागवत'' के पाठ करते हैं हम नित्य ही गुरु वाणियों का पाठ, कुरान-बाईबिल का पाठ करते एवं सुनते हैं और आत्मशान्ति प्राप्त करते हैं। अतः धर्मग्रन्थों का वेदशास्त्रों का हमारे जीवन में बहुत प्रभावोत्पादक महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन जो अहिंसा परमोधर्मः गौतमबुद्ध के मुख से शोभायमान लगता था। जो गान्धी जैसे शुद्ध अहिंसावादियों की जबान पर शोभा पाता था वह आज के धर्मनिर्पेक्ष कलयुगी समाज के मुख से निकलता भी शोभा नहीं लगता। ऐसा क्यों है? क्या उपर्युक्त विचारों के आलोक में आप बता सकते हैं? क्यों नहीं आप अधिकांश महानुभावों का एक ही उत्तर होगा कि क्यों हमारी कथनी और करनी में साम्य नहीं है।'' हम कहते तो कुछ हैं और पर्दे के पीछे दुनिया से छुपाकर करते कुछ हैं। अतः हमारे कृष्णमुख, श्रीहीन हैं और हमारी वाणी में तेजस्विता नहीं, प्रभावोत्पादकता का अभाव है, हम ब्रह्म ज्ञान की बातें मुख से करके हाथों से विप्रगुरु घात'' भी करने में नहीं चूकते, बड़े कमाल के है, हम भी''।

हमारे गुरुदेव की मन, वाणी और कर्म एक था। जो मन में है, वही वचन में भी और टीक वही वात कर्म में भी देखने को मिलती थी–

''लाला! हम भाव गति का खाते हैं,

अगर कुभाव का ग्रहण करें तो–

समझो, जीते जी मर गये'' (हुजूर के बचन)

यह किसी कविता की पंक्तियाँ नहीं हैं हमारे गुरुदेव की अमर वाणी है, जिसमें भाव का महत्त्व प्रतिपादन हुआ है। वे इसको कहते ही नहीं इस बात को उन्होंने अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया था। अगर आपने प्रत्यक्षदर्शियों और भुक्तभोगियों के अनोखे संस्मरणों को ध्यान से पढ़ा है या उनकी जबान से सुना है तो आपको मेरे कथन (लेख) में कोई अतिश्योक्ति नजर नहीं पड़ेगी। श्री ब्रजलाल गुप्ता ''(विरजू भाई) ने मुझे एक संस्मरण सुनाया'' कि एक बार हुजूर कैलाहल बाई की दूकान (वर्तमान में कढ़ीवालों की हवेली के पूर्वी भाग में शर्मा टेलिवीजन वाले) के सामने एक पटिया पर सिंहासन पर विराजे हुये थे। मेरे मन में गुरुदेव को पाव भर (आज की माप में ढाई सौ ग्राम) दूध ले जाकर अर्पण करने का विचार आया। लेकिन मन के इस शुभ संकल्प में बुद्धि ने कुछ संशोधन करने का प्रस्ताव रखा ''सोचा कि दुनियां क्या कहेगी? कि कैसा कंजूस कि गुरुदेव को पाव भर की कुल्ली में दूध लेकर चला है। बुद्धि के इस विचार को मन में भी मान लिया और आधा सेर की मात्रा में दूध बनवा लिया ले जाकर हुजूर के सामने अर्पण कर दिया। हुजूर वड़े ही कौतुकी थे। मेरे हाथ से कुल्ला लेकर अपने हाथ की अंगुलियों से कुल्ले को मापने लगे, सही माप तौल जब पूरी हो गई तो उससे आधा दूध अपनी कटोरी में उड़ेल कर कहा ''ले! यह तेरा हिस्सा है।''

"हुजूर यह मैं सब आपके लिए ही लाया हूँ आप आरोगिए"। "नहीं मेरे बेटा यह तेरा भाग है इसे तू पी ले।"

हुजूर क्या कह रहे हैं और क्यों कह रहे हैं? इसे मैं खूब समझ रहा था, क्योंकि मुझे वे अपनी वाणियों का तत्व रहस्य कई बार स्पष्ट कर दिया करते थे, मैं समझ गया कि मेरे मन का भाव इन्होंने जान लिया है। मेरे मन में प्रथम पाव दूध ही ले चलने का भाव आया था। सो पाव दूध तक तो अमृत दान और लोक लाज के डर से कुभाव से पाव भर और बढ़ाया था सो एक ब्रह्मनिष्ठ संत की दृष्टि में "सुरा-दान" के सदृश्य ही होता है। और कहीं चोरी या अन्याय से कमाए धन द्वारा लाया गया दमन और दवाव वश किया गया दान "रक्त दान" या हलाहल विष का ही दान समझो। ऐसे दाता और भोक्ता दोनों का ही नाश होता है। अतः वे अन्तर्यामी और घट-घट की जानन हारे त्रिकालज्ञ ब्रह्मनिष्ठ पूर्ण ज्ञान विज्ञान सम्पन्न वैरागी तथा वीतराग शिरोमणि थे। उनकी दृष्टि में वस्तु का कोई महत्त्व न था "भाव" का महत्त्व था।

"लाला! हम भावगति का पाते हैं कुप्रभावगति का अगर ग्रहण करें तो समझो जीते जी ही मर गए" यह बात कोई साधारण रहस्य की बात नहीं यह साधकों एवं सिद्धों की आचरण संहिता" का एक मंत्र समझो। अगर साधकों को अपने लक्ष्य की सिद्धि करनी है तो इस सिद्धान्त को गांठ बांध लेनी चाहिए कि अगर कोई भक्त जगतपूर्ण भाव से कोई वस्तु दान करे और उसके भाव में पूर्ण श्रद्धा भक्ति का भी योग है, तो शिष्य के कल्याणार्थ शरीर यात्रा के निर्मित्त यथा आवश्यक भेंट स्वीकार करें। लेकिन अन्याय से कमाए धन से सर्वथा अपने को बचाएँ, नहीं तो सारी योग साधना उसी दिन यथा स्थिति पहुँच कर पतनोन्मुख हो जावेगी। यह भाव गति और कुप्रभावगति के दान का प्रभाव है। इस प्रकार हमारे गुरुदेव की अमर वाणियों से आध्यात्म छः शास्त्रों तथा सब ग्रन्थों का सार तत्व छुपा रहता था। हम उनकी अटपटी भाषा में अभिव्यक्त साधना सूत्रों के मर्म को नहीं समझ सके, क्योंकि उनके–

"गुरुन् का ज्ञान न्यारा है, तू समझता नहीं, मेरे बेटा।" अब तक हमारे लिखने का तात्पर्य यह था कि गुरुदेव एक ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी महात्मा थे। यह बात उनकी रहनी-सहनी क्रिया व्यवहार से स्पष्ट होती थी। प्रस्तुत निवेदन में मैंने यह स्पष्ट किया है कि विज्ञानी पद एवं विज्ञानी पद से किस प्रकार के व्यक्तियों को समझना चाहिये। भगवान की दृष्टि में ज्ञानी की अपेक्षा विज्ञानी का दर्जा ऊँचा है। वह ज्ञानी (शास्त्र ज्ञानवालों) की अपेक्षा विज्ञानियों (तत्वेत्ताओं और ब्रह्मनिष्ठ) को अधिक प्यार करते हैं।

श्रीमद् भागवत्गीता में भी भगवान श्री कृष्ण जी ने अपने परमप्रेमी एवं सखा अर्जुन को ज्ञान एवं विज्ञान का सम्पूर्णता से बोध कराते हुए कहा,

ज्ञानं ते अहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयो अन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥7-2॥

तेरे लिए मैं विज्ञान सहित ज्ञान सम्पूर्णता से कहूँगा, जिसको जानने के बाद फिर यहाँ कुछ भी जानना बाकी नहीं रहेगा। भगवान ने इसे पूर्ण श्लोक में अर्जुन से कहा था कि मैं तुझे ऐसे रहस्य की बात बतलाने जा रहा हूँ जिससे तू मेरे समग्र रूप को जान सकेगा। ध्यातव्य तथ्य यह है कि भगवान को समग्र रूप से विरले ही भगवान के प्रिय भक्त ही जान पाए हैं और जो भी भगवान के तत्व रहस्यों को जानता है, वह भगवान की ही कृपा का कोई पात्र ही होगा। रामचरित मानस के अयोध्या काण्ड में बाल्मीकि आश्रम में जब प्रभु राम जी पहुँचे तो उन्होंने भगवान के स्वरूप को ''वचन अगोचर बुद्धि पर वतलाया। श्रीराम के वास्तविक ब्रह्म स्वरूप का न तो वाणी से कथन किया जा सकता है और न चित्त (मन) का ही वह विषय है। बुद्धि भी उसके बारे में विचार करने में अपने को असहाय पाती है। यहाँ तक कि उसे (भगवत् स्वरूप) को अविगत, अकथ और अपार मानकर वेद वाणी भी नेति (ऐसा नहीं) नेति (ऐसा भी नहीं) कहकर विश्राम पाती है–

दोहा– रामस्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत, अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥

ऐसे अकथनी अपने स्वरूप को सम्पूर्णता के साथ भगवान कृष्ण अपने प्यारे सखा-भक्त और शिष्य अर्जुन को समग्र रूप से वतलाने के लिए कहते हैं–

ज्ञान ते अहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयो अन्यज्ज्ञातव्यम व शिष्यते॥ 7-211

तेरे लिए मैं विज्ञान सहित ज्ञान को सम्पूर्णता से कहूँगा इसको जान लेने के पश्चात कुछ भी जानना बाकि नहीं रहेगा। ''ज्ञान और विज्ञान'' के जान लेने वाला पूर्ण ब्रह्म निष्ठ सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। लेकिन ज्ञान सहित विज्ञान का बोध बिना गुरुदेव की कृपा, बिना और हरि कृपा से नहीं हो सकता। जिसको भी भगवान चाहें अपने भेद को लखा सकते हैं, और भगवान के स्वरूप का बोध होते ही जीव स्वयं भगवत् स्वरूप में लीन हो जाता है। भगवान के समग्र रूप को न तो ब्रह्मा ही जानते हैं न विष्णु-शिव ही इसका कारण यह है कि दृश्य कभी दृष्टा नहीं जान सकता। दृष्टा ही दृश्य को देखने-हारा और जानन-हारा होता है। वह तो ''विधि-हरि-सभु नचाव निहारे। हैं, कटपुतली अपने नचाने वाले अपने निर्माण कर्ता को नहीं जान सकती है। एक स्थान पर भगवान शिव-पार्वती माता से भगवान के प्रभाव को समझाते हुए कहते हैं–

उमा दारुजोषित की नांई।

सबहि नचावत राम गुसांई॥

भगवान सम्पूर्ण संसार खण्ड ब्रह्माण्डों के जीवों को उसी प्रकार नचा रहे हैं जैसे दारू जोषित (कठपुतली) को कठपुतली का कलाकार उसे अपनी अंगुली के इशारे पर नचाता है। वाल्मीकि जी, भगवान के अनिर्वचनीय स्वरूप के बारे में कहते हैं कि प्रभो–

जग पेखन तुम्ह देख निहारे। विधि हरि संभ नचाब निहारे॥

तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन।

जानहि भगत भगतउर चंदन॥

आपका स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप है। अतः उसे आपके सच्चिदानन्द विग्रह को विकारों से रहित ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी ही जान सकते हैं–

चिदानंदमय देह तुम्हारी।

विगत विकार जान अधिकारी॥

इस प्रकार भगवान अपने तत्व रहस्य एवं अपने समग्र रूप को जानने के लिए अर्जुन को ज्ञान एवं विज्ञान के भेद को समझाते हैं। संसार भगवान से ही उत्पन्न होता है और भगवान में ही समा जाता है क्योंकि भगवान ही इस संसार के महाकारण हैं ऐसा मानना ज्ञान हैं। भगवान के अतिरिक्त और कोई चीज है ही नहीं, सर्व रूपों में भगवान ही समाए हुए हैं, अर्थात् भगवान ही सब कुछ बने हुये हैं येसारा जन चेतन स्वरूप अखिल विश्व भगवान का ही स्वरूप है तथा मैं स्वयं भी भगवान ही हूँ–ऐसा अनुभव को जाना ही विज्ञानी है।

श्रीमद् भागवत् गीता में अनेक स्थलों पर इसी तत्व रहस्य को खोला है अपरा और परा प्रकृति मेरी हैं। इन दोनों के संयोग से इस जड़ चेतन स्वरूप सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है, मैं स्वयं इस जगत का महा कारण हूँ ऐसा कहकर भगवान ज्ञान को समझाते हैं।

मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं सूत के धागे में उसी सूत की मणियों की तरह सब कुछ मेरे में ही ओत-प्रोत हैं। ऐसा कहकर भगवान ने विज्ञान का निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त जल में रस, चन्द्र, सूर्य में प्रभा मैं हूँ सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मैं हूँ सात्विक राजस एवं तामसिक भाव मेरे में ही होते हैं ऐसा कहकर ज्ञान बतलाया है। ये मेरे में और मैं इनमें नहीं हूँ ऐसा कहकर ठाकुर जी विज्ञान का पाठ सिखाते है। अर्थात सब कुछ में ही मैं हूँ क्योंकि इन सात्विक और तामसिक गुणों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। इसलिए सब कुछ मैं ही मैं हूँ। ऐसा कहकर आपने विज्ञान बताया। जिसने मेरे अतिरिक्त गुणों की अलग से सत्ता मान ली वह मेरी माया से मोहित नहीं होता, बल्कि ये गुण भगवान से ही होते है और

उनमें ही लीन हो जाते हैं, ऐसा जानते हुए मेरी शरण होता है वह गुणमई माया का अतिक्रमण कर जाता है। भगवान के शरण होकर भगवान का भजन करने वाले चार प्रकार के भक्त होते हैं–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षम्॥ (गीता. 7/16)
तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियोहि ज्ञानिनों ऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ 7/16, 17/1

हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! पवित्र कर्म करने वाले अर्थार्थी आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी (अर्थात् प्रेमी) ये चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं। अर्थात् मेरी शरण होते हैं। इन चारों भक्तों में मेरे में निरंतर लगा हुआ, अनन्य भक्ति वाला ज्ञानी (अर्थात प्रेमी भक्त) श्रेष्ठ है यों कि ज्ञानी भक्त के लिए मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह भी मेरे को बहुत प्यारा लगता है। वह तो स्वयं मेरी ही आत्मा हैं। ऐसा कहकर भगवान ज्ञान का निरूपण करते हैं। **लेकिन जिसको "वासुदेवः सर्वम" अर्थात सब कुछ वासुदेव ही हैं ऐसा अनुभव हो जाता है। वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसा कहकर विज्ञान बतलाया है। वह विज्ञानी महात्मा हजारों में कोई एक होता है। हमारे बाबा मनोहरदास जी महाराज इस प्रकार के ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी महात्मा थे। उन जैसे संत इस संसार में बिरले ही होते हैं। उन्हें अपने अन्दर सारा संसार और सारे संसार में अपनी आत्मा, ही दिखाई पड़ती थी।**

बहूनां जन्म नमन्ते, ज्ञानबान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ गी. 7/1911

"बहुत जन्मों के अन्त में अर्थात मनुष्य जन्म में सव कुछ परमात्मा ही है, ऐसे भाव वाला महात्मा मेरे शरण होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

गुरुब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षत्परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

।। हरिः शरणम्, हरिः शरणम्, हरिः शरणम्॥

❑❑❑

अध्याय-7

।। ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ।।

बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन

सिद्ध शिरोमणि संत

विषयी, साधक और सिद्ध-

संसार में प्रायः मानवों की तीन श्रेणी होती हैं। अधिक संख्या में तो ऐसे लोग होते हैं जिनका जीवन विषय-विलासों में ही डूबा रहता है, अपनी इन्द्रियों के विषयों की तृप्ति में ही जिनका अधिकांश समय व्यतीत होता है। क्षणिक सुख के लिए वे दीन-दुनिया की सुध-बुध खोए रहते हैं। इस प्रकार के लोगों की गणना विषयी पुरुषों में होती है।

यद्यपि आज तक कोई भी इन विषयों से तृप्त नहीं हुआ ज्यों-ज्यों मानव विषयों का सेवन करता है, वैसे-वैसे ही उन्हें और भोगने की कामना बलवती होती जाती है। मानव की बुद्धि विषयों के संग से भ्रष्ट हो जाती है बुद्धि के नाश हो जाने के फलस्वरूप मानव का पतन हो जाता है और ऊधोगति की प्राप्ति होती है।

मानव की दूसरी श्रेणी है साधकों की। जब भगवद् कृपा से विषयों से वैराग्य होता है तो मनुष्य साधना के लिए संकल्प करता है। लेकिन जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं लौकिक पारलौकिक भोगों की लालसा मिटी नहीं और जिनके मन-इन्द्रियाँ बस में नहीं, वे कभी भी साधक नहीं हो सकते। क्योंकि साधना का प्रथम सोपान दृढ़ वैराग्य है। बिना वैराग्य के मन और इन्द्रियों के व्यापार नहीं रुक सकते हैं। मन की वृत्तियों का विषय भोगों से उपराम होकर भगवान् की भक्ति की ओर होता है तभी साधना का श्री गणेश हुआ समझो। जो मनुष्य विषय विकारों से हटकर ईश आराधना का संकल्प कर दृढ़ इच्छा शक्ति से साधना में लग जाता है वह साधक कहलाता है। बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज का बाल्यकाल भी ईश साधना में व्यतीत हुआ था। उन्होंने प्रायः अधिकांश समय उपनिषदादि शास्त्रों के अध्ययन, मनन और निदिध्यासन में लगाया था। सामान्य मनुष्यों की भाँति विषयों में और विषयासक्त पुरुषों के संग में उन्हें कोई रुचि न थी। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है उन्होंने साधना में विघ्न पड़ने के कारण ही पुलिस सेवा से पलायन किया था। वे जन्म से ही साधना में लीन रहा करते थे। गुरुदेव की शरण में जाकर उन्होंने उनके निर्देशानुसार साधना प्रारम्भ की। गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री गणेशदास जी महाराज से विधिवत दीक्षा ग्रहण करके उनके बतलाए साधना पथ पर चलकर उन्होंने घोर तपस्या की। शास्त्रों में यम और नियमों का जो वर्णन किया गया है। बाबा ने उन सबको अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया था।

उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) असंगता, लज्ञा, असंचय वृत्ति (अपरिग्रह) अर्थात आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन स्थिरता, क्षमा और अभय आदि यमों का भली-भाँति पालन किया तथा शौच, जप-तप, हवन, श्रद्धा, अतिथि सेवा, ईश आराधना, परोपकार संतोष एवं गुरुदेव की सेवा आदि नियमों में बद्ध होकर अपनी साधना का विकास किया था।

जव तक साधक उपर्युक्त यम नियमों का सांगोपांग पालन नहीं करता उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती साधक चाहे सकाम हो या निष्काम दोनों के लिए ही इनका पालन करना आवश्यक होता है। बाबा महाराज के जीवन में उपर्युक्त गुणों की बाल्यकाल से ही देखा गया, वे प्रायः एकांत सेवन कर किसी अज्ञात तत्व के चिन्तन में मग्न रहा करते थे। धर्म पालन और ईशाराधना के फलस्वरूप आपके चित्त में सत्व गुण की वृद्धि होकर परम शान्ति प्राप्त हो गई थी। उन्होंने अपने गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर घोर साधना की और अब वे सिद्ध मनोहरदास थे। उन्हें अपने गुरुदेव का पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हुआ तथा साधक से वे अब सिद्धावस्था को प्राप्त महात्मा बन गए। जव साधक इन्द्रिय प्राण और मन को अपने वश में करके अपना चित्त ईश्वर में लगाता है भगवान की धारणा करने लगता है, तब उसके समक्ष अनेकों रिद्धियाँ उपस्थित होती हैं। ठीक ऐसा ही ''बाबा महाराज'' की साधना के परम विकासोपरांत हुआ। बाबा ने विषय भोगों का सेवन तो कभी किया ही नहीं मन से भी विषय वासनाओं का चिन्तन नहीं किया। उन्होंने अपने मन को ईशाराधना में जोड़ दिया था। कहते हैं कि भगवान भजन करने वाले साधक से बहुत प्रसन्न होते हैं, लेकिन जो बाल्यकाल से ही विषयों से वैराग्य प्राप्त कर अपने मन-प्राणों को भगवद्राधना में लगा देता है भगवान उससे बहुत अधिक प्रसन्न होते हैं।

''बाबा महाराज'' के बाल्यकाल का वर्णन करते समय यह कहा जा चुका है कि वे जन्म के फकीर थे। हमेशा भगवान के नाम जप और स्वाध्याय सत्संग में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। काल क्रम से जब दैववश उन्हें पुलिस सेवा में जाना पड़ा तो वहाँ भी उन्होंने अपनी साधना को पूर्ववत जारी रखा। नित्य नियम से भजन पूजन में अपना समय व्यतीत करना उन्हें ईश आराधना में इतनी लग्न थी कि उन्हें यह भी याद नहीं रहा कि सरकारी ड्यूटी के समय गीता पाठ सरकारी सेवा नियमों के विरुद्ध है। जब वे प्रातः ड्यूटी पर थे उस समय उनके पाठ का भी समय या। अपनी जेब से गीता की पोथी निकाल कर उसका स्वाध्याय शुरु कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें फटकार खानी पड़ी ''ड्यूटी के समय यह नहीं चलेगा–एक समय दो काम नहीं। लेकिन गीता में तो भगवान के स्पष्ट शब्दों में अर्जुन को यह पाठ पढ़ाया कि तुम युद्ध भी करो और मेरा स्मरण भी करो, परन्तु बाबा साहब ने दोनों कामों में से एक ही काम चुना और वह था ईशाराधना। उन्होंने

सरकारी सेवा बन्धन को तुरन्त तोड़ दिया और उदयपुर के जंगलों में जहाँ गुरुदेव गणेशदास जी की तपोस्थली थी उनकी शरण में जाकर साधना के लिए कमर कस ली साधना में उनका मनमग्न हुआ और उन्होंने आत्म साक्षात्कार किया।

कहते हैं कि जब साधक साधना प्रारम्भ करता है तो प्रथम उसे रजोगुण तमोगुण पर विजय करनी होती है क्योंकि रजोगुण–काम, क्रोध और लोभादिक वृत्तियों का जनक है। रजोगुण तमोगुण के शांत हो जाने के बाद साधक में शुद्ध सत्व गुण की वृद्धि होती है। जिसके हृदय में सत्व गुण की वृद्धि होती जाती है उसे अविद्या जन्य जड़-चेतन की ग्रंथि का छोर दिखलाई पड़ता है। यह जीव ईश्वर का ही अभिन्न अंश है जो गुण ईश्वर में है वे ही चेतनता अमलता और सहज सुख की अवस्था आदि गुण इस अविनाशी जीव में भी है। लेकिन वह अपने सहज धर्म को अविधा के कारण भूल जाता है और जड़ माया के गुणों को अपने से आरोपित कर लेता है, बस यहीं से यह बन्धन पड़ जाता है जो–''ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख रासो''। अविनाशी अपने को विनाशी मानने लगता है। विनाशी संसार के विकास शरीर के विकास में अपना विकास तथा शरीर एवं संसार के विनाश में ही अपना विनाश मानने लगता है। जो (सहज सुख राशि था अब वही माया) अविद्या के गुणों को अंगीकार करके विनाशी एवं सहज दुःख की राशि हो गया। जो चेतन था वह अपने को जड़ जो अमल था वह विकारी हो गया यह सब अविद्या के कारण हुआ। साधना के द्वारा शुद्ध सत्व गुण की वृद्धि पर जीव को परम तत्व का दर्शन होता है। जो माया के गुणों से बँधा था। उसे अब जड़ चेतन की यह मिथ्या ग्रन्थि स्पष्ट दिखलाई देती है। जब साधक के हृदय में आत्म ज्ञान का प्रकाश होने लगता है तो अविद्या का परिवार समाप्त हो जाता है।

आत्म अनुभव सुख सुप्रकाशा।
तव भव मूल भेद भ्रम-नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा।
मोह आदि तम मिटहि अपारा॥

इस प्रकार मोह आदि समस्त दुःख के मूल ही समाप्त हो जाते है। जीव पुन अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन होने लगता है।

बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज ने अपनी साधना के बल से आत्मसाक्षात्कार किया था लगभग 12 वर्षों की घोर कठिन साधना के पश्चात पूर्ण सिद्धहस्थ में हो पुनः अपने जन्म स्थली छोटी काशी वैर में पधारे। उनके समकालीन लोगों का कहना है कि ''बाबा'' में अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ देखी गईं। यथा–

उन्हें कभी भूख-प्यास का अनुभव नहीं होता था, वे बहुत दूर की बातों को अपने स्थान पर सुन लिया करते थे। दूसरे के मन में क्या है इसका उन्हें पता चल जाता था। वे एक साथ कई स्थानों पर एक ही समय देखे गये। सर्दी-गर्मी आदि

भौतिक विकारों का उन पर कोई प्रभाव नहीं देखा था। वे भूत-भविष्य एवं वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता थे। भविष्य वक्ता के रूप में तो उनकी प्रसिद्धि ही हो गई थी। कुछ समयोपरांत क्या घटने वाला है, इसकी जानकारी वे पूर्व में ही दे दिया करते थे मृतात्माओं को जीवनदान, पुत्रहीनों को पुत्र, निर्धनों को मालामाल कर देना, काया क्लेशों को दूर करना, एक कोढ़ी को उन्होंने पूर्ण स्वस्थ कर दिया था। मन में स्थित भाव कुभाव को उन्हें पूर्ण जानकारी हो जाती थी, वे इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति से सम्पन्न थे। उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता था अर्थात जो वह कह देते थे वह अवश्य होकर रहता था। उनकी भविष्य वाणी पूर्ण रूपेश घटित होकर रहती थी। मैंने ''बाबा साहब'' की अलौकिक चमत्कार पूर्ण घटनाओं को उनके समकालीन व्यक्तियों द्वारा सुनकर अलग से सत्य संस्मरणों के रूप में लिखा है। अतः यहाँ उन घटनाओं को पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता। यहाँ तो मैं सिर्फ यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि जीव जब साधना के उच्च सोपान पर आरूढ़ होता है तो उसके साधना पथ में सिद्धियाँ स्वतः प्रकट होती हैं। ऐसा ही बाबा महाराज की योग साधना के दौरान हुआ। जब साधक अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप अविद्या का उल्लंघन करने लगता है तो माया (अविद्या) उसके साधना पथ में विघ्न रूप सिद्धियों को भेजती है जिससे वह अविद्या की ग्रन्थि को नहीं खोल सके–

छोरत ग्रंथि जान खगराया। विघ्न अनेक करे तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं आई॥

इस प्रकार साधारण साधक रिद्धि सिद्धियों के भ्रम जाल में फँसकर अपनी साधना के पथ से विमुख हो जाता है। ''बाबा महाराज पक्के गुरु के योग्य शिष्य थे। उन्हें साधना पथ के विघ्नों की पूर्ण जानकारी अपने गुरुदेव से प्राप्त हुई थी। वे जानते थे कि सिद्धियों का प्रलोभन कितना अनर्थकारी है। उन्होंने उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। क्योंकि बाबा साहब स्थिर बुद्धि के साधक थे। उनके जीवन में विषय रस नाममात्र का भी नहीं था। वे लोकेषणा और आत्म प्रकाशन वृत्ति से सर्वथा मुक्त थे। अतः सिद्धियाँ उनका कुछ अहित न कर सकीं–उन्होंने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

होय बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥

इस प्रकार सिद्धियों के प्रयोग होनी वाली हानि को वह अच्छी तरह जानते थे अतः जान बूझकर उन्होंने उनका कोई प्रयोग नहीं किया। लेकिन शक्ति सामर्थ्य और योग्यता कहीं छुपाए छूपती है? जो गागर जल से पूर्ण होती है उससे तो कुछ जल कण झलक ही पड़ते हैं। पुराणों में भगवान के अनेक अवतारों की कथाएँ आती हैं। यद्यपि वे सामान्य मानव के रूप में इस धरा धाम में पधारे थे। लेकिन उनकी अलौकिकता छुपाएँ न छुपी भगवान ने राम एवं कृष्ण के रूप में जो अवतार लिया तो मानवी लीला के साथ ही उनका ऐश्वर्य भी दिखाई दिया। ''बाबा महाराज देखने से एक साधारण इन्सान ही थे। लेकिन उनके अन्दर भक्ति ज्ञान और वैराग्य का

सागर हिलोरें लेता दिखाई पड़ता था। उनके पास जो जिस भाव को लेकर आता था बाबा–उसे तदानुसार ही फल प्रदान करते। वे कलि काल कल्पतरु थे। अनेकों घटनाएँ जो पूर्ण सत्य थी लोगों ने अनुभव की उनसे इन बातों की पुष्टि होती है कि बाबा अपने समय के महान सिद्धपुरुष थे। उन्होंने अपने को ईश्वर में लीन कर लिया था। वे इस संसार में रहते हुए भी इससे न्यारे थे। सिद्धियों का या अन्य अलौकिक चमत्कारों का प्रदर्शन कर लोक रंजन करना उनका उद्देश्य कतई न था। हाँ दीन-दुखियों की सेवार्थ अगर कहीं कोई अनहोनी हो जाती थी तो वह बात लोक प्रसिद्ध हो जाती थी। सूर्यनारायण जव प्रातः उदय होते हैं तो वह कोई ढोल बजाकर संसार को नहीं कहते कि मैं सूर्य, उदय हो कर अन्धकार का नाश कर रहा हूँ''। वरन् संसार उनके प्रचण्ड तेज के सामने स्वयं नतमस्तक होता है, और अन्धकार स्वयं ही समाप्त हो जाता है। अतः तेजस्वी पुरुषों की शक्ति कहीं न कहीं प्रकट हो ही जाती है। साधकों की जानकारी हेतु सिद्धियों के बारे में शास्त्रों में वर्णित कुछ संक्षिप्त जानकारो देना चाहूंगा क्योंकि कुछ लोग सिद्धियों के बारे में भ्रांत धारणाएँ रखकर साधना का प्रारम्भ मात्र सिद्धि प्राप्त करने को ही करते हैं। लेकिन योग्य गुरु के अभाव में उन्हें अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक क्लेशों का भाजन होना पड़ता है। जैसा कि हम पूर्व नें वर्णन कर चुके हैं कि ''बाबा महाराज ने भगवान की प्राप्ति हेतु अपनी साधना की थी और पूर्ण आत्म साक्षात्कार के पश्चात वे ब्रह्म स्वरूप होकर अपनी जन्म स्थली एवं साधना स्थली वैर पधारे थे। उन्होंने सिद्धि प्राप्ति के लिए साधना नहीं की थी। वास्तव में ईश आराधना का प्रमुख उद्देश्य निज स्वरूप की प्राप्ति, सहज स्वरूप की प्राप्ति, या प्रभु प्राप्ति ही है। जो भूल से अज्ञानवश सिद्धि हेतु साधना करता है, उसे काया क्लेश एवं श्रम ही हाथ लगती है।

योग की विविध धारणाएँ एवं सिद्धियाँ–धारणा योग के पारगामी योगियों ने कुल अठारह प्रकार की सिद्धियाँ बतलाई हैं। उनमें से आठ प्रकार की सिद्धियाँ तो भगवान में ही निवास करती हैं दूसरों में तो कुछ न्यूनांश ही भगवद्प्रदत्त होती हैं। दस सिद्धियाँ सत्व गुण के विकास से भी मिल जाया करती हैं। उनमें तीन सिद्धियाँ शरीर से सम्बन्ध रखने वाली हैं–''अणिमा महिमा और लघिमा, इन्द्रियों की एक सिद्धि है ''प्राप्ति''। लौकिक एवं पार लौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव कराने वाली सिद्धि है–''प्राकाम्य'' माया और उसके कार्यों को इच्छानुसर संचालित करना ''ईशिता'' नाम की सिद्धि है। विषयों में रहते हुए भी उनमें आसक्त न होना ''वशिता'' है और जिस-जिस सुख की कामना करे, उसकी सीमा तक पहुँच जाना ''काम वशायिता'' नाम की आठवीं सिद्धि हैं। ये आठों प्रकार की सिद्धियों के एकमात्र अधिष्ठान भगवान ही है। उनमें यह सभी स्वभाव से ही निवास करती हैं। जिन्हें भगवान प्रदान करना चाहते हैं अर्थात साधना से प्रसन्न होकर जिस साधक को भगवान इन्हें प्रदान करना चाहते हैं उन्हें पूर्णरूपेण नहीं एक अंशमात्र ही प्राप्त होती है। वास्तव में तो इनके प्रधान निवास स्थान और स्वामी भगवान ही है। उपर्युक्त आठ प्रकार की सिद्धियों के अतिरिक्त भी अनेक सिद्धियाँ है जैसे–शरीर में भूख

प्यास आदि वेगों का न होना, बहुत दूर की वस्तु को देख लेना, बहुत दूर की बात को सुन लेना, मन के साथ ही शरीर का उस स्थान पर पहुँचना, जो इच्छा हो वही रूप बना लेना, दूसरे के शरीर में प्रवेश करना, इच्छानुसार शरीर छोड़ना, अनेक प्रकार के स्वर्गीय दृश्यों में दर्शन, संकल्प की सिद्धि सब जगह सब के द्वारा आज्ञा पालन ये सिद्धियाँ साधना के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर विजय प्राप्त करने तथा सत्व गुण के विकास से भी प्राप्त हो जाया करती हैं। सामान्य कोटि के साधकों को भी कभी-कभी ये सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि कभी-कभी ये सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि कभी-कभी जिनको यह प्राप्त होती हैं उन्हें भी पता नहीं चल पाता कि उनकी साधना के फलस्वरूप उन्हें अमुक सिद्धि प्राप्त हो गई है। दूसरे लोगों को जिन्हें इनका आभास हो जाता है वा कोई चमत्कार देखने में आ जाता है तो ही मालूम होती है। यथा–हमने किसी दिन कोई संकल्प (कामना) की और देव योग से उसी दिन वह संकल्प फलित हो गया तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है। जो सिद्धियाँ बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज में दृष्टिगोचर होती थीं, उनमें प्रमुखतः–

1. भूत-भविष्य एवं वर्तमान की बात जान लेना,
2. शीत उष्ण सुख-दुःख तथा राग द्वेष के बस में न होना,
3. दूसरे के मन की बात जान लेना,
4. अग्नि, सूर्य, जल तथा विष आदि की शक्तियों को स्तम्भित कर देना,
5. किसी से भी पराजित न होना।

उपर्युक्त पाँचों प्रकार की सिद्धियाँ प्रमुखतः योगियों को प्राप्त होती हैं। उपर्युक्त पाँच अतिरिक्त बाबा साहब को और अनेकों सिद्धियाँ जिनका वर्णन ऊपर किया गया है स्वाभाविक रूप से प्राप्त थीं, जिनके प्रभाव समय-समय पर श्रद्धालुओं ने अनुभव किये थे। हमने इनका वर्णन प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा सुनाए संस्मरणों के द्वारा पूर्व में किया है। यहाँ पर किस प्रकार की धारणा से कौन-सी सिद्धि प्राप्त होती है, साधकों और पाठकों की जानकारी हेतु वर्णन करना आवश्यक समझता हूँ–

1. अणिमा सिद्धि–पंच भूतों की सूक्ष्म तन्त्राएँ भगवान का शरीर ही हैं जो साधक भगवान के उस शरीर की उपासना करता है और अपने मन को तदाकार बनाकर उसी में लगा देता है और किसी अन्य वस्तु का चिन्तन नहीं करता उसे अणिमा नामक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अर्थात साधक अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण कर चट्टान आदि में भी प्रवेश कर सकता है।

2. **''महिमा''**–जो साधक अपने को महतत्त्वाकारं बना लेता है उसे महिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है इसमें साधक बड़े से बड़ा रूप बना सकता है।

3. **''लघिम''**–जो योगी वायु आदि चार भूतों के परमाणुओं को भगवत स्वरूप समझकर उनके चिन्तन में अपने मन को तदाकार कर देता है उसे ''लघिमा''

नामक सिद्धि प्राप्त होती है, इससे साधक सूक्ष्म रूप बनाने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

4. "प्राप्ति"–सात्विक अहंकार को भगवान का स्वरूप ही मानकर जो साधक अपने मन का योग करता है उसे प्राप्ति नामक सिद्धि प्राप्त होती है। वह समस्त इन्द्रियों का अधिष्ठाता हो जाता है।

5. प्राकाम्य–जो पुरुष महतत्वाभिमानी सूत्रात्मा में चित्त की धारणा करता है उसे प्राकाम्य नामक सिद्धि प्राप्त होती है, इसके फलस्वरूप इच्छानुसार भोगों की प्राप्ति हो जाती है।

6. "ईशित्व"–जो साधक त्रिगुणमयी माया के स्वामी भगवान के विश्व रूप की अपने चित्त में प्रवल धारणा करके तथा अमरता प्राप्त कर लेता है उसे "ईशित्व" नामक सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार के साधक को शरीरों और जीवों को अपने इच्छानुसार प्रेरित करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

7. "वशिता"–जो योगी भगवान के नारायण स्वरूप में मन को लगाकर तदाकारता प्राप्त करता है उसे यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है उसमें भगवान के स्वाभाविक गुण प्रकट होने लगते हैं उसके बस में सभी रहते है।

8. "कामावसायिता"–जो साधक भगवान के निर्गुण ब्रह्म स्वरूप में अपने चित्त की धारणा करता है उसे परमानंदस्वरूपणी "कामावसायिता" नामक सिद्धि प्राप्त होती है। इसके मिलने पर साधक की सारी कामनाएं पूर्ण होकर कामनाओं का भी नाश हो जाता है तथा जीव परमशान्ति का अनुभव करने लगता है।

उपर्युक्त आठों सिद्धि प्रमुख रूप से भगवान में ही निवास करती हैं, लेकिन जो साधक अपनी साधना और गुरुदेव की सेवा द्वारा भगवान को सन्तुष्ट कर देता है उन्हें भी भगवान एक सीमित मात्रा में अंश रूप से इन्हें प्रदान कर सुखी करते हैं। लेकिन हजारों लाखों में एक साधक ही इनमें से कुछ प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं।

योगियों द्वारा प्राप्त अन्य सिद्धियाँ और उनकी धारणाएँ

1. दूरश्रवण की शक्ति-

जो साधक समष्टि प्राण स्वरूप आकाशात्मक भगवान के स्वरूप में अपने मन चित्त को लगाकर तदाकार हो जाता है और जो अनउद नाद का चिन्तन करता है उसे दूर की वात को सुनने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह विविध पक्षियों की बोली भी सुन सकता है, समझ सकता है।

2. दूरदर्शन नामक सिद्धि–जो योगी नेत्रों को सूर्य और सूर्य को नेत्रों में संयुक्त कर मन ही मन भगवान का ध्यान करता है। उसकी, दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है तथा दूर देश में स्थित वस्तु एवं व्यक्ति को भी देख सकता है। बाबा महाराज कहा करते थे कि "लाला! जहाँ से सूरत उगता है और जहाँ छुपता है वहाँ तक हमारी

नजर है।'' मनोजब नामक सिद्धि मन और शरीर को प्राण वायु के सहित भगवान में धारण करने पर मनोजब नामक सिद्धि प्राप्त हो सकती है इसके प्रभाव से योगी जहाँ जाने का संकल्प करता है तत्काल उसी स्थान पर पहुँच जाता है। परकाया प्रवेश जो योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश करना चाहे वह ऐसी दृढ़ धारणा करें कि मैं उसी शरीर में हूँ। ऐसी धारणा से उसका प्राण वायु रूप धारण कर लेता है और वह एक फूल से दूसरे फूल पर जाने वाले भौंरें की तरह दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है।

5. स्वर्गीय दृश्यों का अनुभव–भगवान के शुद्ध सत्वमय स्वरूप की धारणा करने पर सत्वगुण की अंश स्वरूपा सुर सुन्दरियाँ विमानों पर चढ़कर साधक के पास पहुँच जाती हैं तथा योगियों को भी देवताओं के दिहार स्थलों पर घूमने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

6. संकल्प सिद्धि रूप–जब योगी भगवान के सत्य संकल्प रूप में अपनी धारणा करता है उसे सत्य संकल्प रूप सिद्धि प्राप्त होती है। वह अपने मन में जो भी अच्छा अथवा वुरा संकल्प कर लेता है वह पूर्ण हो जाता है। देखा जाता है कि कभी-कभी योगी प्रसन्न होकर किसी को कोई वरदान या शाप देने की शक्ति रखते है क्योंकि मन में वे जो संकल्प कर लेते हैं, वह पूरा हो जाता है।

7. सर्वत्र आज्ञापालन रूप सिद्धि–जो साधक यागी भगवान को ईशित्व और वशित्व सिद्धियों स्वामी मानते हुए उनके इसी स्वरूप में अपने चित्त को धारण करता है, उसकी आज्ञा का सर्वत्र पालन होता है उसकी आज्ञा को कोई टाल नहीं सकता।

8. भूत-भविष्य एवं वर्तमान का ज्ञाता–जिस योगी का चित्त भगवान की धारणा करते-करते उनकी भक्ति के प्रभाव से पूर्ण शुद्ध हो गया है। वह सर्वज्ञ हो जाता है उसकी बुद्धि जन्म-मृत्यु आदि अदृष्टविषयों को जान लेती है तथा भूत-भविष्य और वर्तमान का वह पूर्ण ज्ञाता हो जाता है।

9. अग्नि, सूर्य, जल एवं विष आदि का प्रभाव नहीं होना–जैसे जल के द्वारा जल में रहने वाले प्राणियों का नाश नहीं होता वैसे ही जिस योगी ने अपना चित्त भगवान में लगाकर शिथिल कर दिया है उसके योगमय शरीर को अग्नि जल और विष आदि कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है।

10 सर्वत्र विजयी होना–जो साधक भगवान के श्री वत्स आदि चिन्ह और शंख-गदा चक्र पट्म आदि आयुधों से विभूषित तथा ध्वज छत्र चँवर आदि से सम्पन्न भगवान के श्री विग्रह का ध्यान करता है उसकी सर्वत्र विजय होती है। इस प्रकार जो साधक भगवान में अपने चित्त की प्रवल धारणा करता है तथा अपने मन चित्त को भगवान के चतुर्भुज रूप में आयुधों से सम्पन्न रूप के ध्यान में लगाते हैं, उन्हें उपर्युक्त सभी सिद्धियाँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं।

बन्दऊँ बाल रूप सोइ रामू।

सब सिधि सुलभ जपत जिसुनामू॥

तुलसीदास जी महाराज ने तो भगवान के नाम जप से ही सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्ति कहीं है अगर कोई साधक भगवान के बालक रूप का ध्यान कर भगवान के नामों का जय करें तो उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जिसने भी अपने प्राण, मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है और जो संयमी है और भगवान के स्वरूप की धारणा करता है उसके लिए सभी सिद्धियाँ सुलभ हैं। श्रेष्ठ पुरुषों का कहना है कि जो साधक भक्ति योग अथवा ज्ञान योग का अभ्यास कर रहे हैं, जो भगवान के ध्यान में तदाकार हो रहे हैं उनके और भगवान के बीच सिद्धियाँ विघ्न रूप ही होती है, क्योंकि उनसे प्रभु प्राप्ति में विलम्ब हो जाता है। जैसे स्थूल पंचभूतों में बाहर भीतर सर्वत्र सूक्ष्म पंच महाभूत ही है और सूक्ष्म भूतों के अतिरिक्त स्थूल भूतों की कोई सत्ता नहीं, ठीक वैसे ही भगवान समस्त प्राणियों के भीतर द्रष्टा रूप से और वाहर दृश्य रूप से स्थित हैं। भगवान में बाहर भीतर का भी भेद नहीं है क्योंकि वे निरावरण एक अद्वितीय आत्मा (ब्रह्म) हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जब विषयी पुरुष भगवद कृपा और गुरुदेव के उद्‌बोधन द्वारा विषय पथ को त्याग साधना में तत्पर होता है तो उसकी साधना की पराकाष्ठा पर सिद्धियाँ प्रकट होती हैं, तब वही विषयी पुरुष जिसने साधक बनकर साधना शुरु की थी आज सिद्ध हो जाता है। यह अवस्था सामान्यतय सत्वगुण के विकास का ही फल है। अगर कोई धीर सिद्ध सिद्धियों के प्रलोभन से अपने को बचाकर भगवान का निष्काम भाव से भजन ध्यान करता है, उनमें अपने चित्त की प्रबल धारणा करता है तो उसे योग्य की अन्तिम सीमा सारूप सालोक्य सामीप्य तथा सायुज्य मुक्ति के रूप में भगवान प्रदान करते हैं? हमारे पूजनीय गुरुदेव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज ने उपर्युक्त सिद्धियों के प्रलोभन का त्यागकर स्वयं को ब्रह्मलीन कर दिया वे संसार के समस्त साधकों एवं भक्तों के प्रेरणा श्रोत स्वरुप हैं, मुझ पर कृपा करें।

॥ हरिः शरणम् ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्॥

❑❑❑

अध्याय-8

ॐ श्री गुरुपरमात्मने नमः

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

त्रिगुणातीत महापुरुष

संसार में जितनी भी क्रियाएँ हो रही हैं उनके कर्ता गुण ही होते हैं। गुणों के कारण ही वह जगत परिवर्तनशील है। सम्पूर्ण क्रियाओं और परिवर्तनों में गुण ही कारण है और कोई कारण नहीं। ये तीनों गुण (सत, रज और तम) जिसमें प्रकाशित होते हैं वह (ब्रह्म) तत्व गुणों से परे है। गुणों से परे होने के कारण वह कभी गुणों से लिप्त नहीं होता है अर्थात् वह एक ऐसा विलक्षण तत्व है, जिस पर इन तीनों गुणों और इनकी क्रियाओं (परिवर्तन) का कोई प्रभाव नहीं होता।

इस विचार को हमारे गुरुदेव श्री बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपने विवेक (ज्ञान) द्वारा भली प्रकार समझ लिया था। उन्हें प्रकृति (तीनों गुणों की साम्यावस्था) और पुरुष का सम्यक् ज्ञान हो गया था। वे जीवनमुक्त महात्मा थे। उन्होंने अपने आपको गुणों से परे असम्बद्ध निर्लिप्त अनुभव कर लिया था। गुणों के साथ शुद्ध आत्मा का सम्बन्ध न कभी होता है न हुआ ही है। वे जानते थे कि आत्मा निर्विकारी, कूटस्थ है, जबकि गुण परिवर्तनीय है। आप में न कोई विकार है और न परिवर्तन। ऐसा अनुभव करके उन्होंने आत्म साक्षात्कार कर निज स्वरूप को प्राप्त कर लिया था।

श्रीमद् भगवत गीता में कहा गया है कि–

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।

गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मभ्दावं सोअधिगच्छति॥ (गी. 14/19)

अर्थात् जब विवेकी (विचार कुशल) पुरुष तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और अपने (आत्मा) को गुणों से परे अनुभव करता है, तब वह मेरे (भगवान) स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।'' हुजूर ने जड़ चेतन की मृषा ग्रन्थि को समझ लिया था उन्होंने अपने सद्गुरुदेव से यह जानकर कि यह शरीर इस संसार की ही एक इकाई है तथा तीन गुण तो इसके मूल कारण हैं। आत्मा का इससे जरा सा भी सम्बन्ध नहीं है, अतः अपने को तीन गुणों का उन्होंने देह का उत्पन्न करने वाले इन तीनों गुणों का अतिभ्रमण करके अपने (आत्मा) को जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था–रूप दुःखों से अलग मानकर अपनी आत्मा की अमरता का अनुभव कर लिया था।

माया के ही ये तीन गुण हैं, जीव को विभिन्न विषयों के प्रलोभन देकर यह उसे उसके मूल (अविनाशी) स्वरूप से अलग कर देती है कबीर के शब्दों में–

माया महा ठगिनी हम जानी।

तिरगुन फाँसि लिए कर डोलै,

बोलै माधुरीबानी॥

इस प्रकार तीन गुणों के मजबूत बन्धन में इस जीव को जो मूलतः–

ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेतन अमल सहज सुख रासी॥

है इसने बाँध दिया है। लेकिन जिन महापुरुषों को इसका विवेक हो जाता है इसके बन्धन को जो भ्रम मूल है, झूठा है तोड़कर मुक्त हो जाते हैं। बाबा साहब का देह से सम्बन्ध नहीं था। वे सच्चे अर्थों में विदेह थे। संसार की दृष्टि में वे ही दिखाई देते थे। देह से सम्बन्ध के कारण ही मनुष्य अपने को जन्मने और मरने वाला मानता है। देह के सम्बन्ध के कारण ही उसे अनेक प्रकार के दुःखों का भी अनुभव करना पड़ता है। सम्पूर्ण दुःखों में सबसे बड़ा दुःख है मृत्यु का दुःख। सभी जी स्वरूप से अमर ही हैं लेकिन मनुष्य इन्द्रियों के भोगों में लिप्त हो जाने एवं भोगों का संग्रह करते जाने से अविवेक के कारण उसकी अमरता को भूल गया है।

जो भी साधक अपने गुरुदेव के आदेशानुसार साधना पथ पर अग्रसर होता है, उसे वे क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ बाबा साहब अक्सर कहा करते थे–

आप भुलानों आप में बंध्यो आप में आप।

जो तू खोजत फिरै बावरे, सो तू आपम् आप॥

शरीर के साथ अपनी एकता मानने से ही जीव इसमें बंध गया इसे कोई बांधता नहीं, यह स्वयं ही अपने को बँधा हुआ मान लेता है और अपने आप में ही भूला हुआ संसार की 84 लाख योनियों के चक्कर लगाता फिरता है, लेकिन जब इस तत्व का बोध होता है तो वह अपने आप में ही उसे पालता है।

हुजूर साहब ने यह जानकर कि यह शरीर और सारा संसार गुणों के संग से ही उत्पन्न हुआ है, आत्मा का इस संसार और शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं, गुणातीत अवस्था को प्राप्त कर लिया है। उन्होंने मृत्यु से पूर्व ही अपने को गुणातीत अनुभव करके जरा, व्याधि, मृत्यु आदि समस्त दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर लिया था। उनके अन्दर गीतोक्त गुणातीत पुरुष के समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे–

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।

गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ [गी. 14/23]

अर्थात–जो उदासीन की तरह स्थित है और जो गुणों के द्वारा विचलित नहीं

किया जा सकता वह गुण ही (गुणों में) वरत रहे है–इस भाव से जो अपने स्वरूप में स्थित रहता है और स्वयं कोई भी चेष्टा नहीं करता वह गुणातीत पुरुष होता है।

जिन भाग्यशाली सज्जनों ने गुरुदेव के दर्शन उनके जीवन काल में किये हैं और अपने संस्मरणों में उनके स्वभाव का वर्णन करते हैं। उसे सबसे उनके त्रिगुणातीत स्वरूप का ज्ञान होता है। उनके अनुसार बाबा साहव हमेशा समता में स्थित रहते थे। उन्हें कभी न दुःखी देखा और न कभी सुखी उनके लिए ये दोनों अवस्थाएँ ही मिथ्या धारणा पर आधारित थी। उनका न कोई प्रिय था न अप्रिय सभी से वे समान भाव रखते थे। मान-अपमान, शत्रु-मित्र तथा निन्दा-स्तुति में उनकी भक्ति वृत्तियाँ सम रहती थीं।

गुणातीत पुरुष के लक्षणों को गीता में इस प्रकार कहा है–

समदुःखसुख स्वस्थः समलोष्टाश्मकान्चनः।
तुल्य प्रिया प्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥ [गी. 14/24-25/1]

अर्थात जो धीर मनुष्य सुख-दुःख में सम तथा अपने स्वरूप में स्थित रहता है। जो मिट्टी के ढेले पत्थर और सोने में समभाव रखता है, जो प्रिय-अप्रिय में तथा अपनी निन्दा स्तुति में सम रहता है, जो मान-अपमान में तथा मित्र-शत्रु के पक्ष में सम रहता है, जो सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ का त्यागी है, वह मनुष्य गुणातीत कहा जाता है।''

उल्लेखनीय है कि गुरुदेव के स्वाध्याय का सर्वप्रिय ग्रन्थ श्रीमद्भगवद् गीता ही था। अगर मैं कहूं कि वे स्वयं जो थे, उनका दर्शन जो था वह सब गीता के अध्ययन मनन एवं निर्दिध्यासन का ही परिणाम था। गीता के ज्ञान को उन्होंने अपने अंतःकरण नें स्थिर कर लिया था। उनकी साधना गीता ज्ञान के प्रकाश में ही हुई और अन्त में उन्हें आत्म ज्ञान का प्रकाश हुआ।

उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित गुणातीत पुरुष के लक्षणों को पढ़कर हमें लगता है कि यह सांगोपांग गुरुदेव में विद्यमान थे। अपने एक संस्मरण में बाबा के समकालीन एक सज्जन ने मुझे वताया कि एक बार एक व्यक्ति ने बाबा के दो लट्ठ मारे, जिनसे बाबा के सिर में खून निकल कर सारा शरीर लहूलुहान हो गया, लेकिन आपने कोई प्रतिक्रिया नहीं की, उनके सभी कपड़े ऊपर से नीचे तक खून से लथपथ हो गए। यह आपकी गुणातीत अवस्था का ही प्रभाव है। वे न अपमान से व्यथित होते न मान से हर्षित, क्योंकि उनकी दृष्टि में ये दोनों ही शरीर तथा मान-अपमान ये आठ स्थिति वतलाई हैं। इन आठों में सामान्य मनुष्य के हृदय में विषमता का भाव जागृत होता है। यहाँ तक कि जो साधक कोटि का पुरुष होता है वह भी इन आठ स्थलों पर कभी-कभी विषमता को प्राप्त हो जाता है।

लेकिन जो आत्मवेत्ता परम ज्ञानी सिद्ध पुरुष होते हैं, उन्हें भूलकर भी इन स्थलों में विषमता का भाव नहीं होता। गुणातीत पुरुष को इन आठों स्थलों में स्वतः स्वाभाविक समता होती है। योगी का परम लक्षण समता ही है गीता प्रमुख रूप से समता पर ही जोर देकर कहती है कि–

योगस्थः कुरुकर्माणि संऽगं त्यक्त्वा धनंजय।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ [गी. 2/48]

हे धनंजय! तू आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, क्योंकि समत्व ही योग कहा जाता है (समत्वं योग उच्यते)

इस प्रकार हमारे पूजनीय श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपने अन्तःकरण तक विषमता को सदा-सदा के लिए निकालकर समता धारण की थी और दुःख-सुख, प्रिय-अप्रिय, मान-अपमान तथा निन्दा-स्तुति आदि में वे हमेशा सम देखे गये। गुणातीत पुरुष के अन्तःकरण में जो स्वतः सिद्ध निर्विकारता होतो है वह उसकी स्वाभाविक स्थिति होती है। उनके जीवन में भी साधारण मानवों की तरह अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं लेकिन उन परिस्थितियों के आने-जाने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, उनकी निर्विकारता समता ज्यों की त्यों अटल रहती हैं।

गुण तथा उनकी वृत्तियों का संक्षिप्त परिचय

सामान्य पाठकों एवं साधकों की जानकारी हेतु शास्त्रों में वर्णित गुण एवं उनके द्वारा चित्त की वृत्तियों में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, उसकी जानकारी यहाँ संक्षेप में दी जाती है। विषयी साधक एवं सिद्धि के चित्त की वृत्तियों में जो भेद देखने को मिलता है उसका मूल कारण सत्व, रज एवं तम गुणों की प्रधानता ही है। इन्हीं के कारण मनुष्यों के तीन वर्ग बन गए हैं। गुणों के प्रभाव के कारण उनके न्यारे-न्यारे स्वभाव होते हैं।

1. **सत्वगुण की वृत्तियाँ हैं**–शम (मन का निग्रह), दम (इन्द्रिय निग्रह) तितिक्षा अर्थात् सहिष्णुता विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, संतोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा (पाप करने में स्वाभाविक संकोच) आत्मरति, दान, विनय और सरलता आदि।

2. **रजोगुण की प्रमुख वृत्तियाँ**–इच्छा, प्रयत्न, घमण्ड, तृष्णा (असंतोष), ऐंठ (अकड़) देवताओं से धन आदि की याचना करना, भेद, बुद्धि, विषय भोग युद्ध आदि के लिए मदपूर्ण उत्साह अपने यश में प्रेम हास्य पराक्रम और हठपूर्वक उद्योग करना।

3. **तमोगुणी वृत्तियाँ**–क्रोध (असहिष्णुता) लोभ मिथ्या भाषण (झूठ वोलना), हिंसा याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आशा. भय

तथा अकर्मण्यता आदि उपर्युक्त वृत्तियाँ न्यारे-न्यारे गुणों का परिणाम हैं–लेकिन मानव के चित्त पर कभी-कभी तीनों गुणों के मेल से जो वृत्तियाँ उभरती हैं उनमें मुख्यतः अर्हता और ममता हैं यह दोनों वृत्तियाँ तीनों गुणों के मेल से ही उत्पन्न होती हैं। जब मनुष्य धर्म, अर्थ तथा काम में संलग्न होता है तब सत्य गुण से श्रद्धा (धर्म) रजोगुण से रति (काम) तथा तमोगुण से धन (अर्थ) की प्राप्ति होती है। जिस समय मनुष्य सकाम कर्म गृहस्थाश्रम और स्वधर्माचरण में अधिक प्रीति रखता है उस समय उसमें इन तीनों गुणों का ही मिश्रण होता है। मनुष्य की पहचान उसकी वृत्तियों से ही होती है। अगर मानसिक शान्ति है तथा इन्द्रियों का निग्रह किया हुआ है तो ऐसा पुरुष सतोगुणी श्रेणी में आता है। इसके विपरीत विषयों की कामना एवं अशान्ति से रजोगुणी तथा क्रोध, लोभ एवं हिंसक वृत्तियों से तमोगुणी पुरुष की पहचान होती है। सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों का कारण जीव का चित्त ही हैं। इन्हीं गुणों के द्वारा जीव शरीर अथवा धन आदि में आसक्त होकर बन्धन में पड़ जाता है। वे इन तीनों गुणों की जननी प्रकृति है, इनके मजबूत बन्धन से वह अविनाशी जीवात्मा को बन्धन करती है–

ईश्वर असजीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।

सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

इस प्रकार चेतन अमल, और सहज सुख की राशि इस जीव को माया तीन गुणों के मजवूत लेकिन (मिथ्या) बन्धन से दृढ़ता से बाँध देती है। गीता में भी भगवान ने इन तीनों गुणों को बन्धनकारी कहा है।

सत्वरजस्तय इति गुणाः प्रकृति सम्भवाः।

निबन्धन्ति महाबाहो देहे देहिन मव्ययम्॥ गी. 14/5/1

अर्थात हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सत्व रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी देही को देह में बाँध देते हैं। जीव का यह अविनाशी स्वरूप वास्तव में कभी गुणों से नहीं बंधता परन्तु जब वहीं इस दिनाशी देह को में (अहंता), मेरा (ममता) और मेरे लिए मान लेता है तब वह अपनी ही (मिथ्या) मान्यता के कारण गुणों से अपने आपको बँधा हुआ अनुभव करने लगता है, फिर उसको निज स्वरूप की विस्मृति हो जाती है। देह अभिमान के कारण गुणों के द्वारा देह में बँध जाने से वह तीनों गुणों से परे अपने (त्रिगुणातीत) स्वरूप को भूल जाता है। सत्व गुण प्रकाशक निर्मल और शान्त होता है, जिस समय वह रजोगुण और तमोगुण को दबा कर बढ़ता है उस समय यह जीव (पुरुष) सुख धर्म और ज्ञान सम्पन्न हो जाता है उसके हृदय में परम शान्ति होती है। रामचरित मानस में सत्व गुण के प्रभाव को "सतयुग" कहा है–सुद्ध सत्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥ अर्थात जब हृदय में समता ज्ञान वैराग्य की वृत्तियाँ उत्पन्न होकर शान्ति का अनुभव हो तो समझिए यह सत्व गुण का प्रभाव है। सत्व गुण की वृद्धि से जीव अनेकों सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।

इसके विपरीत रजोगुण भेद वृद्धि (विषमता) का कारण है। इससे आसक्ति एवं प्रवृत्ति (अनेक कार्यों में प्रवृत होना) में वृद्धि होकर मनुष्य दुःख, कर्म, शक्ति, यश तथा लक्ष्मी से सम्पन्न होता है। तमोगुण जब रजोगुण तथ सतोगुण को दबाकर वृद्धि को प्राप्त होता है तो अज्ञान, आलस्य और मूढ़ता (बुद्धि की जड़ता) में वृद्धि होकर मनुष्य अनेक प्रकार की आज्ञारूपी फाँसियों पर लटकता है तथा झोक मोह में पड़कर हिंसा पर उतारु हो जाता है अथवा निद्रा-आलस्य में होकर पड़ा रहता है। प्रत्येक जीव अपने शरीर में उत्पन्न होने वाले इन तीनों गुणों का साक्षी होता है कब कौन-सा गुण वृद्धि पर है उसे उसकी ठीक-ठीक ज्ञान की भी रहता है। विवेकी पुरुष हैं वे ऐसा जानते है कि ये गुण प्रवृत्ति के विकार है देह के अंग हैं देही (जीवात्मा) के नहीं।''

अब चित्त प्रसन्न है, इन्द्रियाँ शान्त हों, भय का अभाव हो, मन में आसक्ति न हो तत्व सत्व गुण की वृद्धि होती है साधना के लिए यह बहुत सहायक होता है। सत्वगुण ईश्वर प्राप्ति का सोपान है। लेकिन इससे प्राप्त आनन्द में भी आसक्ति जीव को परमेश्वर के मिलने में वाघा उत्पन्न कर देती है। अतः चतुर साधक अपनी बुद्धि को इस आनन्द के भोग से रोकता है और ऐसा करके वह त्रिगुणातीत अवस्था में पहुँच जाता है। साधक के चित्त में जब शुद्ध सत्व गुण का संचार हो जाता है और रजोगुण तमोगुण का प्रायः अभाव हो जाता है तो अनेक प्रकार की सिद्धियों का प्रकटीकरण हो जाता है। इस स्थिति का सामना कोई-कोई धीर वुद्धि ही कर पाता है। अधिकांश का अपनी स्थिति से पतन हो कर पुनः रजोगुण, तमोगुण प्रवृत्तियों की वृद्धि हो जाती है, अतः धीर वुद्धि पुरुष उनकी ओर नहीं ध्यान देता–

होई बुद्धि जौं परम सयानी।

तिन्हतन चितव न अनहित जानी॥

जब काम करते-करते जीव की बुद्धि चंचल, ज्ञानेन्द्रियाँ असंतुष्ट कर्मेन्द्रियाँ विकार युक्त, मन भ्रान्त, दुद्धि अशांत एवं शरीर अस्वस्थ हो जाये, तब समझना चाहिये कि रजोगुण बढ़ा है। और जब चित्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों को ठीक-ठीक समझने में असमर्थ हो जाये और खिन्न होकर लीन (जड़तायुक्त) होने लगे, मन सूना-सूना सा हो जाये तथा अज्ञान विषाद की वृद्धि हो तो ऐसा जानना चाहिए कि तमोगुण वृद्धि पर है। सत्वगुण की वृद्धि पर देवताओं का, रजोगुण की वृद्धि पर, असुरों का तया तमोगुण की वृद्धि से राक्षसों का बल बढ़ जाता है। सत्व गुण से जागृत, रजोगुण से स्वप्न अवस्था एवं तमोगुण से सुषुप्ति अवस्था होती है। तुरिय इन तीनों में एक सा व्याप्त होता है वही शुद्ध और एक रस आत्मा है। वेदाभ्यासी सत्वगुण सत्पन्न ब्राह्मण (जीवात्मा) उत्तरोत्तर ऊपर के लोकों को जाता है, तमोगुण की वृद्धि पर वृक्षादि तथा तमोगुणी सरीसृपादि योनियां मिलती हैं तथा रजोगुण की वृद्धि पर मरने वाले जीव को मनुष्य शरीर मिलता है। लेकिन जो पुरुष इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हैं उन्हें परमात्मा की प्राप्ति होती है। वे

ब्रह्मलीन हो जाते हैं हमारे हुजूर बाबा मनोहरदास जी महाराज ने इसी देह में इन तीनों गुणों पर विजय प्राप्त की थी तथा वे इस जीवन में ही देह तथा उसके कारण तीनों गुणों से मुक्ति पाकर जीवन मुक्त हो गए। वह मुक्त होने के लिए कहा करते थे।

मोक्ष मुक्ति जो चहत हो, तजो कामना काम।
मन इच्छा को मेटिकर भजो निरंजन नाम॥
भजो निरंजन नाम, देह अभ्यास मिटाओ।
पंचन का तज स्वाद, आप में आप समाओ॥
जब छूटै झूंठी देह जैसे के तैसे रहिया।
चरणदास गुरुदेव ज्ञान यह हम से कहिया॥

अर्थात अगर मुक्ति चाहते हो तो अपने हृदय से समस्त कामनाओं और वासनाओं से छुट्टी पाती, अपने मन को समस्त इच्छाओं को त्याग कर (निरंजन) त्रिगुणातीत शुद्ध ब्रह्म के नाम का अखण्ड जप करो। मैं देह हूँ, या यह शरीर मेरा है, ऐसी धारणा से मुक्त हो जाओ। पाँचों इन्द्रियों के भोगों की आशक्ति को त्याग कर अपने निज स्वरूप में स्थित हो जाओ। जब प्रारब्ध बस (कर्म चूक जाने) पर यह मिथ्या देह समाप्त होने लगे तो अपने स्वरूप से विचलित न होकर जैसे के तैसे रहो। याद रखो तुम देह नहीं, देह तुम्हारी नहीं प्रकृति का अंश है, तुम देह में नहीं स्वयं (आपे में स्थित हो) में स्थित हो ऐसी आत्मनिष्ठ व्रह्मनिष्ठा या भगवद्निष्ठा में ही स्थित रहो।

इस प्रकार गुरुदेव में तीनों गुणों के कार्य रूप इस देह-गेह और समस्त जगत से अपनी आसक्ति हटाकर सत्व गुण के सेवन से रजो एवं तमो गुण को दबा दिया अपने मन एवं इन्द्रियों के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा अखण प्रणव जप (ॐ सोहं, शिवोहं सोहं) द्वारा आसक्ति को पूर्ण समाप्त कर योग युक्ति से चित्त की वृत्तियों को पूर्ण रूपेण शान्त करके निर्पेक्षता के द्वारा सत्व गुण पर भी विजय प्राप्त कर ली। इस प्रकार गुणों से मुक्त होकर उन्होंने जीव भाव को छोड़कर आत्म भाव (शिव रूप) में स्थित हो गए। वे लिंग शरीर रूप अपनी उपाधि जीवन्त से तथा अन्तःकरण में उदय होने वाली सत्वादि गुणों की वृत्तियों से मुक्त होकर अखण्ड ब्रह्मानुभूति कर एकत्व में स्थित हो गए।

दौड़ दौड़ तू दौड़ले, अब तक दौड़े दौड़ ।
जा कारन तू दौड़ता, वस्तु ठौर की ठौर॥

ॐ गुरु माता-पिता, ॐ जमी असमान।
ॐ गुरु परमात्मा, सो करो ॐ का ध्यान॥
हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्,॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।

❑❑❑

अध्याय-9

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

याद है तो आबाद है, भूल गया तो बर्बाद है

मोह निद्रा में सोये हुए संसारी जीवों को उस परमात्मा की याद दिलाने वाले ये वचन हुजूर महाराज बाबा श्री मनोहरदास जी के है। जैसे आप स्वयं उस परब्रह्म परमात्मा में अपने मन और बुद्धि को सदैव गंगा-प्रवाहित लगाए रहते थे, ठीक उसी का वह संसार को भी उपदेश देते थे कि हमें सब कुछ छोड़कर उस ईश्वर को याद रखना चाहिये जो सत, चित और आनन्द धन है। जव हम उस सत्य स्वरूप, शिव स्वरूप और सुन्दरता के धाम भगवान को याद करते हैं, उसका स्मरण करते हैं, तो तत्काल परम शान्ति का अनुभव होने लगता है। बाबा महाराज सद्य अर्थो में ''सद्गुरु'' थे उन्होंने भूले-भटके जीवों को आनन्द का मार्ग दिखलाया। उन्हें सार वस्तु का उपदेश किया भगवान का भजन ही सार है और सव बेकारी है। संसार में एक ईश्वर ही परम सत्य हैं हमें उसे सदैव स्मरण (याद) रखना चाहिए। हमें अपने मन को तथा बुद्धि को उस ईश्वर की याद उसके भजन उसके ध्यान में लगा देना चाहिए। यही सारे धर्म ग्रन्थों का सार सारे दर्शनों और साधना पद्धतियों का सार है। हमारे गुरुदेव ने हमें अपने चरित्र द्वारा यह शिक्षा दी कि, केवल हरि का नाम ही मधुर से मधुर, मंगलमय से भी मंगलमयी और पवित्र से भी पवित्र हैं। ब्रह्मा से लेकर एक साधारण चींटी तक सारा संसार मायामय, अनित्य, सुख रहित एवं क्षण भंगुर है।

''सत्यं सत्यं पुनः सत्यंम्।

हरेर्नामैव केवलम्॥

अर्थात् केवल ''हरि'' का नाम ही तीनों कालों में परम सत्य है हमें उसे कभी भी नहीं भूलना चाहिये। हमें सदैव उसको याद रखना चाहिए। जब भी जीव ईश्वर को भूल गया तभी वह अपने आप को भी भूल गया, भगवान की याद के साथ-साथ ही उसे अपने आपका भी भान हो जाता है। जीवों पर सबसे बड़ी विपत्ति तब आती है जब वह ईश्वर के सुमिरन भजन को भूल जाता है। यही उसके दुःखों का मूल कारण भी होता है क्योंकि सत्पुरुषों के मतानुसार जब-जव जीव सांसारिक भोगों में आसक्त होकर ईश्वर को भूल जाता है तभी उसे अपने स्वयं के स्वरूप ''ईश्वर अंस जीव अविनासी'' की विस्मृति भी हो जाती है और वह अनेक प्रकार के क्लेशों से घिर जाता है। हुजूर अपनी अटपटी भाषा में इसे बर्बादी कहते हैं ''भूल गया तो बर्बाद है'' अर्थात ईश्वर को भूलना ही सबसे बड़ी बर्बादी है। इसके कारण हमें अनेक प्रकार के दारुण क्लेशों का सामना करना पड़ता है।

हमारे गुरुदेय बाबा मनोहरदास जी महाराज ने संसार के साधकों को साधना का महत्त्वपूर्ण सूत्र बतलाते हुए यह बात सीधे-साधे ढ़ंग से अभिव्यक्त की थी ईश्वर को याद रखना ही श्रेयकर है जब तक हम भगवान में अपने मन और बुद्धि को लगाए रखेंगे तब तक जीव परम सुख का अनुभव करता रहेगा उससे सम्बन्ध विच्छेद होते ही यह आनन्द सिन्धु का निवासी जीव उसी प्रकार विविध प्रकार के कष्टों का अनुभव करके तड़पता रहता है जैसे किसी मछली को उसके प्राणाधार जल से विलग करने पर वह तड़प-तड़प कर अपने प्राणों को त्याग देती है। सार बात यह है कि गुरुदेव ने भगवान के भजन-सुमिरन को सुख का, तथा उसके विस्मरण को दुःख का कारण माना था। रामचरित्र मानस में श्री हनुमान जी जीव की विपत्तियों का मूल भी भगवान के विस्मरण को डी बतलाते हैं–

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई।

जब तब सुमिरन भजन न होई॥

अतः हमारे कल्याणकारी गुरुदेव हमें हमेशा हरि नाम को याद रखने का सदोपदेश देते हुए कहा करते थे–

"याद रख। याद है तो आबाद है

भूल गया, तो बर्बाद है।"

शास्त्रों-पुराणों में सद्गुरु का लक्षण बतलाया गया है कि वही गुरु है जो केवल हरि नाम स्मरण करना सिखलाता हो–

सः गुरु स पिता चापि सा माता वान्धवोऽपि सः।

शिक्षयेच्चेत्सदा स्मन्तुं हरेनां मैव केवलम्॥

अर्थात जो सर्वदा केवल हरिनाम स्मरण करना ही सिखलाता है वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बन्धु भी वही है।

इस अर्थ में हमारे गुरुदेव सच्चे सद्गुरु थे क्योंकि उन्होंने परमात्मा के भजन-ध्यान को ही अपने जीवन का एकमात्र ध्येय बनाया था। वे सदैव उस "अलख पुरुष मूर्ति के ध्यान में मग्न रहा करते थे। उन्होंने अपने मन और बुद्धि को ईश्वर में लगा दिया था। मन से भगवद् चिन्तन एवं बुद्धि में उसी परम तत्व, परमेश्वर का विचार किया करते थे। हम पूर्व में हुजूर की आध्यात्मिक साधना के बारे में निवेदन कर चुके हैं कि उनके स्वाध्याय का एकमात्र प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद् भागवद्गीता थी। गीतोक्त मार्ग अपना कर उन्होंने परं सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान ने गीता में अनेक स्थलों पर अर्जुन (जीव मात्र) को यह आदेश दिया है–

मध्येव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिस्यसि मध्येव अत ऊर्ध्व न संशय॥ गी. 12/811

अर्थात, तू मेरे मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा इसके बाद तू मेरे में ही निवास करेगा– इसमें संशय नहीं है।

इसका सीधा साधा तात्पर्य यह है कि जिसने अपने मन से सांसारिक संकल्प-विकल्पों को त्यागकर, एक हरि स्मरण में ही लगा दिया हो और बुद्धि को भी उस ईश्वर में सम्पूर्णता से जोड़ दिया हो, उसका निवास ईश्वर में ही होता है, वह स्वयं भगवद् स्वरूप हो जाता है। हमारे गुरुदेव ब्रह्म स्वरूप महात्मा थे क्योंकि वे हमेशा से सोते जागते सभी अवस्थाओं में ईश्वर को अपने अन्दर और आपको ईश्वर में एक रस अनुभव करते थे।

तूँ तूँ करता तूँ भया,

मुझ में रही न हूँ।

वास्तविकता यह है कि जीव और ब्रह्म का नित्य योग है। जीव और ब्रह्म एक क्षण के लिए कभी अलग नहीं होते। भगवान के साथ अपना स्वतः सिद्ध नित्य सम्बन्ध है। लेकिन भगवान की माया "अविद्या" के कारण वह (जीव) इस नित्य सखा को भूल गया। वह नर अपने सखा नारायण को भूलकर इस संसार में भटक गया है। अब अहेतु की कृपा करने वाले उसके नित्यसखा, उसके स्वामी नारायण उसे इस विस्मरण का बोध कराते हैं, उसे इस नित्य योग का स्मरण कराते हैं तब यह जीव परमानंद के सागर अपने स्वामी आनन्द सिन्धु को पाकर कृतार्थ होता है। अतः हुजूर के वचन–"याद रख, याद है, तो आवाद है"। इस नित्य-योग की याद दिलाते हैं कि तू उससे अलग नहीं और तेरा मालिक भी तुझसे व्यारा नहीं तू ही उसको भूल गया है। अतः उसे याद कर उसका विस्मरण ही तेरे सारे दुःखों का कारण है, वह तो हमेशा तेरे अंग-संग है वह घट-घट का वासी है।

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।

तेरा साई तुझ में, जागि सके तो जागि॥

बाबा साहब ने उस ब्रह्म से नित्य योग प्राप्त कर लिया था, उन्होंने अपने इष्ट ग्रन्थ श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार अपने मन और बुद्धि से इस जड़ संसार की ममता, आसक्ति और सुख भोग की इच्छा को सदैव के लिए निकाल फेंका था। मन को संसार के चिन्तन से हटाकर भगवान में लगा दिया तथा बुद्धि के द्वारा दृढ़ता से निश्चय कर लिया कि–

मैं केवल भगवान का ही हूँ और केवल (एकमात्र) भगवान ही मेरे हैं। इस प्रकार उन्होंने दृढ़ निश्चय करके इस संसार का चिन्तन और इसका विचार त्यागकर ईश्वर के नित्य सम्बन्ध को अनुभव कर लिया था। उन्होंने समस्त साधकों को अपने तत्व ज्ञान का उपदेश देते हुए इस बात पर विशेष जोर दिया कि जब भी, जो भी हमेशा ईश्वर में अपना मन और अपनी बुद्धि को लगा देगा उसी क्षण उसे जो

अनुभव होगा वह मन और बुद्धि से परे की यस्तु होगी और उसे वह स्वयं ही अनुभव कर सकेगा उसका वर्णन मनवाणी से अकथनीय होगा। हमारे हुजूर इस संसार में संसारी प्राणियों के वीच रहकर भी उनसे व्यारे लोक के निवासी थे। उनका ''ज्ञानध्यान व्यारा था'' जिसे साधारण संसारी मानव क्या समझ सकते हैं। वे संसार में रहकर अनेक प्रकार की अटपटी, न समझ में आने वाली अनेक क्रियाओं में संलग्न रहते तो कभी शांत समुद्रवत निश्च्येष्ट भाव से स्थित रहते। उनके क्रिया व्यापार को देखकर लोग अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार उनके वारे में भिन्न-भिन्न विचार और भावना रखते थे। कोई उनको सिद्ध पुरुष कोई अघोरी, तो कुछ लोग उन्हें ''बावरा'' मानते थे लेकिन जिसने अपनी बुद्धि को और मन को ईश्वर को अर्पित कर दिया हो उसके बारे में साधारण लोग क्या अनुमान लगा सकते हैं जिसकी जैसी भावना वैसे ही दर्शन होते हैंः–

जिनकी रही भावना जैसी

प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने भाव के अनुसार आपको मानकार तथा जानकार वैसे ही भावनानुसार फल प्राप्त करता था। वे हमेशा ईश भजन-ध्यान में लगे रहते लेकिन उसका प्रदर्शन नहीं करते। कोई भाग्यवान साधक आपसे कोई साधना का रहस्य पूछता तो बड़े सीधी और सपाट शैली में आप उसका समाधान भी कर दिया करते। सामान्य संसारियों कर्मासक्त लोगों को एक ही बात कहा करते कि–

याद रख, याद है तो आबाद है।

भूल गया तो बर्बाद है॥

संसार कार्यों के साथ-साथ ईश्वर को भी याद रखो। अगर ईश्वर स्मरण करते हुए तुम संसार में रहोगे तो सब प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त कर आनन्दपूर्वक ईश्वर को भी प्राप्त कर लोगे और संसारी कार्यों, संसार के विषय-भोगों के संग्रह और भोगों में आसक्त होकर, उस ईश्वर को भूल गए तो समझो बर्बादी आपके सन्मुख खड़ी है। अतः वे गीता के अनुसार सव समय सोते-जागते, खेलते-खाते ईश्वर को याद रखने की बात कहा करते। ईश्वर प्राप्ति का सहज उपाय जो स्वयं उन्होंने अपनाया और जिसका दूसरों को भी अपनी साधना द्वारा उपदेश दिया वह था कि सव समय ईश्वर को स्मरण करना तथा संसारी कार्यों को भी करते रहना।

भगवान श्री कृष्ण इस रहस्य को अपने परमसखा अर्जुन को बतलाते हुए कहते हैं–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंसयम्॥ (8-7 श्री मद.)

तू सब समय में मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। मेरे में मन और बुद्धि अर्पित करने वाला तू निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा। यहाँ एक विशेष उल्लेखनीय साधन का रहस्य यह है कि भगवान ''सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर'' पद से यह रहस्योद्घाटन कर रहे हैं कि मेरी याद में एक क्षण का भी विराम नहीं होना चाहिए। साधक से सिद्ध बनने में बस एक क्षण का विलम्ब ही बाधक होता है। अतः साधना का परम रहस्य बाबा ने यह बतालाय कि हम संसार के कर्त्तव्य-कर्मों के साथ-साथ हर सांस पर प्रभु का स्मरण करते चलें तो हमें ईश्वर की प्राप्ति में कोई विलम्ब नहीं, वह हमें हमेशा सहज प्राप्त है। आप कहते थे कि ईश्वर तो बहती हुई गंगाजी के सदृश्य है जब इच्छा हो उसमें गोता लगा सकते हैं। वहाँ वह हर घड़ी हर क्षण लाखों के उद्धारार्थ अखण्ड बह रही है। हे जीव! तू आलस्य प्रमाद को छोड़कर उसमें अपने हाथ-पग क्यों नहीं पखार लेता, यह शरीर हमेशा नहीं रहना, यह शीशे की भांति क्षण-भंगुर है, अतः जब तक यह शरीर हमारा साथ छोड़े, उससे पहले ही इसके द्वारा साधन भजन-स्मरण करके अपनी आत्मा को उस परमात्मा का अनुभव करा दे, अपनी पसन्द के एक छन्द के द्वारा वे कहा करते थे–

चल काशी, अविनाशी से मिला देऊँ तोय।

चौरासी का फन्दा तुरत टूट जायेगा॥

वहती गंगा हाथ पग क्यों न पखार लेत।

कांच कासा शीशा फटाफट फूट जायेगा॥

अतः इस नश्वर शरीर का भरोसा न रखते हुए हमें अपनी बुद्धि और मन को ईश्वर के स्मरण में लगा कर अपने और ईश्वर के बीच नित्य सम्बन्ध को अनुभव कर लेना ही इस मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए।

बाबा महाराज ने ईश्वर को याद करने एवं उसका भजन-ध्यान करने के लिए कुछ गोपनीय युक्तियाँ अपने शिष्यों को समझायी थीं। आप कहा करते थे कि योग की युक्तियों को जितना छुपा के रखा जावेगा उतना ही प्रभावोत्पादक होगी। ईश्वर के निमित्त किया जाने वाला हर कार्य जप, तप तथा दान गुप्त रूप से करना चाहिये। अपने अतिरिक्त दूसरे को यह नहीं मालूम होना चाहिए कि हम ईश्वर के निमित्त क्या क्रिया करते हैं। संक्षेप में हुजूर द्वारा निर्देशित जप ध्यान से सम्बन्धी युक्तियों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है–

भजन ध्यान की गोपनीयता

हुजूर ने अपनी साधना के माध्यम से हमें यह रहस्य समझाया है कि हमें ईश्वर के भजन-ध्यान का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। संसार को दिखलाने से उसके प्रभाव में कमी आ जाती है। दूसरी बात यह है कि भजन-ध्यान अन्तर की क्रियाएँ हैं मन और बुद्धि के विषय हैं। अतः हमें अपने मन बुद्धि को परमात्मा के

भजन-ध्यान में लगाना चाहिए यही सबसे उत्तम साधन है–

दोहा. बाहर क्या दिखलाइए, अन्दर जपिए नाम।
कहा काज संसार के, तुझे धनी से काम॥

अतः ईश्वर के स्मरण में किसी प्रकार का दिखावा और प्रदर्शन ठीक नहीं। बाबा हुजूर ने अपने साधन भजन को कभी भी सार्वजनिक प्रदर्शन का विषय नहीं बनाया। उनका ईष्ट और उसकी साधनापूर्ण रूपेण गुप्त ही रही। उनके गुरु का ज्ञान न्यारा था। एक राजा था। उसको छोड़ उसका सारा परिवार हरिभक्ति में रंगा हुआ था। रानी को इस बात का बड़ा दुःख रहता था कि हमारे महाराज भगवान का कभी नाम नहीं लेते और ना कभी कथा कीर्तन आदि में भाग लेते हैं। रानी दिन भर भगवद् भक्ति हेतु कुछ न कुछ किया करती थी। कभी जप कभी व्रत उनका अधिकांश समय आध्यात्मिक क्रियाओं में ही व्यतीत होता। एक दिन महाराज सोये हुए थे उस समय उनके मुख से ''गोविन्द माधव हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवा'' आदि भगवान के नामों को निकलते हुए महारानी ने सुना तो वह परम प्रसन्न हुई। प्रातः महाराज ने पूछा कि आज किस खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा है, तो महारानी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि आज रात्रि को नींद की अचेत अवस्था में भी आपके मुख से भगवान के नाम निकल रहे थे। सो उसी खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा है। राजा को बड़ा दुःख लगा उसने कहा कि मुख से नाम ही निकल गया तब जी कर क्या करना है। ऐसा कहकर राजा ने अपने प्राण त्याग दिये। क्योंकि वह गुप्त भक्त था। भक्ति का प्रदर्शन उसकी साधना का उद्देश्य न था। अतः हुजूर ने हमें यह गुप्त रहस्य बतलाया कि क्या भजन करते हो, क्या तप करते हो, क्या दान देते हो, इन सब बातों का दूसरे व्यक्ति को पता नहीं चलना चाहिए यही गुरु का ज्ञान है। भगवान तो बिना प्रदर्शन के भी सब कुछ जानते हैं।

प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ।
कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊँ।
फलहिं तवहिं जब करिअ दुराऊँ॥

अतः हुजूर महाराज साधना मे प्रदर्शन को ठीक नहीं मानते थे क्योंकि साधना जप तप के प्रदर्शन से लोक प्रसिद्धि होती है। संसार में मान बढ़ता है और साधक के कर्तापन का अभिमान बढ़कर उसका पतन हो जाता है। अतः भगवदार्थ कर्मों में पूर्ण गोपनीयता होनी चाहिए।

भजन-ध्यान में तल्लीनता एवं तदाकारता

हुजूर महाराज बाबा मनोहरदास जी महाराज ने ध्यान के रहस्य को अपनी साधना पद्धति से अपने शिष्यों एवं अनुयायियों को समझाया। वह स्वयं अपने इष्ट

के ध्यान में मग्न रहा करते। उन्हें बाह्य जगत का बिल्कुल बोध नहीं रहता था। उन्होंने अन्तर्मुखी होकर अपने आपको अपने मन बुद्धि को परमब्रह्म में लीन कर दिया था। वह हमेशा सहज समाधि अवस्था में रहा करते थे। उन्होंने अपने आपको उस ईश्वर में लीनकर तदाकारता प्राप्त कर ली थी। वे स्वयं ब्रह्मस्वरूप बन गये थे। धारणा, ध्यान और समाधि के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने मन और इन्द्रियों को क्रिया व्यापार को शान्त कर लें, जिसकी इन्द्रियाँ और मन अभी शान्त होकर अन्तर्मुखी नहीं हुई है ऐसा व्यक्ति न ध्यान करने का अधिकारी होता है और समाधि का तो प्रश्न ही नहीं। हमारे हुजूर ने सम-दम, त्याग एवं तितिक्षा आदि षट सम्पत्ति पर अपना अधिकार किया हुआ था। अतः वे सहज समाधि अवस्था में रहा करते थे। पाठकों एवं साधकों के हितार्थ भजन एवं ध्यान के लिए पांतजलि योग दर्शन के आधार पर कुछ तथ्य निवेदन किये जाते हैं। उनके अनुसार चित्त की वृत्तियों का शान्त हो जाना ही योग है। जब तक मनुष्य के चित्त में चंचलता है तब तक उस तत्व की प्राप्ति दुर्लभ है।

"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। (प.यो.सू. 2)

इस सूत्र के अनुसार जिसने अपनी चित्त वृत्तियों को शान्त कर लिया है वही योगी है। अब मनुष्य अपने चित्त को किसी भी युक्ति से शान्त कर लेता है तो उसका परिणामः–

तदा द्रष्टु : स्वरूपे अवस्थानम्॥ (प.यो.सू. 2)

उस समय द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यद्यपि जीव (दृष्टा) अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। लेकिन अविद्यावश वह अपने को देही मानने के कारण उस देह के मन बुद्धि एवं चित्त की वृत्तियों को अपना ही स्वरूप मान लेती है। जब तक योग साधनों द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता तब तक दृष्टा (जीव) अपने चिन्त की वृत्तियों के अनुरूप ही अपना स्वरूप समझता रहता है। इसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अतः योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की वृत्तियों पर प्रतिबन्ध लगा के, जीवन को स्वरूप स्थिति का बोध करके , सुखी एवं शान्त परब्रह्म की प्राप्ति करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मुनी श्री श्रेष्ठ पातंजलि ने अपने योग मार्ग के आठ अंग निर्धारित किये जिसका सांगोपांग अनुष्ठान करने पर चित्त निर्मल होकर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है अर्थात् साधक (दृष्टा) को अपनी आत्मा का स्वरूप, बुद्धि, अहंकार और इंद्रियों से सर्वथा भिन्न दिखाई देने लगता है। पतंजलि के योग के आठ अंग ये हैं।

यम नियमासन प्राणायम प्रत्याहार धारण ध्यान समाधयो अष्टवडानि॥" (प. यो. 29)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा, ध्यान तथा समाधि ये आठ अंग हैं इनका क्रम से अनुष्ठान करने पर चित्त के मल विक्षेप एवं

आवरण दोष शान्त होकर वह निर्मल हो जाता है। संक्षेप में इनका जानकारी इस प्रकार है।

1. पाँच यम–"**अंहिसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः**" **(यो. सू. 30)**

(i) अहिंसा–अर्थात् मनवाणी और कर्म से किसी को न सताना।

(ii) सत्य–यथार्थ, प्रिय एवं हितकारी वचन वोलना।

(iii) अस्तेय–छल, कपट के व्यवहार से दूसरे के स्वत्व को अपहरण न करना तथा सव प्रकार की चोरियों से बचना।

(iv) ब्रह्मचर्य–मन, वाणी और कर्म से सभी प्रकार के मैथुनों का त्याग एवं कामोद्दीपक दृश्यों, साहित्यों एवं अन्य साधनों का सर्वधा त्याग ब्रह्मचर्य है।

(v) अपरिग्रह–अपने स्वार्थ हेतु ममता पूर्वक धन सम्पत्ति और भोग सामग्री का संग्रह न करना।

2. नियम पाँच हैं–"**शौच संतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥**" **(प.यो.सू. 32)**

(i) शौच–शरीर की बाहरी एवं अन्तः करण की शुद्धि करना।

(ii) सन्तोष–प्रारब्धानुसार प्राप्त अनुकुल प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुष्ट रहना तथा कामना का अभाव।

(iii) तप–स्वधर्म हेतु कष्ट सहना व्रतादि द्वारा मन एवं इंद्रियों के क्रिया व्यापार पर नियंत्रण करना।

(iv) स्वाध्याय–भगवान के पवित्र नामों का जप, सदग्रन्थों का नियमपूर्वक अध्ययन करना।

(v) ईश्वर प्राणिधान–ईश्वर को सच्चे हृदय से शरणागति इस प्रकार यम और नियम अष्टांग योग के दो प्रथम अंग हैं, जिनके द्वारा मनुष्य विषयी से साधक कोटि में आता है। अत तीसरा अंग है।

(3) आसन–"**स्थिर सुखमासनम्**" ॥ (प.यो.सू. 46)

स्थिर और सूखपूर्वक हम जिस प्रकार अधिक समय बैठ सकें वही आसन है लेकिन शरीर गर्दन और रीढ़ स्तम्भ ये तीनों सीधे होने चाहिये ऐसा गीता अध्याय 6 में वर्णित है। मन के स्थिर लगाने हेतु आसन का स्थिर एवं सुखदाई होना आवश्यक होता है।

(4) प्रणायाम–"श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः" (प.यो.सू. 49)

स्वासं अर्थात पूरक प्रस्वासं अर्थात् रेचक, इन दोनों की गति अर्थात् प्राणवायु

की गमनागमन रुप क्रिया का बंद हो जाना प्राणायाम का सामान्य लक्षण है।

(5) प्रत्याहार–स्वविषयासंप्रयोगे चित्त स्वरूपानुकार–

इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (प. यो. सू. 2/54)

अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर जो इन्द्रियों का चिन्तन के स्वरूप में तदाकार हो जाना है, वह प्रत्याहार है। योगी प्राणायाम के द्वारा मन और इन्द्रियों को शुद्ध कर लेता है तपोपरान्तं वह इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत करके मन में विलीन कर लेता है। यही प्रत्याहार है। इस स्थिति में इन्द्रियाँ अपने गोलकों में निर्विषय होकर स्थिर हो जाती हैं जिससे योगी का प्रत्याहार सिद्ध हो जाता है उसकी धारणा शक्ति भी प्रबल हो जाती हैं। उपर्युक्त वर्णन योग के पाँच वहिरंग साधनों का हुआ, जो शरीर अर्थात् मन और इन्द्रियों की वृत्तियों को शान्त करने का माध्यम है। अब हम पंतजलि योग गे आन्तरिक और महत्त्वपूर्ण अंगों का संक्षेप में वर्णन करते हैं–

(6) धारणा–देशबन्धश्रिन्तस्य धारणा॥ (प.यो.सूत्र 3/1)

इसका तात्पर्य है किसी एक बिन्दु या कोई ईष्ट मूर्ति में चित्त को ठहरा देना धारणा कहलाती है। (इसमें सर्व प्रथम साधक अपने स्वाध्याय, अथवा गुरुदेव के आदेशानुसार अथवा अपनी रुचि से किसी देवता की मूर्ति अथवा चित्र का निश्चय करके उसे अपने चिन्त में अचल स्थिर करना होता है। यह चुनाव साधक के लिए सावधानी से करना चाहिए क्योंकि जैसी धारणा करेंगे तदनुरुप सिद्धि प्राप्त होगी। किसी उग्र रूप, देवी देवता की धारणा करना साधक के लिए खतरना हो सकता है क्योंकि धारणा किया हुआ रूप ही अपने ध्यान में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। अतः साधन उस रूप सिंह, हनुमान विराट स्वरूप, काली, भैरव आदि के दर्शनों से भयाक्रांत होकर विक्षिप्त हो जाया करते हैं। हमारे गुरुदेव बाबा अपने अनुयायियों को भगवान विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप के ध्यान का उपदेश तथा विष्णु सहस्त्रनाम के जप को श्रेष्ठ साधन बतलाया करते थे। हुजूर आप स्वयं किस स्वरूप ध्यान में मस्त रहते इसकी जानकारी किसी को न थी क्योंकि उनके गुरुदेव किस स्वरूप ध्यान में मस्त रहते इसी जानकारी किसी को न थी क्योंकि उनके गुरुदेव का ज्ञान न्यारा था उसकी जानकारी किसी को भला कैसे हो सकती थी। क्योंकि वह अत्यन्त गोपनीय रहस्य था। हाँ, हुजूर संसारी लोगों को उनके मार्ग दर्शन हेतु कुछ उपयोग आदेश फरमा दिया करते थे।

(7) ध्यान–''तत्र प्रत्येकतानता–ध्यान॥'' प.यो. सूत्र 3/2)

उस धारणा वृत्ति का एक तार चलना हो ध्यान है। जिस ध्येय मूर्ति (वस्तु) में चित्त को लगाया जावे उसी में चित्त का एकाकार हो जाना, ध्येय मात्र की एक ही वृत्ति चलना और उसके बीच किसी अन्य वृत्ति का न उठना ध्यान है। यहाँ ध्यान के

सम्बन्ध में यह निवेदन है कि ध्यान समाधि अवस्था की पूर्ववस्था होती है। उसमें ध्याता ध्यान एवं ध्येय की त्रिपुटी बनी रहती है। ध्याता के चिन्त में ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता सर्व वृति शून्यता होती है। लेकिन ध्यान "समाधि" में जब बदल जाता है, तो ध्याता और ध्यान क्रिया का लोप की पराकाष्ठा ही होती है।

समाधि–तदेवार्थ मात्र निर्मास स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥

जब ध्यान करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाता है उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है और वह ध्येय में ही लीन सा हो जाता है तो ध्यान की वह गाढ़ स्थिति ही मसाधि अवस्था होती है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान, और ध्येय की त्रिपुटी का आभास बना रहता है लेकिन समाधि अवस्था में ध्याता (चिन्त स्वरूप) ध्येय में ही लीन होकर तदाकारता ग्रहण कर लेता है, इस अवस्था में वह अपने इष्ट का ही रूप धारण कर लेता है। पतंजलि योग दर्शन के उपर्युक्त आठ अंगों का वर्णन करने का मेरा उद्देश्य पिष्ट पोषण करना कतई नहीं है। उपर्युक्त योग मार्ग के आलोक में, मैं अपने हुजूर बाबा मनोहर दास जी महाराज की योग धारणा का वर्णन करना ही अपना अभीष्ट उद्देश्य समझते हुए निवेन करना चाहता हूँ कि हुजूर के जीवन और उनके आध्यात्मिक दर्शन से यह सिद्ध होता है कि उन्होंने सम्पूर्ण यम-नियम को अपने आचार विचारों का अभिन्न अंग बना लिया था। उनके समकालीन सेवकें, एवं अनुयायियों द्वारा सुनाए संस्मरणों से इस बात की पुष्टि होती है कि अहिंसा सत्यादि तथा शौच सन्तोष तप आदि को उन्होंने अपने जीवन का अंग बना लिया था तथा वे सदैव एक ही आसन पर विराजा करते थे। उन्होंने आसन को सिद्ध किया हुआ था। समदम तितिक्षा आदि गुणों के द्वारा अपने मन एवं इन्द्रियों का पूर्ण निग्रह किया था। उनकी धारणा पर ब्रह्म में स्थिर हो गई थी वे हमेशा ईश्वर के ध्यान में डूबे रहा करते थे तथा सहज समाधि में स्थित होकर स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो गये थे। हम संसारी लोगों को ईश्वर की याद दिलाते हुए कडा करते कि

"याद रख, याद है तो आबाद है,
भूल गया, तो बर्बाद है।"

हम उसकी याद उसका भजन–ध्यान कैसे करें इसकी युक्ति बतलाते हुए उनका कहना था कि जब तक हमारा चित्त अपने ध्येय (इष्ट रूप) में तल्लीन और तदाकार नहीं होता तब तक हमें अपने स्वरूप का बोध नहीं हो सकता। ज्यों हमारी धारणा शक्ति प्रबल होकर हमारे ध्यान में तदाकारता आती जायेगी हम ईश्वर के वास्तविक तत्व रहस्य को समझते जायेंगे भगवान के सुमिरन ध्यान के लिए वे अन्तर्मुखी वृत्ति का विशेष महत्त्व बतलाया करते थे जब तक हमारी इन्द्रियाँ एवं मन बाहरी विषयों में रमण करता है तब तक हम भजन एवं ध्यान के सही

अधिकारी नहीं जैसे गोपियाँ हर क्षण अपने प्यारे कृष्ण की याद में तन्मय रहा करती थीं सोते जागते उन्हीं में अपनी मन बुद्धि को लगाये रखती थीं ठीक उसी प्रकार अपने ध्येय के चिन्तन मनन एवं उसके ध्यान में डूबकर हम उसके ध्यान में डूबकर हम उसके साथ एकाकार हो जाएं यही साधना का रहस्य है। ध्येय में तदाकार होना ही ध्यान क्रिया का लक्ष्य होता है। हमें पूर्ण आनंद की प्राप्ति के लिए प्रभु के नाम रूप का माध्यम लेकर पूर्व तदकार होना होगा। जैसे एक सद्य व्याहता अपने पति के ध्यान में डूबी हुई उसके संसर्ग का आनन्द लेती है, उसे बाह्य जगत का कोई ध्यान नहीं रहता। वह अपने प्रिय के रूप यौवन, उसके स्वभाव एवं क्रिया कलापों को अपने ध्यान में साकार देखती है। ठीक इसी प्रकार साधक को अपने इष्ट के ध्यान में तदाकारता प्राप्त करने पर ही आनन्दानुभूति होगी।

हमारी साधना में प्रायः दिखावा अधिक होता है हम आँखें मीच कर शुरू तो भगवान का ध्यान करते हैं लेकिन कुछ क्षण भगवान के स्थान पर संसार के प्राणी एवं पदार्थों का ही ध्यान होने लगता है और यह ध्यान इतना दृढ़ता प्राप्त कर लेता है कि हम उसमें तदाकारता प्राप्त कर सुखी-दुःखी होने लगते हैं। इसका कारण है कि संसार के भजन ध्यान का हमें अनेकों जन्मों से अभ्यास किया हुआ है हम रात-दिवस इसी संसार के भजन ध्यान में डूबे रहते हैं। अगर संसारिक वस्तुओं और व्यक्तियों के ध्यान की तरह ही ईश्वर ही हमें हमेशा याद रहे तो हमारा मनुष्य जन्म लेना सफल हो जावे। हम बैठते तो हैं भगवान के ध्यान हेतु लेकिन हमारा मन बाह्य जगत में ही भटकता फिरता है। संसार को हम अपने ध्यान रूप में दिखाई पड़ते हैं, संसार में हम ज्ञानी-ध्यानी एवं भागवत भक्त के नाम से विख्यात हो जाते हैं सम्मान पाते हैं लेकिन हम स्वयं जानते हैं कि हम कितना भागवद्भजन करते हैं, कितना सच्चा उसका ध्यान करते हैं। हमारे दिखावे एवं वास्तविक ध्यान में बहतु बड़ा अन्तर होता है। हम वहाँ चाहते तो परमशान्ति का अनुभव करना हैं, लेकिन दिनों-दिन हमारे अन्तर अन्तर्द्वन्द बढ़ता जा रहा है हमारा अन्तः करण पूर्ण अशान्त रहता है उसका मूल कारण यह है कि हम सच्चे हृदय से सच्ची लग्न से ईश्वर से जुड़ते नहीं, उसकी ओर मुड़ते नहीं, अतः आनन्दघन की एक बूंद भी अपने इस शुष्क मरु-हृदयस्थल पर नहीं पड़ पाती है। हम चाहते कुछ हैं और करते कुछ और ही। अतः परम् शान्ति की इच्छा हमारी पूर्ण नहीं होती, जयशंकर प्रसाद के अनुसार–

ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है,
कैसे इच्छा पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह बिड़म्बना है जीवन की॥ (कामायनी से)

हमारा ज्ञान (विचार) और हमारी क्रिया में साम्य नहीं होने के कारण हमारी

इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती। हम दिखावा अधिक करते हैं डूबते कम हैं। जिसकी कथनी से उसकी करनी (क्रिया) नहीं मिलती उसे पाखण्डी कहा जाता है।

एक रमणी अपने प्रेमी के प्रेम में डूबी उसकी यादों में, उससे मिलन की कल्पनाओं में डूबी उससे मिलने चुपचाप अंधेरी रात्रि में दूरस्थ घोर जंगल में चली जा रही थी रास्ते में एक मुसलमान नवाज पढ़ रहा था और आंखें बन्द करके बड़े ध्यान से अल्लाह मियाँ की इवादत में मस्त बैठा था, जव वह प्रेमान्ध रमणी उस रास्ते से जाने लगी तो वे साहब, उस पर बरस पड़े, वोले, ''हरामजादी, बदतमीज औरत क्या तुझे दिखाई नहीं दिया तुने हमारे पवित्र आसन पर पैर रखकर उसे अपवित्र कर दिया। उस औरत ने जवाब दिया ''हुजूर माफ करें उस वक्त में अपने प्रेमी के ध्यान में डूवी हुई थी, सो मुझे बाहरी दीनोदुनिया का कुछ भी आभास नहीं था। लेकिन आप तो उस परवरदिगार की याद में डूवे थे, आपको अपने आसन और मेरे यहाँ से गुजरने का कैसे पता चला–

दोहा– *मैं नरराती न लख्यौ, तुम कस लख्यौ सुजान।*

पढ़ कुरान वौरा भयो, रम्यौं नाहिं रहमान॥

जव एक तुच्छ संसारी मनुष्यों में अनुरक्त होकर मुझे उससे अतिरिक्त कुछ भी नजर नहीं आ रहा था, तो आप उस संसार के मालिक की याद में डूबे हुए को मेरे आगनन का पता कैसे चला।

''वास्तविकता यह है कि आपने सिर्फ कुरान को पढ़ा ही है उस परवर दिगारे आलम में डूवे नहीं।''

उपर्युक्त दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट होती है कि हम वेद शास्त्रों एवं विभिन्न धर्म ग्रन्थों को पढकर ही अपने आपको तत्व वेत्ता और भगवद् भक्त मान बैठते हैं, उसमें वास्तविकता से डूबते नहीं।

हनारे गुरुदेव ईश्वर में अन्तर्मन से डूबे रहकर उसके साथ तदाकार हुए रहते थे। हन संसारी लोगों को भी अपने इस आचरण से मानो यह शिक्षा दे गये कि ऐ मनुष्यों। धर्म का साधना का दिखावा पाखण्ड है अगर सच्ची एवं वास्तविक शान्ति चाहते हो तो मन ही मन सदैव उसकी याद करते रहो, उसक ध्यान में अपने को जोड़ दो। इस संसार में जिस प्रकार तुम्हारा मन दौड़ लगाता है संसार के नश्वर भोग पदाथों झूठी मान बढ़ाई में हमारे बुद्धि लगी रहती है। ये दोनों अगर संसार से हटकर ईश्वर के ध्यान एवं भजन में जुड़ जाये तो, ऐ जीव। तेरा कल्याण अवश्य होगा यही सच्चा और अनुभूत गुरु ज्ञान है।

''इधर से उखाड़, उधर लगा॥''

हमारे गुरुदेव साधना का रहस्य बतलाते हुये कहा करते थे कि हमारी मन

बुद्धि संसारी हो रहे हैं संसार में यह दोनों बद्धमूल हो गये हैं। अतः वैराग्य एवं ज्ञान के कुदाल फावड़ों से इनको जड़ से उखाड़ इन्हें इधर (संसार) उखाड़ कर उधर (परमार्थ) लगा दे। जो मन बुद्धि तुझे अधोगति की ओर ले जा रहे हैं तू उन्हीं से सहयोग से अपने मूल उद्भव परमात्मा से जुड़ जायेगा। भगवान का भी यही आदेश है-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशंय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्व न संसयः॥ (श्रीमद् भगवद् गीता 12/8)

"तू मन-बुद्धि को संसार के किसी प्राणी पदार्थ में न लगा कर, मुझमें ही लगा। इस प्रकार मन-बुद्धि सर्वथ मुझमें लगाने से तू उसी क्षण मुझे ही प्राप्त होगा इसमें कोई संसय नहीं।"

जैसा कि हमारे हुजूर बाबा का कहना था कि इस संसार में उखड़ और उस संसार में आबाद हो अर्थात तू अपने मन-बुद्धि को इस झूंठे संसार से हटा कर उस सत्यनारायण भगवान में जोड़कर तो देख। श्रीमद्भगवत् गीता में यत्र-तत्र भगवान का यही आदेश दिखाई और सुनाई पड़ता है कि यह संसार सुख रहित, क्षण भंगुर है, मनुष्य शरीर प्राप्त करके एक मात्र मुझ को ही भज।

"अनित्यमसुखंलोकमियं,

प्राप्यभजस्व माम्। (9/33)

बुद्धि को भगवान् में लगाने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि में (भगवान को ही प्राप्त करना है ऐसा निश्चय रहे और मन को उसमें लगाने का भावार्थ यह है कि मन से प्रेम-पूर्वक भगवद्चिन्तन होता रहे। ये दोनों मन बुद्धि भगवान की ही देन हैं। अतः इनको उन्हीं में लगाना मेरा कर्तव्य है।

मन बुद्धि में संसार का नहत्व एवं इस जड़ संसार की प्रियता दृढ़ हो जाने के कारण भगवान अत्यन्त सनीप होते हुए भी अति दूर प्रतीत हो रहे हैं। अपने आप को भगवान के अर्पण कर देने से (कि मैं केवल भगवान का ही हूँ) यह दोनों (मन-बुद्धि) भी सरलता से भगवान में लग जाते हैं। हमारे गुरुदेव बावा मनोहरदासजी महाराज ने सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण गति ग्रहण करली थी उनके स्वयं के ईश्वर (गुरुदेव) की शरण होने पर उनका शरीर मन-बुद्धि सब कुछ ईश्वर में तन्मय हो गया था। अतः उनका यह आदेश कि संसार से उखड़ों, ईश्वर में आबाद रहो साधना का सारभूत रहस्य है। पंजाब में "बुल्लेशाह" नामक एक प्रसिद्ध भगवद भक्त एवं पहुँचे हुये सिद्ध हुये हैं। वे अपने प्रारम्भिक जीवन में योग्य गुरु की तलाश में ग्राम-ग्राम, नगर-नगर भटकते फिरे थे। जहां भी सुनते वहों अपने साजवाज को लेकर पहुँचते। एक बार किसी गाँव में उन्होंने, तत्ववेत्ता एवं ब्रह्मनिष्ठ पहुँचे हुए गुरु के होने का समाचार सुना। वे उनसे मिलने को रवाना हो

गये। गाँव के कुछ निकट ही एक खेत में कार्यरत एक व्यक्ति से पूछा कि क्या कर रहे हैं।

वह बोले यहाँ से उखाड़ कर, वहाँ लगा रहा हूं। बात यह थी कि वे सज्जन प्याज की पौध को उसके मूल स्थान से उखाड़कर दूसरी क्यारियों में रोपन कर रहे थे। वुल्लेशाह उस गाँव में पहुंचा। उल्लेखनीय है कि बुल्लेशाह उस समय पंजाब भर में राग रागनियों के लिए ख्याति प्राप्त गायक था। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वुल्लेशाह जैसा महान गायक उनके छोटे से गाँव में भी आ सकता है। लेकिन हकीकत में उन्होंने देखा। बुल्लेशाह ने पूछा कि क्या अमुक सिद्ध पुरुष इसी गाँव में रहता है?'' लोगों ने कहा ''जी हाँ।'' आप जिस रास्ते से इस गाँव में आये हैं वे उसी के नजदीक हैं अपने खेत पर रहा करते हैं। वुल्लेशाह का माथा ठनका, उन्हें एक साधारण किसान मिला था, लेकिन वह कोई संत नहीं था। लोगों ने कहा कि हनारे गाँव में तो बस वही एक है जो अपने उच्च विचारों एवं आदर्श आचार के लिए जाने जाते हैं बुल्लेशाह ने लोगों से कहा कि आज मेरा गाना इसी गाँव में होगा लेकिन शर्त यह है कि आप लोग उन्हें (सतपुरुष) भी मेरा गाना सुनने बुलाएँ।

लोगों ने कहा कि ''वे ना तो किसी का गाना सुनते हैं और ना ही किसी अन्य संसारी क्रिया व्यापार में उनकी रुचि है। वे एकांत में अपने खेत पर चुप-चाप कार्यरत रहा करते हैं। उन्हें न किसी ने पूजा पाठ, भजन-ध्यान करते देखा है और ना ही वे साधु-संतों जैसी वेशभूषा तिलक छापा आदि धारण करते हैं उनका ज्ञान न्यारा है'' वह बहुत कम बोलते हैं, और जो भी बोलते हैं उसका अर्थ हमारी मोटी बुद्धियों में तो कुछ आता नहीं उनकी तातों का रहस्य तो वे स्वयं ही जाने। बुल्लेशाह को उसकी रहनी-सहनी एवं उनके व्यक्तित्व के बारे में उन अनपढ़ ग्रामीणों से सुनकर पूर्ण विश्वास हो गया कि जिस महात्मा की तुझे तलाश है, हो सकता है ये वे ही तत्वदर्शी योगी हों'' उन्होंने लोगों से मिन्नतें की और कहा कि किसी भी प्रकार से रात्रि को होने वाले उनके गाने में लेकर आओ, लोगों ने कहा, ''जी, अवश्य हम उनके पास जायेंगे और उनको यहाँ आने के लिए राजी कर लेगें आपका गाना हमें अवश्य ही सुनाओ। बुल्लेशाह के उस गाँव में आने की खबर बिजली की गति से आस-पास के क्षेत्रों में फैल गई हजारों की तादाद में लोग उस गाँव में बुल्लेशाह के दर्शनों एवं उनके गाने का आनन्द लेने हेतु आ पहुँचे।

उधर ग्रामवासियों ने उन सज्जन पुरुष को भी गांव में आकर रागनी सुनने के लिए राजी कर लिया। लोगों की प्रसन्नता के लिए उन्होंने उनका प्रस्ताव मान लिया और उनके साथ-साथ गांव आ गये। रात्रि को हजारों श्रोताओं के बीच बुल्लेशाह का गाना शुरु हुआ। उस सभी में एक स्थान पर वे सज्जन भी विराजे हुए थे। बुल्लेशाह ने बड़े ननोयोग से अनेक राग रागनियों को सुनाया। जनता उसके गीतों को सुनकर झूम गई। ऐसा प्रभावोत्पादक गाना उन्होने अपने जीवन में नहीं सुना

था। यहीं उल्लेखनीय दात यह है कि बुल्लेशाह उस सभा में जो भी राग रागनी गाता तो चारों और घूम-घूम कर गाता जब रागनी की तान (सम) आती तो उसका तोड़ उन महात्मा के चरणों में ही आता। उस प्रकार उसके समस्त रागों एवं रागनियों की तानें उन पर ही टूट रही थीं और संसारी श्रोताओ की ओर बुल्लेशाह की दृष्टि न थी, लोग वाह! वाह बादशाह कह कर बुल्लेशाह की प्रशंसा कर रहे थे, उस पर चाँदी के सिक्कों की, स्वर्णाभूषणों की वर्षा हो रही थी, लेकिन बुल्लेशाह को कुछ लेना देना नहीं था। वह तो अपने सद्गुरु की प्रसन्नता के लिए गा रहा था। संसारी मान बढाई, धन दौलत के लिए बुल्लेशाह नहीं गाता उसे तो भगवान की भक्ति का मार्ग चाहिए था। जब उसका गाना हो रहा था और उसकी तान टूटने वाली थी वह सज्जन खड़े हो गये दोले–''बुल्लेशाह! ये सारी तानें मुझ पर ही क्यों तोड़ रहे हैं। बुल्लेशाह उनके चरणों में गिरकर अर्ज करने लगा'' हुजूर! मुझे सिर्फ आप ही से काम है, इस संसारी लोगों से मुझे कुछ लेना देना नहीं। ये लोग मुझे झूठी मान बढ़ाई वाह, वाह दे रहे हैं, मुझे सोने चाँदी का प्रलोभन दे रहे हैं, अपना हार्दिक प्रेम भी इन्होंने दिया है, लेकिन लगता है आपको मेरा गाना पसन्द नहीं आया, क्योंकि आपने मुझे अभी तक कुछ नहीं दिया। यह संसारी पदार्थ तो एक दिन नष्ट होने वाले हैं। ''यह झूठी मान बढ़ाई की बातें भावुक लोगों का प्रलाप मात्र हैं। मेरे मन को इन से शान्ति नहीं मिलती मुझे उस ज्ञान को प्रदान करें, जीवों को परम शान्ति प्रदान करता है। मुझे उस योग का मार्ग बतलाएँ यही मेरी अर्ज है यही मेरी आरजू है मैं आपकी शरण आया हुआ बन्दा हूँ।'' साधारण इन्सान के लिबास में छुपे उन महात्मा ने बुल्लेशाह से कहा कि बुल्लेशाह–हमारी देन में विलम्ब नहीं होता, हमनें उस योग के रहस्य को उसी क्षण बतला दिया, जब रास्ते में आते समय तुमने हमें नमस्कार कहा और पूछा क्या कर रहे हो? बुल्लेशाह ने कहा–हुजूर! मैं कुछ समझा नहीं, आप प्याज की पौध उखाड़ कर उसे दूसरी जगह लगा रहे थे! आपने मुझे कोई रहस्य की वात नहीं बतलाई, उन्होंने कहा ''बुल्लेशाह! सारे योग मार्गो का परम् रहस्य यह है कि–

तुम इस संसार से उखड़ जाओ, और ईश्वर के दरबार में आबाद हो जाओ। ''अपने मन-बुद्धि को इस संसार से उखाड़ कर भगवान में लगा के देखो क्या होता है।''

''बुल्लेशाह! तुन आपे से बाहर हो रहे हो, अपनी वृत्तियों को अर्न्तमुखी करके आपे में प्रवेश करो देखो क्या अनुभव होता है। ''उन्होंने बुल्लेशाह को योग के गूढ़तम रहस्यों की जानकारी प्रदान करके उसे अपना जैसा बना लिया यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि बुल्लेशाह आगे चलकर एक ऊँचे दर्जे के सिद्धि पुरुष हुए। इस आख्यान को पढ़कर आपको लगा होगा कि जैसा वर्णन बुल्लेशाह के सद्गुरु का किया गया है वे सारे के सारे लक्षण हमारे गुरुदेव बाबा मनोहर दास जी महाराज में थे वह एक साधारण संसारी मनुष्यों के वेश में महान् संत थे तत्व वेत्ता

थे, ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे। लेकिन उनकी अट-पटी रहस्य पूर्ण बातों को साधारण संसारी नहीं समझ पाते थे।'' गुरुन का ज्ञान न्यारा है तू समझा नहीं, मेरे मटा।''

उपर्युक्त सम्पूर्ण निवेदन का सार यह है कि गुरुदेव हम संसारी जीवों को उद्‌बोधन देते हुए कहा करते थे कि ''याद रख याद है तो आबाद है और भूल गया तो बर्बाद है।'' अर्थात् हमें हमेशा उस ईश्वर को स्मरण रखना चाहिये, उसको याद करने की विधि का निर्देश करते हुए उन्होंने बतलाया कि भजन सुमिरन पूजा पाठ को गुप्त रखना चाहिये उसके प्रदर्शन से अपेक्षित सिद्धि (प्रभु प्राप्ति) नहीं होती। भगवान का सुमिरन सतत् तथा उसका ध्यान तदाकारता पूर्वक हो पहले हम अपने मन बुद्धि को संसार से उखाड़ें और फिर ईश्वर में जोड़े तो तत्काल हमें ईश्वर के दर्शन, आत्म साक्षात्कार होगा। मन की ताकत का खुलासा करते हुए आप कहा करते थे कि हम अपने मन से जिसकी कल्पना चिन्तन एवं मनन करने लगते हैं तो हमारा चित्त तद्रुपता को प्राप्त हो जाता है। ध्यान के प्रकरण में ऊपर कहा जा चुका है कि द्रष्टा दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी से देखना सम्भव होता है। उसी प्रकार हम किसी ध्येय (इष्टमूर्ति) में अपने चित्त को लगाकर एकतानता की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। अतः हमारा मन चित्त जिसकी ओर लग जाता है वह स्वयं उसके रूप में ही रंग कर तद्रुपता ग्रहण कर लेता है। जब यह किसी संसारी व्यक्ति अथवा पदार्थ में लग जाता है तो स्वयं भी उसका रूप धारण कर लेता है और सद्‌गुरु कृपा–प्रेरणा से यह मन ईश्वर में लग गया या ब्रह्म के चिन्तन में लग गया तो स्वयं भी ब्रह्म स्वरूप हो जाता है–महात्मा ''सुन्दर दास'' ने कैसी सुन्दर बात लिखी है–

जो मन नारि की ओर निहारत, तौ मन होत है नारी कौ रूपा।

जो मन काहूपै क्रोध करे, तौ क्रोधमयी है जाय तद्रूपा॥

जो मन माया ही माया रटै नित, तौ मन बूड़त माया के कूपा।

सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

अतः हुजूर बाबा महाराज ने मन को एक मात्र ब्रह्म चिन्तन में लगा दिया और उसके साथ एकात्मभाव, तद्रुपता की प्राप्ति करली थी। हम संसार में रचें-पचे मन वालों को उस आनन्द सागर प्रभु की याद करने और हमेशा उसे याद रखने के लिए उपदेश किया। भजन बन्दगी को प्रेम करने और संसार में अभिनान शून्य होकर जीव मात्र के हित में लगे रहने को वह सर्व धर्म शास्त्रों का सार बतलाते थे।

''दीनताई, दया और नम्रताई दुनिया बीच,

बन्दगी से प्यार राखि, भूखे को खिलाएगा॥''

कहकर एक ऐसी आचार संहिता का बखान करते थे जो साधकों को सिद्धदायक और संसारी लोगों को धनधान्य से परिपूर्ण करके सर्वसुखों के देने वाली है। यह सभी धर्मों एवं सम्प्रदयों द्वारा सर्व सम्मति से स्वीकार्य सिद्धान्त वचन है, इनको आप स्वयं ने अपने जीवन का अंग ही बना लिया था।

हमारे गुरुदेव की साधना पर प्रकाश डालते हुए हमारी लघु काशी वैर के एक विद्वान् कवि लिखते हैं–

अलख अलख कहते रहे, मानें न किसी की दाव।

साधा था पूरा योग, ब्रह्म वेद ज्ञानी थे॥

ज्ञानी थे ऐसे पार पाया नहीं किसी ने भी।

योगी-यती, जती-सती हारे ब्रह्म ज्ञानी थे॥

ध्यानी थे हरी के मान ममता से रहे दूर,

सबके शुभ चिन्तक भक्ति शक्ति के दानी थे।

दानी थे दयाल थे दीनों के दुःख हरनहार,

बाबा मनोहरदास, सर्वगुण-खानी थे॥

❀❀❀❀❀

जग अँधियारा नैन न सूझे, जीव भटक भरमाता है।

ज्ञान-ज्योति प्रकाश दिखाकर, सद्गुरु राह दिखाता है॥

हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।

❑❑❑

अध्याय-10

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

अलख पुरुषमूर्ति

हमारे गुरुदेव बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज के मुख से प्रायः जो वाणियाँ प्रकट होती रहती थीं, सनमें प्रमुख थीं।

"अलख पुरुष मूर्ति",

अलख पुरुष अविनाशी, सच्चिदानन्द,

घट-घट के वासी.... ।"

ॐ गुरुदेव ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप भगवन् नमोनमः। आदि-आदि। अलख शब्द का सामान्य अर्थ है जिसे चर्म चक्षुओं से देखा न जा सके [अ = नहीं, लख = देखना] इस प्रकार जो तत्व दिखाई न दे वह अलख कहलाता है। दिखाई देने के लिए आवश्यक है कि पदार्थ का कोई निश्चित आकार, रूप, रंग आदि हो, जेसको देखकर उसका वर्णन किया जा सकें लेकिन "अलख–को कोई कैसे लख सकता है। क्योंकि उसे किसी प्रकार देखा जा सकता हो, तो फिर वह अलख हो ही नहीं सकता। जो मन-वाणी का भी विषय नहीं उसे ही अलख या ब्रह्म कहा जाता है।

"यतो वाचो निवर्तन्ते
अप्राप्य मनसा सह" (तैत्तिरीय उ. 2/8)

"मन के सहित वाणी जिसे न पाकर वापस लौट आती है।" वह तत्व "ब्रह्म" नाम से जाना जाता है। उसके बारे में अभी तक किसी ने निश्चित वर्णन नहीं किया है क्योंकि जिस तक मन एवं वाणी की पहुँच ही नहीं, फिर किस माध्यम से उसके बारे में जानकारी हो सकती है। श्रुति का उपर्युक्त मंत्र यह सिद्ध करता है कि वह ब्रह्म "अलख" है उसे मन और वाणी का विषय बनाया ही नहीं जा सकता। वेदों ने भी प्रकारांतर से उस तत्व का वर्णन अनेक प्रकार से किया है, लेकिन नेति [ऐसा नहीं) (नेती) ऐसा भी नहीं] कह कर सम्पूर्ण रूप से उसका वर्णन करने में असमर्थता ही प्रकट की। अतः "ईश्वर" मूलतः अलख अनिर्वचनीय) तत्व ही है। जिस प्रकार ब्रह्म "अलख" है ठीक उसी प्रकार उसका अंशी जीव भी अलख ही है क्योंकि उसको भी आज तक किसी ने नहीं देखा। शरीरों को ही शरीरों से देखा जा रहा है अर्थात् इन्द्रियों मन एवं बुद्धि के द्वारा हम बाहरी (बाह्य) जड़ संसार को ही निरख-परख सकने में समर्थ हैं उस ब्रह्म के चेतन अंश जीव को भी इन्द्रियों एवं वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता है–

दुनहु तात यह अकय कहानी,

रामुझत बनइ न नाइ बखानी॥

ईश्वर अंस जीव अविनाशी।

वेतन, अमल सहज सुख रासी॥ (मानस उ. का)

इस प्रकर ''अलखन तत्व में जीव और ब्रह्म जो वस्तुतः न्यारे न होकर एक ही तत्व हैं, आते हैं। उनका स्वरूप वर्णन किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। फिर भी कोइं उस''ब्रह्म'' तत्व जिसका स्वरूप संतों की भाषा में ''अलख'' है, वर्णन करने का प्रयास करें तो समझों वह उस गूढ-तत्व रहस्य से परिचित नहीं। क्यों कि जिसका न नम है न रुप है उसका वर्णन किस प्रकार से किया जा सकता है। वह अनुभव के द्वरा जाना तो जा सकता है लेकिन मन वाणी का विषय न होने के कारण वह अवर्णनीय है, वह तत्व–

अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।

अकल अनीह अनाम अरुपा॥

अनुभव गम्य अखण्ड अनूपा।

नन गोतीत अमल अविनासी॥

निर्विकार निरवधि सुखरासी (मानस उ. का.)

अर्थात–वह ब्रह्म तत्व अजन्मा है, अद्वैत है अर्थात् उसके अतरिक्त दूसरा कोई पवर्य नहीं है, वह निर्गुण रूप है, हृदय का स्वामी है अर्थात जीवन के हृदय में ईश्वर रूप में सदा विवस करने वाला है। उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता इसलिए वह अकल है, वह इच्छा रहित (अनीह) है, उसका कोई नाम रूप नहीं है वह (ब्रह्म अनुभव से जानने योग्य अखण्ड और (अनूप) उपमा रहित है। वह मन और इन्द्रियों से पर, निर्मल तथा विनाश रहित है निर्विकार, सीमा रहित (असीम एवं सुख की राशि है! उपराक्त वर्णन उसी अलख पुरुष मूर्ति का है, जिसका दोष बाबा महाराज अपनी मस्ती में किया करते थे, वेद में उसके अनिर्वचनी तत्व को कुछ लसणों के द्वारा निर्देश मात्र किया है, उसी का अंश यह जीव है जो स्वयं भी कभी नहीं देखा क्या। तत्व ज्ञाता अपने शिष्यों को उस अलख तत्व का लक्षणों द्वारा बोध कराके उन्हें उस ब्रह्म के साथ एकता तदाकारता प्राप्त करने के लिए ''तत्वमसि" महा वाक्यों से यह समझाते हैं कि जिस प्रकार समुद्र से उसकी तरंग अलग नहीं ठीक उसी प्रकार जीव और ब्रह्म भी दो अलग-अलग तत्व न होकर एवं ही सर्व की सहस्त्रों किरणें हैं। ''तत्वमसि'' महा वाक्य का सामान्य अर्थ है तत् - त्वम - असि अर्थात् तत् (वह) त्वम् (तूही (असि) है, वह ब्रह्म तुझसे अलग नहीं वरन तू स्वयं ही ब्रह्म है–

सो तें ताहि तोहि नहिं भेदा।

बारि बीचि इब गावहिं वेदा॥

अर्थात् वेद ऐसा कहते हैं कि ''तू वही है (तत्वमसि) जल और जल की लहर की भाँति उस (ब्रह्म) में और तुम (जीव) में कोई भेद नहीं है।

लेकिन यह अद्वैत निष्ठा तब तक सिद्ध नहीं होती जब तक की यह जीव अविद्या के कारण अपने को देह स्वरूप मानकर प्रकृतिस्थ हो रहा है। प्रकितिस्थ होने के कारण ही इससे प्रकृति (शरीर) द्वारा होने वाले कार्यों का कर्ता स्वयं को मान लिया है इस न्याय से कर्ता एवं उन कर्मों का भोक्ता वन कर ऊंची-नीची योनियों में यह जन्म जन्मान्तर से भटक रहा है। वास्तव में यह कहानी कहने एवं सुनने की नहीं

दोहा *भीखा बात अगम्य की, कहन सुनन की नांय।*

जो जानहिं सो न कहै, कहै सो जानें नांय॥

इस प्रकार उस ''अलख'' पुरुष को किसी ने नहीं लखा अपने-अपने अनुभवों द्वारा सभी महा पुरुषों ने उसका स्वयं (आत्मा) के द्वारा जैसा अनुभव किया है। अपनी शक्ति सामर्थ्यानुसार लक्षणों के माध्यम से उस ''अलख'' पुरुष की झलक मात्र देह है। हमारे गुरुदेव उस परम तत्व में लीन ब्रह्म निष्ठा महात्मा थे। अपनी अटपटी और अनौखी वाणियों का संकेत मात्र दिया है। इसके लिए हम उनके द्वारा बोली जाने वाली ''गुरुवन्दना'' पर विचार करते हैं–

''ॐ गुरुदेव-ब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप,

आनन्द–दाता कल्याणकारी,

अग्नि में ज्योति में, प्रकाश में,

अजर अमर अविनाशी।

घट-घट के वासी॥

निराकार निर्विकार,

सर्वाधार अन्तर्यामी,

अलख निरंजन, भवभय - भंजन। संकट मोचन बनवारी, देवेश्वर योगेश्वर

प्राणेश्वर परमेश्वर। ईश्वर॥

ॐ गुरुदेव ब्रह्म, सच्चिदानन्द आनन्द कंद भगवन् नमो नमः॥''

हुजूर बाबा साहब ने इस गुरु वन्दना द्वारा उस ''अलख'' की कुछ झलक

दिखलाई है, प्रार्थना में ब्रह्म रूपी गुरुदेव की कुछ ावशषताआ का झलक मात्र दकर उनकी महिमा का बखान किया गया है। ब्रह्म तत्व को दो प्रकार के विशेषणों द्वारा निर्देशित किया गया है 1/ विधेय विशेषण 2/ निषेध्य विशेषण ब्रह्म के विधेय विशेषण– सच्चिदानन्द, ब्रह्म, स्वयं प्रकाश कूटस्थ, साक्षी, दृष्टा, उपदृष्टा तथा एक (ॐ कार स्वरूप) इन विधेय विशेषणों के माध्यम से हम उस अलख की कुछ झलक पाने के लिए इन विशेषणों की संक्षिप्त व्याख्या करते हैं।

सच्चिदानन्द स्वरूप

सत्–उस अलख तत्व की ज्ञान से या अन्य किसी क्रिया द्वारा निवृति सम्भव नहीं। अतः वह सत नाम से जाना जाता है वह ब्रह्म तत्व जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तथा बाल्य, यौवन एवं वृद्ध, भूत, भविष्य तथा वर्तमान रूप से इन सभी अवस्थाओं का प्रकाशक रूप से विद्यमान है अतः वह सत कहा जाता है। ये सभी अवस्थाएं परिवर्तनशील हैं, ये अवस्थाएँ उसको नहीं जानती वरन् वही (अलख) इन सभी को जानने वाला एवं इनका प्रकाशक भी है। वह ब्रह्म तत्व जिसे सत् कहा गया है–तीनों कालों में विद्यमान रहने के कारण कहा जाता है–तीनों कालों की उसकी सत्ता इस प्रकार है–

(1) जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था एवं सुषुप्ति अवस्था में भी वह है।

(2) प्रातः, मध्याह एवं सायं में वही सत्य है।

(3) दिवस रात्रि एवं पक्ष में वह है।

(4) मास, ऋतु एवं वर्ष में वही विद्यमान है।

(5) बाल्य, यौवन एवं वृद्धावस्थाओं में वह है।

(6) पूर्व देह, वर्तजान देह एवं भावी देहों में वह "है"।

(7) भूत, भविष्य एवं वर्तमान में वह ब्रह्म विद्यमान है।

ये सभी काल एवं अवस्थाएँ "लयावधि'' (आने जाने वाली) है लेकिन वह (अलख) ब्रह्म तत्व हमेशा एक रस विद्यमान रहता है। अतः वह ''सत्'' है, ये सभी अवरथाएं उसको नहीं जानती वह सव अवस्थाओं को जानता है। अवस्थाएँ उत्पन्न और समाप्त हो रही हैं लेकिन वह ज्यों का त्यों बना रहता है। अतः वह ब्रह्म (अलख) सत्य है। ये सभी अवस्थाएं एक जैसी नहीं रहती उदाहरण के लिए बाल्यावस्था के बाद यौवन एवं यौवनावस्था के बाद वृद्धावस्था क्रम-क्रम से आती जाती रहती हैं। इन सब के साथ उत्पत्ति विनाश लगा हुआ है। यौवन अवस्था से पूर्ववत् बाल्यावस्था का नाश हो चुका होता है, वृद्धावस्था आने पर यौवन का नाश हो जाता है लेकिन ''वह'' इन तीनों अवस्थाओं में एक रस रहता है। अतः वह सर्व अवस्थाओं का साक्षी ''सत्य'' है। वह ब्रह्म इन सभी अवस्थाओं को जानता है और

ये सभी अवस्थाएँ जब होने के कारण उसे नहीं जानती। सिद्धान्त यह है कि जो जिसे जानता है वह उससे अलग होता है। अतः इन सभी अवस्थाओं में उसी अलख पुरुष को ''झलख'' दिखाई पड़ती है। अतः वह सबसे व्यारा एवं ''सत्य'' स्वरूप है।

चित-स्वरूप

''ब्रह्म'' का बोधक दूसरा विधेय विशेष ''चित्त'' अर्थात प्रकाशक या सब को जानने वाला है।

चित्त–तीनों कालों में जो सबको जानता है, सभी अवस्थाओं का जो साक्षी (देखने वाला) है वह ''चित्'' नाम से जाना जाता है। उस से भिन्न नाम, रूप, वस्तु सहित तीनों काल जड़ हैं, आदि अन्त वाले हैं, वह सभी अवस्थाओं को जानता है अतः चित्त कहा जाता है सभी अवस्थाएं जड़ होने के कारण उसे नहीं जानती, वह सभी को जानता है। उस अलख की झलक सभी अवस्थाओं से स्पष्ट देखी जा सकती है। अतः वह सर्वप्रकाश ''चित्त'' नाम से जाना और समझा जाता है। वह ब्रह्म सत्य स्वयं प्रकाश है उसका प्रकाश (ज्ञान) कभी लुप्त नहीं होता संसार की जितनी भी प्रकाशक वस्तुएँ हैं वे सब उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है वे सब जड़ एवं लुप्त प्रकाश है। सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि उसी स्वयं प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं–

यदादित्यगंत तेजो जगद्भासयते अखिलम्।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्॥ (गीता. 15/12)

अर्थात् सूर्य में आया हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है, और जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।''

श्रीमद्भगवद्गीता का उपर्युक्त श्लोक इस वात को पूर्ण सिद्ध कर देता है कि वह (अलख) अपने प्रकाश द्वारा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि के माध्यम से अपनी झलक दिखला रहा है।

हमारे गुरुदेव की वन्दना के पदों में उसका स्पष्ट निदेश मिलता है कि वह (अलख पुरुष) अग्नि में ज्योति में तथा घट-घट में अपनी झलक दिखला रहा है। अतः वह ''चित प्रकाशस्वरूप'' है।

आनन्द स्वरूप

परम् प्रीति का जो विषय हो उसे ''आनन्द'' कहते हैं, वह तीनों कालों में परम प्रीति का विषय होने के कारण आनन्द स्वरूप कहा गया है। वह अलख पुरुष मूर्ति ''ब्रह्म'' देह, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, पुत्र आदि सबसे प्यारा है और ये सब आत्मा के लिए ही प्यारे होते हैं आत्मा (ब्रह्म) अपने स्वयं के लिए प्यारा होता है, वह सबसे प्यारा और आनन्द स्वरूप है, वेदों, शास्त्रों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध वह (अलख पुरुष) तीनों कालों में सबसे अधिक प्रिय है आनन्द स्वरूप है। उससे

अतिरिक्त समस्त नाम रूप वस्तु सजित आदि अन्त वाले होने के कारण दुःख रूप है अतः ''ब्रह्म'' को आनन्दरूप से जाना जाता है वह ''आनन्दधन'' अर्थात् अपनी सत्ता मात्र से जीवों को सुःख प्रदान करता है संसार के समस्त प्राणी पदार्थों में जो क्षणिक आनन्द विद्यमान है वह भी उसी (अलख) की झलक मात्र है, उनमें स्थाई आनन्द न होकर क्षणिक आनन्द है जो वस्तु, व्यक्ति एवं पदार्थ स्वयं आदि अन्त वाले हैं उनमें स्थाई आनन्द कैसे हो सकता है। ''वह'' अलख पुरुष अविनाशी है अतः वह स्वयं आनन्द स्वरूप ही है। आत्मा (ब्रह्म) की सर्वप्रियता के लिए कुछ उदाहरण, निवेदन करता हूँ जिनसे ''ब्रह्म'' की सबसे अधिक प्रियता सिद्ध होती है–

''आत्मा परमप्रिय है–जैसे पुत्र के मित्र में जो प्रीति है वह पुत्र के लिए ही होती है, पुत्र में जो प्रीति है वह उसके मित्र में नहीं ठीक इसी प्रकार, धन एवं पुत्रादि में जो प्रीति है वह आत्मा के लिए ही होती है। परन्तु आत्मा में जो प्रीति है वह धन एवं पुत्र से अधिक है। अतः ''आत्मा'' परमप्रिय है। संसार में प्रायः देखा जाता है कि धन को सवसे अधिक प्रिय माना जाता है क्योंकि इसकी प्राप्ति हेतु मनुष्य देश छोड़ विदेश चला जाता है, अनेक प्रकार की खतरनाक परिस्थितियों में पड़कर भी धन कमाने का प्रयास करता है, यहाँ तक कि अनेक प्रकार के नीच कर्म करके भी धन कमाने के प्रयास किये जाते हैं। धन के लिए मनुष्य आकाश तथा गहरे समुद्रों तक में प्रवेश करने से नहीं हिचकता, अर्ज करने का तात्पर्य यह है कि ''धन'' की संसार में प्रियता सर्व विदित है।

धन से पुत्र प्यारा है–उपर्युक्त उदाहरण में धन की प्रियता को सिद्धकर अब यहाँ यह स्पष्ट किया जाता है कि धन पुत्र से ज्यादा प्रिय नहीं क्योंकि किसी कारणवश पुत्र के कारागार में वन्द होने पर धन का त्याग करके पुत्र को छुड़ाया जाता है अथवा पुत्र के अस्वस्थ होने पर धन का त्याग कर उसे स्वास्थ्य लाभ दिलाया जाता है। अतः धन की अपेक्षा पुत्र की प्रियता सिद्ध होती है। पुत्र की अपेक्षा अपना शरीर प्रिय होता है क्योंकि संसार में देखा जाता है कि जव शरीर पर आपत्ति आती है दुर्भिक्ष आदि के समय पुत्र को बेचकर प्राणों (शरीर की) रक्षा की जाती है। भूखी सर्पणी, भूखी कूकरी, अपने बच्चों को खा डालती है। अतः यह सिद्ध हुआ कि शरीर की अपेक्षा पुत्र प्रिय नहीं कामेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियों की प्रियता। देखा जाता है कि ननुष्य को अपनी कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक प्रिय होती हैं। किसी दण्ड स्वरूप यह कहा जाये कि तुम अपनी एक आंख फुडवाना चाहते हो या एक हाथ? तो हमारा उत्तर होगा कि आँख के स्थान पर हाथ ही काट दो, इससे यह बात सिद्ध हुई कि मनुष्य को कर्मेन्द्रियों से ज्ञानेन्द्रिय प्रिय होती हैं।

ज्ञानेंन्द्रियों की अपेक्षा प्राणप्रिय–संसार व्यवहार के अवलोकन से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को धन, पुत्र, ज्ञानेंन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा प्राण अधिक प्यारे होते हैं, फाँसी के स्थान पर यदि एक आँख नाक या कान आदि ज्ञानेन्द्रियों के नष्ट करने का विकल्प हो तो हम इनका त्याग करके प्राणों की रक्षा करते हैं। अतः

धन, पुत्र इन्द्रियों की अपेक्षा प्राणों की प्रियता सिद्ध होती है, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आत्मा सर्व प्रिय है देखा जाता है कि पुरुष जब भयंकर पीड़ा एवं व्याधि को सहन करने में असमर्थ हो जाता है तो कहता है कि अब तो प्राण निकले तभी सुखी हुँगा। उपर्युक्त समस्त विवरण से यही,सिद्ध होता है कि आत्मा (ब्रह्म) सर्वाधिक प्रिय है। अतः वह आनन्द स्वरूप है। अलख पुरुषमूर्ति (ब्रह्म) के सच्चिदानन्द विधेय विशेषण की व्याख्या पूर्ण करने के पश्चात् उसके कुछ अन्य विधेय विशेषगों का संक्षिप्त विवरण जान लेना साधकों एवं पाठकों के लिए उस अलख झलक पाने के लिए आवश्यक है, यह सम्पूर्ण विशेषण उस अनिवर्चनीय तत्व अलख पुरुष की झलक प्रस्तुत करते हैं–

ब्रह्म–ब्रह्म शब्द का अर्थ है व्यापक जिसका देश से अन्त नहीं अर्थात् जो सब स्थानों पर समान रूप से बर्फ में जल के सदृश व्यापक हो वह ब्रह्म है। जिसका देश से अन्त होता है उसका काल से भी अन्त होता है, यह नियम (सिद्धान्त) है। संसार के समस्त प्राणी पदार्थ देश काल से आदि अन्त वाले हैं अर्थात् जो प्राणी पदार्थ एक देश विशेप में है वह एक काल विशेष में भी है। उदाहरण के लिए हमारा शरीर इस समय एक निश्चित स्थान (देश) विशेष में है अन्य देशों (स्थानों में नहीं उसी प्रकार वह वर्तमान काल में हैं भविष्य में नहीं रहेगा। अतः जो प्राणी पदार्थ एक देश एवं काल विशेप में होते हैं, उन्हें अनित्य कहते हैं। आत्मा (ब्रह्म) सब देश एवं सब कालों में विद्यमान होने के कारण नित्य है। अतः ब्रह्म (व्यापक पद से जाना जाता है, आत्मा को स्वयं प्रकाश भी कहा जाता है। जो दीपक और सूर्य की भाँति अपने आपको प्रकाशित होने में किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं करता तथा आप ही सबका प्रकाशक होता है वह स्वयं प्रकाश (अलख पुरुष) ब्रह्म सबका प्रकाशक है। अतः उसे स्वयं प्रकाश विशेषण से जाना जाता है। उसी के प्रकाश से सूर्य चन्द्र तथा अग्नि प्रकाशित है। सूर्य, चन्द्र अग्नि, स्वयं प्रकाशित न होकर उस अलख की झलक मात्र से प्रकाशित होकर स्थित है।

कूटस्थ–वह ब्रह्म तत्व ज्यों का ज्यों रहने वाला तथा अविकारी है। कूटस्थ शब्द लोहार के उस मोटे लोहखण्ड को भी कहते हैं, जिस पर पीटकर वह विभिन्न आकार प्रकारों की वस्तुएँ बनाता है। लेकिन उसका ऐरन (लोहे का पिण्ड) वैसा का वैसा ही रहता है। ब्रह्म के विशेषणों में कूटस्थ भी है। साक्षी–लोक व्यवहार में जो उदासीन (रागद्वेष रहित) और अति समीपवर्ती तथा चेतन हो उसे साक्षी कहते हैं वह (अलख पुरुष) ब्रह्म देहादिकों से उदासीन है। अतः वह सर्वसाक्षी कहा जाता हैं वह सब को जानने वाला है दृष्टा-सव अवस्थाओं (जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, बाल्य, यौवन, वृद्ध, भूत,भविष्य एवं वर्तमान) में सब दृश्यों (जड़ वर्ग) का जानने वाला है। अतः दृष्टा कहा जाता है। उपदृष्टा–उसको एक दृष्टान्त के माध्यम से इस प्रकार समझा जा सकता है हमारा स्थूल देह मानो एक यज्ञशाला है, इसमें पाँच ज्ञान्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्राण ये पन्द्रहों ऋत्विज (हवन कर्ता) हैं। सोलहवाँ मन रूप

(चिदामास) यजमान है। सत्रहवीं यजमान की पत्नी रूप बुद्धि है। ये सब अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने रूपी यज्ञ करते हैं। इनके इस यज्ञ कर्म अर्थात् क्रिया व्यवहार को अति समीप से देखने वाला (आत्मा) उपदृष्टा) कहलाता है।

एक - उस अलख पुरुष (ब्रह्म) का सजातीय अर्थात् उसी जाति वाला अन्य कोई नहीं है। अर्थात् उस जैसा वही एक है और विजातीय संसार मिथ्या है झलक मात्र है। अतः वह एक है। इस प्रकार ब्रह्म (अलख) को कुछ विशेषणों द्वारा जाना गया ये सव उसके विधेय विशेषण हुए अब कुछ निषेध्य विशेषणों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

आत्मा के प्रमुख निषेध्य विशेषण–हमारे गुरुदेव ने अपनी गुरु वन्दना में उस ब्रह्म के निषेध्य विशेषणों का प्रयोग इस प्रकार किया है। निराकार, निर्विकार, अजर, अमर, अविनाशी तथा अलख, निरंजन, इनके अतिरिक्त मुख्य निषेध्य विशेषण जो अनेक शास्त्रों पुराणों में उस ब्रह्म के लक्षणों को प्रकट करने हेतु प्रयुक्त हुए हैं–

अनन्त, अखण्ड असंग अद्वितीय, अजन्मा,

निर्विकार, निराकांर, अव्यक्त, अव्यय अक्षर।

इस प्रकार निषेध्य मुख से उसका वर्णन किया गया संक्षिप्त में इन व्रिशेषणों में अर्थमात्र प्रस्तुत है। अनन्त जो देश और काल की दृष्टि से अन्त हीन है तथा सवका अधिष्ठान (आश्रय) रूप है जो सर्वरूप है, उसे अनन्त कहा जाता है।

अखण्ड–जीव ईश्वर–भेद, जीवों का परस्पर भेद चेतन व जड़ भेद, जड़ ईश्वर भेद जड़-जड़ का भेद, वह ब्रह्म इन पाँचों भेदों से रहित है अतः उसे अभेद (अखण्ड) कहा जाता है। असंग–संग, सम्बन्ध को कहा जाता है यह सम्बन्ध तीन प्रकार का होता है (1) सजातीय (2) विजातीय (3) स्वागत उस (अलख पुरुष) आत्मा का कोई संग नहीं। अतः असंग है। अद्वैत–द्वैत प्रपंच ''झलक'' मात्र है मिथ्या है, आत्मा (ब्रह्म) के अतिरिक्त कुछ नही जो है, सो ब्रह्म ही है। अतः वह अद्वैत है।

अजन्माः जन्म सिर्फ स्थूल देह का धर्म है सूक्ष्म का नहीं। अतः (ब्रह्म) (अलख पुरुष) मूर्ति का जन्म लेना सम्भव ही नहीं वह अजन्मा तत्व है।

निर्विकार–विकार जड़ वस्तु में होते हैं, जड़ पदार्थों में पाये जाने वाले विकार निम्नलिखित हैं–

(1) जन्म–गर्भ से बाहर आने की पूर्वावस्था।

(2) अस्तिपना–(प्रकटता) पैदा होना (लड़की है या लड़का)

(3) वृद्धि–बालक अवस्था।

(4) विपरिणाम-यौवनवस्था की प्रप्ति

(5) अन्वय-जीर्ण बूय हो जाना।

(6) नाश-नष्ट हो जाना, मरण को प्रप्त हना।

ये षट्टिकार उस अलख पुरुष (ब्रह्म) नें नहीं ये जड़ ''दह'' के धर्म हैं। अत्मा देह एवं जसके विकारों का ज्ञान है। अतः वह निरिंकार एक रस रहने दाल है। जन्मन, अस्विपना वृद्धि विपरिणाम, अपक्षय एवं नश देह के ही धर्म है। निराकार-आकार प्रयः चार प्रकार के होते हैं।

स्थूल सूक्ष्म लम्ब तथा छोटा। (आत्मा) बह्म इनियों तथा मन का अदेषय है। अतः वह जड़ व स्थूल नहीं, आत्मा व्याप्क हे। उतः सूक्ष्म (अणु) नहीं वह बह्म (अलख) सर्वत्र के काल तथा सभी वस्तुओ में प्रोत-प्रोत है अतः तम्ब व सेट नहीं इस प्रकार आत्मा न कोई आकार नहीं वह निराकर निरवयद है

अक्षर

जिसका क्षरण (नश) न हो उसको अबिनासं अमृत तथा अक्षर कहर है उपर्युक्त विवरण मैं ब्रह्म य उस अलख पुरुष मूर्ति का विधेय एवं निषेध्य विशेषण का उल्लेख किय गय है। विशेष उल्लेखनीय तत्व यह है के उपर्युक्त विशेषण को उस ब्रह्म के गुण नहीं मानना चाहिये सामान्य लक्षणें के मानन से उस अलख की झलक मात्र मानन चाहिदे यदि सच्चिदानन्द आदे उस अलख पुरुष के गुण होते तो उससे भिन्न सिद्ध होते। इन विशेषणों के मानन से उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' के स्वरूप की झलक मात्र मिलती है। अतः ये उसके स्वरुप बोधक हैं। ''अलख पुरुष मूर्ति'' की बन्दना द्वरा उस अलख की कुट झलक संसारी लोगों को देते हुए हुजूर कहा करते से कि गुरुन का ज्ञान न्यारा है तू समझता नहीं मेरे भट''। वास्ता में वह तत्व लो सर्वव्यापी है प्रत्येक कप-कप ने उसी की झलक दिखई देती है वर्णन का विषय नहीं क्योंकि वर्णन तो एक केशय तत्व का ही सम्भव होता है। असीम एवं अलख का वर्णन कैस है, और कौन कर रकत है। हाँ गुरुदेव स्वरुप ब्रह्म ने गाँवों कर कृप करते स्वयं ही उसको विवेक मत्र में इलक मात्र दिखला वे है।

यह सम्पूर्ण जगत दृश्य और जड़ है वह''अलख पुरुष मूर्ति'' चेतन और इस दृश्य रुप संसर का दृष्टा है। वह ब्रह्मा विष्णु एवं शिव क भी नाच नचाते वला है। वे भी उस ''अलख पुरुष''को पूर्णत नहीं जानते मत्र उसकी ''झलक'' से अपना कार्य करते रहते हैं। उसी की झलक (शक्ति) से विष्णु पालन, ब्रह्मा, उत्पत्ति एवं शिव उसी अलख-झलक से संहार कार्य करते है। लेकिन जिस परम प्रेमी के तप न्यास और सर्म्पण (भक्ति) भाव से वे प्रसन्न हो जाते हैं उसे उपनी समक ''झलक'' के भी दर्शन करा देते हैं उसकी समक झलक पावे का परिणम वह होता है कि वह

जीव भी उन्हीं अलख पुरुष लीन हो जाता है।

सोई जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होई जाई॥

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंद। जानहिं भगत-भगत उर चंदन॥

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत विकार जान अधिकारी॥

(मानस आयो. का.)

उपर्युक्त वचन श्री बाल्मीकि जी के हैं इनके माध्यम से वे कह रहे हैं कि हुजूर जिसको आप अपने अलख रूप का दर्शन कराना चाहते हैं वही तुम्हारे उस रूप को जान सकता है और उस रूप को जानने का फल यह होता है कि वह जीव तुम्हारा स्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) ही हो जाता है आपके सच्चिदानंद विग्रह को समस्त विकारों से रहित कोई योग्य अधिकारी ही जान सकता है।

हमारे ''बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज ने कठोर तप एवं साधना द्वारा अपने समस्त विकारों को समाप्त कर दिया था, वे सर्वभाव से उस ब्रह्मरूप गुरुदेव की शरणागति प्राप्त महात्मा थे। अतः उस अलख की झलक प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी थे। उन्होंने अपने क्षुद्र अहं को समाप्त कर ब्रह्म की एकता का अनुभव किया हुआ था। श्रुति द्वारा निर्देशित परम लक्ष्य अहंब्रह्मस्मि'' (सोहं) को वह प्राप्त कर स्थित थे। अपने अमृत वचनों से सम्पूर्ण जगत एवं अपने भक्तों अनुयायियों को, उस अलख पुरुष मूर्ति की झलक'' दिखलाने हेतु ब्रह्मवाचक नामों का उपदेश करते थे।

''ॐ अखैनाम, अभयनाम

अजर नाम, अमर नाम

सत्यनाम, सामर्थ्य नाम,

ॐ नाम-सोहं नाम ।

इन सात नामों द्वारा आप उस अलख पुरुषमूर्ति की झलक दिखलाया करते थे। इन सात नामों के अर्थों में उस ब्रह्म को दिखलाया करते थे। इन सात नामों के अर्थों में उस ब्रह्म को स्वरूप की झलक मिलती है। अपनी तुच्छ बुद्धि से इन ब्रह्म वाची नामों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत करता है–

ॐ आखैनाम का तात्पर्य है कि वह ॐ जिसे वेद प्रणम एवं अक्षर-ब्रह्म या नाद ब्रह्म के नाम से कहता है, वह सर्वथा या अक्षर है, उसका क्षरण तीनों कालों में नहीं होता वह जैसा है वैसा ही बना रहता है, सारे चराचर जगत का वह एक मात्र कारण है, उसी को झलक से सृष्टि निर्माण, उसका पालन एवं संहार होता है। लेकिन उसके एक, अणुमात्र का क्षरण इस कार्य में नहीं होता अतः वह अक्षर ब्रह्म,

हुजूर के अखैनाम द्वारा जाना जाता है।

अभयनाम

संसार में जो भी उस अलख पुरुष की सच्चे हृदय से शरणागति होता है वह जन्मरण एवं समस्त भयों से मुक्त होकर उस अभय पद को प्राप्त हो जाता है उसे भवभय हरणम'' नाम से वेदों एवं स्तुतियों ने गाया है। वह काल का भी महाकाल है। उससे भय भी भय खाता है। अतः वह अभयनाम से जाना जाता है।

अजर नाम–''जरा'' कहते हैं बुढापे को, जीर्णता को, कमजोरी को उसका जव जन्म ही नहीं होता फिर उसमें ये अन्य विकार हो ही कहाँ सकते हैं? वह जन्म यौवन वृद्धावस्था से हीन सदा एक रस बहने वाला है, दह निर्विकारी है। अतः उसका अजर नाम है।

अमरनाम–जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि वह अलखपुरुष मूर्ति अजन्मा है अविकारी है, संसार के अन्य प्राणी–पदार्थो की भाँति न उसका जन्म होता है और ना ही वह कभी मरता है, वह स्वयं भी अमरपद को पा लेता है। अतः वह सदा अजर-अमर अविनाशी है।

सतनाम–पूर्व में सच्चिदानन्द पद की व्याख्या में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जो तत्व तीनों कालों में समस्त अवस्थाओं का प्रकाशक हो तथा उमेशा एकरस विद्यमान रहता हो वह सत्य'' है। उसका कभी अभाव नहीं पाथा जाता। सब जगत निरंतर नाश की ओर बढ़ रहा है तथा परिवर्तनशील है। उसकी समस्त अवस्थाओं में क्रम-क्रम से परिवर्तन होते रहते हैं। अन्त में वह नाश को प्राप्त हो जाता है लेकिन वह ''अलख पुरुष मूर्ति'' सभी कालों अवस्थाओं और प्राणियों एवं पदार्थों में वर्तमान के सदृश्य सदैव विद्यमान रहता है। अतः वह सत्य है और वह जगत मिथ्या है क्योंकि पहले नहीं था अब है, भविष्य में भी नहीं रहेगा। यहाँ पाठ को एक विशेष महत्त्वपूर्ण तथ्य निवेदन है कि प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि हैं, संसार के विभिन्न प्राणियों के शरीर एवं समस्त पंच भौतिक रचना को ही असत्य एवं मिथ्या वर्णित किया गया है। मूल प्रकृति तो भगवान का ही स्वरूप है। अतः वह सत्य ही है। उदाहरण के लिए स्वर्ण और उससे बनने वाले अनन्त आकृति के आभूषण, स्वर्ण मूल तत्व है, लेकिन आभूषण मिथ्या कल्पना मात्र है। वे आदि अन्त वाले हैं। अतः स्वर्ण स्वरुप ब्रह्म सत्य है आकृति रूप समस्त नाम रूपात्मक चराचर जगत मिथ्या बतलाया गया है। वस्तुतः भगवान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जो कुछ दिखलाई देता है अनुभव में आ रहा है, वह सब उसी का साकार रूप है। सारे खण्ड ब्रह्माण्डों में उसी की झलक है, वह इस सम्पूर्ण विश्व के रूप में स्वयं ही स्थित है– श्रुति भी प्रमाण है–

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंन्च जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विदधनम्॥

(ईशावास्योपदनिषद।)

इस मंत्र में भगवान का पवित्र आदेश है कि अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चराचरात्मक जगत तुम्हारे देखने, सुनने में आ रहा है। सबका सब उस (अलख पुरुष मूर्ति) सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, सर्वकल्याण–गुणस्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है सदासर्वदा उन्हीं से परिपूर्ण है (गीता 9/4) इसका कोई भी अंश उससे रहित नहीं है (गी. 10-39-42) एसा समझते हुए कि संसार के प्रत्येक प्राणी पदार्थ के रूप में वह अलख पुरुष ही विद्यमान है। उनको निरन्तर अपने साथ रखते हुए, सदा सर्वदा उसका रमरण करते हुए (कि वह हमेश हरक्षण हमारे अन्दर बाहर है) तुम इस जगत में ममता और आसक्ति का त्याग (त्यक्तेन) करते हुए केवल कर्तव्यपालन के लिए ही विषयों का यथा विधि उपयोग करो, अर्थात् विश्व–रूप ईश्वर की पूजा के लिए ही कर्मों का आचरण करो, विषयों में मन को मत फँसने (मागृधः) दो इसी में तुम्हारा निश्चत कल्याण है वस्तुतः ये भोग पदार्थ किसी के भी नहीं (कस्य स्विद्धनम्) मनुष्य भूल से ही इनमें ममता और आसक्ति कर बैठता है। ये सब परमेश्वर के हैं और उन्हीं की प्रसन्नता के लिए इन पदार्थों का उपयोग होना चाहिये। अतः वही ईश्वर सत्य है। हुजूर महाराज उसे "सत्यनाम" द्वारा उच्चारण करते थे।

सामर्थ्यनाम–

अपने सात नाम के मंत्र का छटा पद सामर्थ्य नाम है, जिसका तात्पर्य है सर्वशक्तिमान जिसकी सामर्थ्य के अंश मात्र से ब्रह्मा संसार की खना, विष्णु इसका पालन एवं शिव इसका विध्वंश करते हैं। संसार में जहाँ भी कहीं शक्ति समर्थ्य की झलक मिलती है वह उसी अलख पुरुष की सामर्थ्य के ही एक अंशमात्र से है मानस के सुन्दर काण्ड में श्री हनुमान जी रावण को उसकी शक्ति सामर्थ्य का परिचय इन शब्दों में देते हैं–

सुन रावन ब्रह्माण्ड निकाया! पाइ जासु वल विरचति माया॥

जाके बल विरंचि हरि ईशा। पालत सृजत हरत दस सोसा॥

जा बल सीस धरत सहसानन। अंड कोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो विविध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावन दाता॥

इस प्रकार उसकी शक्ति सामर्थ्य की थाह पाना किसी के दस की बात नहीं, संसार में प्रत्येक प्राणी पदार्थों में जो शक्ति पाई जाती है वह सब उसी सामर्थ्यशाली "अलख पुरुष" मूर्ति की शक्ति सामर्थ्य के एक अंश मात्र की झलक ही है। उसकी

शक्ति सामर्थ्य का वर्णन रामचरितमानस उत्तर काण्ड के 91वें (क) दोहे के ऊपर की दो चौपाईयों से लगाकर 92 (क) दोहे तक दृष्टान्त है। यहाँ विस्तारमय से उस अलख पुरुष की शक्ति सामर्थ्य का वर्णन ठीक नहीं और संसार में अभी तक ऐसा कोई कवि या लेखक पैदा नहीं हुआ जो उसी शक्ति सामर्थ्य का सम्पूर्णता से कर सके। हाँ, उसी की कृपा से, उस अलख पुरुष मूर्ति की शक्ति सामर्थ्य की झलक मात्र का ही वर्णन वेदों एवं समस्त पुराणों में किया गया है।

॥ ॐ नाम सोहं नाम ॥

हुजूर के साथ नाम का अन्तिम पद और विशेष महत्त्वपूर्ण पद ''ॐ नाम-सोहं नाम'' पद है। ॐ उस अलख पुरुष'' का वास्तविक स्वरूप है। ''ॐ तत्सत'' यह उस सच्चिदानन्दधन ब्रह्म के तीन नाम हैं इन्हीं से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद एवं यज्ञों की रचना हुई। जिस परमात्मा से समस्त कर्ता, कर्म और कर्म विधियों की उत्पत्ति हुई है, उसी भगवान के वाचक ॐ तत् और सत् ये तीनों नाम हैं। जब ''ॐ तत्सत्'' का उच्चारण किया जाता है तो उन सबके अंग वैगुण्य की पूर्ति हो जाती है। अतः ॐ सर्वाधार एवं सर्वान्तर्यामी उसी अलखपुरुष मूर्ति का वाचक नाम है। श्रीमद्भगवदगीता के अध्याय 27 में ॐ तत्सत् पद की व्याख्या, करते हुए भगवान कहते हैं–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मण स्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्यच विहिताः पुरा॥ (गीता. 17/23)

अर्थात ॐ तत् और सत् इन तीनों नामों से जिस परमात्मा का निर्देश किया गया है उसी परमात्मा ने सृष्टि के आदि में वेदों, ब्राह्मणों एवं यज्ञों की रचना की है।

इन तीनों में विधि बतलाने वाले वेद ॐ नाम से ही प्रकट हुये हैं तत् नाम से अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण तथा सत् नाम से ''यज्ञ'' क्रिया प्रकट हुई। यज्ञ तप, दान आदि क्रियाओं में कोई भूल चूक या कमी रह जाये तो परमात्मा के इन (ॐ तत्सत्) नामों के उच्चारण मात्र से सम्पूर्ण कमियाँ दूर हो जाती हैं। अपने ॐ नाम का महत्त्व कथन करते हुए भगवान कहते हैं–

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।

प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम॥ (गीता. 17/24)

''इसलिए वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत, यज्ञ, दान और तप रूप कियाएं सदा ''ॐ'' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। जैसे गायें साँड के बिना फलवती नहीं होती ऐसे ही वेदों की जितनी ऋचाएँ हैं, श्रुतियाँ हैं, वे सब ॐ का उच्चारण किये बिना फलवती नहीं होतीं अर्थात् फल नहीं देती। ॐ ''उसअलखपुरुषमूर्ति'' का वाचक है, इसका सबसे पहले उच्चारण किया जाता है यह सबसे पहले प्रणव (ॐ) रूप में प्रकट हुआ, उस

प्रणव की तीन मात्राएँ हैं (आकार उकार तथा मकार) इन मात्राओं से ही त्रिपदा गायत्री प्रकट हुई। इस दृष्टि से ॐ सबका मूल है और इसी के अन्तगति गायत्री भी है तथा सब वेद भी इसके अन्तर्गत समाए हुये हैं। अतः ॐ नाम उस अलख पुरुष का वाची है संसार में जितने भी मंत्र हैं उनके आदि में ओउम्कार का योग है बिना प्रणव के मंत्र का कोई फल नहीं। किसी संत ने ॐ की व्याख्या इस प्रकार की है–

दोहा- *चारमात्रा ओम् की, अकार उकार मकार।*
चौथे पद अर्द्धमात्र व्यापक रहित विकार॥
ॐ गुरु, माता पिता, ॐ जमी आसमान।
ओम चराचर में बसा, करो "ॐ" का ध्यान॥

इस प्रकार हमारे गुरुदेव के सात नामों में ॐ नाम आदि और अन्त में समाया हुआ है। अन्त में 'सोंह' पद की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह निवेदन है कि "ॐ" नाम जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है पूर्ण ब्रह्मपरमात्मा का वाचक है। जब साधक इन नामों का जप और इनके अर्थस्वरूप अपने चित्त में धारणा को दृढ़ करता है तो उसे जो अनुभव होता है। वही "सोंह" पद से उद्धृत किया गया है। जब जीव उस शिव का ध्यान कर गाढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो उसे शिवोहं या सोहम् (वह मैं हूँ) का अनुभव हो जाता है, यही जीवमात्र का ध्येय है। श्रुतियाँ जिसे महावाक्यों के नामों से उद्धृत करती है यथा "अहंब्रह्मास्मि" "सर्वखल्विदं ब्रह्म," "तत्वमसि" आदि इनसे जीव ब्रह्म की एकता जानी जाती है। उपर्युक्त सात ब्रह्मवाची नामों को ही गुरुदेव सात नाम मंत्र के रूप में दीक्षा देते समय शिष्यों के कान में कहा करते थे, जो मुझ जैसे अल्पज्ञ ने इस लेख के माध्यम् से सार्वजनिक रूप से उजागर कर दिया। इन सात नामों की जानकारी मुझे उनके समकालीन सेवकों से उनके द्वारा सुनाये संस्मरणों के माध्यम् से हुई है। यह सात नाम का मंत्र पूर्ण रूपेण अनुभूत है। इसके माध्यम से साधक उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर इसे सोहं (वह मैं हूँ) रूप से अथवा वह ब्रह्म मैं हूँ (अहंब्रह्मास्मि) रूप से अनुभव कर परम सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है। साधारण साधकों के लिए इसके अनुष्ठान की विधि इस प्रकार है। सबसे पहले श्रद्धाविश्वासपूर्वक सच्चे हृदय से गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री मनोहरदासजी महाराज को अपने सद्गुरु मानते हुए उनके स्थूल मूर्ति विग्रह को अपने ध्यान हेतु धारण करे, तत्पश्चात् उनके द्वारा प्रदत्त इस सात नाम के मंत्र को साक्षात उन्हीं के श्रीमुख से उच्चरित एवं प्रदत मानते हुए नित्य नियम से इन नामों के अर्थों की भावना हृदय में धारण करते हुये श्रद्धा विश्वासपूर्वक जप करें।" जप एवं ध्यान गुप्तरूप से किये जाएं क्योंकि हुजूर साधना की गोपनीयता पर विशेष जोर दिया करते थे। शरीर मन की शुद्धता तो आवश्यक है, ही जैसा कि हमें "याद है तो आबाद है" लेख में यमनियमों का वर्णन किया है

उनको धारण किये बिना तो हम साधबा के अधिकारी वन ही नहीं सकते। अतः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह आदि यमों एवं शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय तथा गुरुदेव स्वरूप ईश्वर की शरणागति रूप नियमों को धारण कर फिर उस गुरु के वचन रूपी मंत्रों के जप का अधिकारी वनाता है। इस प्रकार योग्यता प्राप्त कर जो इस सात नाम के मंत्र का हुजूर बाबा के ध्यानपूर्वक जप एवं ध्यान करेगा उसकी समस्त लौकिक परलौकि कामनाएं सिद्ध होगी–

ध्यानमूलं गुरुर्मूर्तिः पूजामूलंगुरोः पदम्।

मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरोकृपा॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर ब्रह्म बेला में दिना किसी प्रदर्शन के अपने गुरुदेव के श्री ग्रिह का ध्यान एवं उनके इस सात नाम के मंत्र का जो मनबुद्धि का योग करके जप करता है तथा हुजूर के वचनों के अनुसार–

दीनताई दया और नम्रताई दुनिया वीच,

बन्दगी से प्यार राखि भूखे को खिलाएगा।

चार बीसीचार से, तू वचेगा मेरे यार,

साधुओं की संगत से तू वड़ा सुख पायेगा॥

नियमपूर्वक साधना (बन्दगी) को उत्तरोत्तर वढ़ाता, जायेगा तो सात नामों के अन्तिम पद सोहं ''पद का अनुभव करके स्वयं ब्रह्म स्वरूप वन जायेगा, इसमें कुछ भी संसय नहीं है। भगवान के भी वचन हैं।

तेषां सतत् युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (गीता. 10/10)

''निरंतर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं, वह तत्व ज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् वे मुझ में ही (अहंब्रह्मादि एकाकार हो जाते हैं। यहाँ तक हमने हुजूर महाराज बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहर दास जी महाराज, द्वारा बोले जाने वाली ब्रह्मरूप गुरुदेव'' की वन्दना एवं उनकी साधना के आधार ब्रह्मवाचो सात नाम के मंत्र के आलोक में उस अलख-पुरुष'' के स्वरूप का निरुपण किया जिस अलख पुरुष मूर्ति'' की रट-हमेशा गुरुदेव के मुखाविंद से सदैव निसृत होती रहा करती थी। उसके वास्तविक भेद के ज्ञाता तो आप स्वयं ही थे। लेकिन उनकी वन्दना एवं सात नाम के मंत्र में प्रयुक्त हुये ब्रह्म के विधेय एवं निषेध्य विशेषणों को व्याख्या से हमने उस अलख पुरुषमूर्ति के स्वरूप का एक अंशमात्र वर्णन करने का साहस किया है। हुजूर बाबा के वचन वेद एवं उपनिषदों के सार तत्व थे। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कि हुजूर का आध्यात्मिक दर्शन गीता एवं उपनिषदों से प्रभावित है। वे सामान्य

साधकों को विष्णु सहस्त्रनाम एवं गीता के अध्ययन की प्रेरणा दिया करत था जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी एक पर स्थान कहा है–

गेयं गीता नाम सहस्त्रं, ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्त्रम।

नेयं सज्जन संगे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्॥

अर्थात् गीता और विष्णु सहस्त्र नाम का नित्य पाठ करना चाहिये भगवान विष्णु के स्वरूप का निरन्तर ध्यान करना चाहिये, चित्त को संतजनों के संग में लगाना चाहिये और दीनों (गरीबों) को धन से मदद करनी चाहिए। जगद्गुरु शंकराचार्य की वाणी से मुझे हुजूर के ही उपदेशों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। हो भी क्यों न हमारे हुजूर भी जगद् गुरु ही थे, उनकी वाणीभक्ति वेदान्त के अनोखे उपदेशों से ओत-प्रोत थी। अलख पुरुष मूर्ति के स्वरूप कथन में अव थोड़ा सा गीतोक्त निर्णय भी देख लेना हम उचित समझते हैं। जिस प्रकार उस ''अलख पुरुष मूर्ति का स्वरूप कथन हुजूर की वाणियों में मिलता था, ठीक उसी तरह श्री मद्भगवद् गीता में भी उस अलख पुरुष मूर्ति के स्वरूप का कथन करते हुये स्वयं ब्रह्म श्री कृष्ण भगवान अपनी पवित्र वाणी से कहते हैं–

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुमे।

अनादिमत्पर ब्रह्म न सन्तन्नासुदुच्यते॥ (गी. 13/2)

जो ज्ञेय है उस अलख पुरुष मूर्ति) को मैं अच्छी तरह कहूँगा। जिसको जानकर मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है, वह (ज्ञेय तत्व) अनादि और परम ब्रह्म है, उसको न सत् कहा जा सकता है और न असत् ही कहा जा सकता है। यहाँ पर उस अलख पुरुष मूर्ति के प्रधानतः चार विशेषणों का उल्लेख किया गया है। पहली बात तो यह वतलाई गई है कि उसको जानकर मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है अर्थात् स्वतः सिद्ध तत्व की प्राप्ति हो जाती है। जिसकी प्राप्ति होने पर कुछ भी जानना, करना और पाना शेष नहीं रहता। दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि वह मनुष्य कृतकृत्य ज्ञात ज्ञातव्य एवं प्राप्त प्राप्तव्य हो जाता हैं।

हमारे गुरुदेव ने उस अलख पुरुष मूर्ति को पूर्ण रूपेण जान लिया था। उसी का परिणाम है कि उन्होंने अपने निज स्वरूप अजर, अमर, अविनाशी को प्राप्त कर लिया था वे उस अमरता की झलक अपने सात नाम के मंत्र–''अजर नाम अमर नाम'' कह कर दिया करते थे। इन नामों की व्याख्या में पहले कहा जा चुका है कि मूलतः जीव उसी ईश्वर का अविनाशी अंश है, लेकिन उसने मरणशील शरीरादि के साथ एकता करके अपने को जन्मने मरने वाला मान लिया है। उस अलख पुरुष मूर्ति (परमात्म तत्व) को जान लेने से यह भूल मिट जाती है और जीव (गुरु कृपा से) अपने वास्तविक स्वरूप–

ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेतन अमल सहज सुख रासी॥

इस तरह अपनी अमरता नश्वरता का अनुभव उस "अलख पुरुष मूर्ति" के जानने मात्र से हो जाता है। भगवान इस गूढ रहस्य को अपने शब्दों में ''यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते''। पद द्वारा कहते हैं कि जिसको जानकर यह जीव अमरता का अनुभव कर लेता है। उक्त श्लोक में दूसरी विशेषता ''अनादिमत्'' पद द्वारा बतलाई है इसके माध्यम् से भगवान उस अलख पुरुष मूर्ति के अनादि स्वरूप का वर्णन करते हैं। उस अलख पुरुप अविनाशी से यावन्मात्र संसार उत्पन्न होता है, उसी में रहता है और अन्त ये उसी में लीन हो जाता है। परन्तु वह अलख पुरुष मूर्ति आदि मध्य तथा अन्त में ज्यों का ज्यों एक रस विद्यमान रहता है। अतः उसे यहां अनादि कहा गया है तीसरा विशेषण पर-ब्रह्म है–गीता में ब्रह्म शब्द प्रकृति एवं वेदों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है, लेकिन पर-ब्रह्म तो एक मात्र परमात्मा ही हैं। जिससे बढ़कर दूसरा कोई, व्यापक, निर्विकार सदा रहने वाला तत्व नहीं है वह परम ब्रह्म कहा जाता है। उक्त श्लोक में उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' को न तो सत् ही और असत् ही बतला कर परस्पर विरोधी बातें कहीं हैं। संसार में दो ही प्रकार की सृष्टि है चर एवं अचर सत् एवं असत् लेकिन यहाँ पर उस परमात्मा को न तो ''सत ही'' और असत ही कहकर एक विचित्र बात कही है।

जो वस्तु प्रमाणों द्वारा सिद्ध की जाती है उसे सत् कहते हैं। वह ''अलख पुरुष'' स्वतः प्रमाण नित्य अविनाशी परमात्मा किसी भी प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि परमात्मा से ही सब की सिद्धि होती है। उस अलख पुरुष तक किसी भी प्रमाण की पहुँच नहीं है। श्रुति ने भी कहा है कि उस जानने वाले को कैसे जाना जा सकता है। वह परमात्मा प्रमाणों द्वारा जानने में आने वाली वस्तुओं से अत्यन्त विलक्षण है, इसलिए परमात्मा को सत नहीं कहा जा सकता। जिस वस्तु का वास्तव में अस्तित्व नहीं होता उसे असत् कहते हैं किन्तु उस अलख पुरुष मूर्ति का अस्तित्व नहीं है, ऐसी बात नहीं है वह अवश्य है और वह है इसी से अन्य सब का होना भी सिद्ध होता है। अतः वह "अलख पुरुष मूर्ति" सत् और असत् दोनों से परे विलक्षण तत्व है। वास्तविकता तो यह है कि उसके साक्षात् स्वरूप का वर्णन वाणी द्वारा हो ही नहीं सकता, श्रुति प्रमाण है–

यतो वाचो निवर्तनते अप्राप्य मनसा सह।

आनन्द ब्रह्मणो विद्वान ने विभेति कृतश्चनेति॥ (तैन्तिरीय उ.)

अर्थात् मन के सहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ जहाँ से, उसे न पाकर लौट आती है, उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला किसी से भी भय नहीं करता। भगवान ने उस अलख पुरुष मूर्ति के विलक्षण तत्व को बतलाते हुये कहा है कि वह

न तो सत् है न असत् ही तथा उसका वास्तविक स्वरूप मन वाणी की पहुँच से परे है जो कुछ भी वर्णन किया जावेगा उसे उसका तटस्थ लक्षण मात्र समझना चाहिए।

उपर्युक्त तथ्य को कुछ उदाहरणों से यूं समझा जा सकता है कि जैसे पृथ्वी पर रात दिन दोनों होते हैं प्रकाश की उपस्थिति को दिन और प्रकाश के न होने को रात कहते हैं। परन्तु सूर्य में न रात है और न दिन ही। कारण कि सूर्य में रात और दिन दो भेद नहीं होते। अन्धकार का अत्यन्त अभाव होने से सूर्य में दिन भी नहीं कह सकते क्योंकि दिन शब्द का प्रयोग रात की अपेक्षा से किया जाता है। ठीक इसी तरह उस परमात्मा में असत् का अभाव होने के कारण उसे सत् भी नहीं कहा जा सकता है और जो परमात्मा निरन्तर सत है उसे असत् भी नहीं कहा जा सकता। जैसे सूर्य दिन रात दोनों से विलक्षण केवल प्रकाश रूप है, ऐसे ही वह अलख पुरुष मूर्ति सत् और असत् दोनों से विलक्षण है, मानस में श्री तुलसीदास जी इसी तथ्य को प्रकट करते हैं।

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा॥

सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विग्यान विहाना॥ (रा.मा.वा. 115/5-611)

अर्थात् श्री राम सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोह रूपी रात्रि का लव लेश भी नहीं है। वे स्वभाव से ही प्रकाश रूप और (षडैश्चर्य युक्त) भगवान हैं, वहाँ तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल भी नहीं होता। क्योंकि जब वहाँ से अज्ञान रूपी रात्रि ही नहीं, तो विज्ञानरूप प्रातःकाल कहँ से होगा? भगवान तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। दूसरी बात यहै है कि सत् और असत् का निर्णय बुद्धि करती है और ऐसा वहीं होता है जहाँ मन वाणी और बुद्धि का विषय हो परन्तु वह ''अलख पुरुष मूर्ति'' तो मन वाणी और बुद्धि से सर्वथा अतीत है। अतः उसकी सत् असत् संज्ञा नहीं होती। अब तक हमने उस ''अलख पुरुष मूर्ति के तत्व रहस्य के जानने का महात्म्य और उसकी विलक्षणता के बारे में जानकारी कि उसके तत्व जानते ही मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है वह कृत-कृत्य ज्ञात ज्ञातत्व एवं प्राप्त प्राप्तव्य हो जाता है। आगे हम उसी ''अलख पुरुष'' के गीतोक्त सगुण–निराकार स्वरूप की झाँकी देखते हैं भगवान अपने प्रिय शिष्य एवं नित्र अर्जुन को उस विलक्षण तत्व का स्वरूप वर्णन इस प्रकार करते हैं–

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ (गीता. 13-13)

अर्थात् वे (अलख पुरुष मूर्ति) परमात्मा सब जगह हाथों पैरों वाले, सब जगह नेत्रों सिरों और मुखों वाले तथा सब जगह कानों वाले हैं, वे संसार में सबको व्याप्त करके स्थित हैं। भगवान के सब जगह हाथ, पैर, नेत्रों, सिर, मुख, और कान कहने का तात्पर्य है कि वह अलख पुरुष मूर्ति किसी भी प्राणी से दूर नहीं है।

कारण कि भगवान सम्पूर्ण देश काल, वस्तु व्यक्ति घटना, परिस्थिति आदि में परिपूर्ण रूप से विद्यमान है। भगवान (अलख पुरुष मूर्ति) के सब जगह हाथ हैं। अतः वे हमारी रक्षा कहीं भी किसी भी परिस्थिति में करने को समर्थ हैं। दूसरे वह अलख पुरुष सब ओर हाथ वाला होने के कारण उन्हें कोई भी वस्तु कहीं से भी समर्पण की जाये वे वहीं उसे ग्रहण करने में समर्थ हैं। सब जगह पैरों वाला होने के कारण भक्तों द्वारा पुकारने पर वहीं पहुँचने में समर्थ हैं। हम चाहें जिस स्थान पर उनके चरणों में ढोक दे सकते हैं, वहीं वे हमारा प्रणाम स्वीकार कर लेते हैं। सब और आँख वाला होने के कारण वह अलख पुरुष हमें तथा हमारे आचरण को सब जगह देख लेता है उनसे कुछ छुपा नहीं है। उनका सिर सब जगह होने के कारण हम उसके सत्कारार्थ कहीं भी पुष्प चढ़ा सकते हैं, पेड़ पर लगने वाले पुष्प उसी के सिर पर रखे हैं, जब हवा के झौकें से भूमि पर गिरते हैं तो भी उसी अलख पुरुष मूर्ति के सिर पर ही झरते हैं क्योंकि उनका सिर सब जगह है।

उस अलख पुरुष मूर्ति का मुख सब जगह होने के कारण उन्हें निवेदन किया गया नैवद्य उन्हीं को प्राप्त होता है। वह कहीं भी किसी मुख से या मनुष्य के अन्तः करण में कोई भी बात कह सकने में समर्थ है। वह ''अलख पुरुष मूर्ति'' सब जगह की गई हमारी प्रार्थना चाहे वह परा पश्चन्ती या वैश्वरी वाणी, किसी रूप में की गई हो, सुन सकने में समर्थ हैं, क्योंकि वह सब ओर कानों वाला है। हमारी गुप्त एवं प्रकट सभी प्रार्थनाओं को वह स्पष्ट सुनता है। किसी संत ने उन भगवान की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए कहा है–

चहुदिसि आरति, चहुँ दिसि पूजा।

चहु दिसि राम, और नहिं दूजा॥

''सर्वमावृत्य तिष्ठति'' पद द्वारा उसी अलख पुरुष मूर्ति की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करते हुये भगवान स्वयं कहते हैं कि वह संसार में सबको व्यापक करके स्थिति हैं। इस बात का मुख्य अभिप्राय यह है कि जैसे आकाश वायु, अग्नि जल और पृथ्वी का कारण होने से उन चारों को व्याप्त करके स्थित हैं। ठीक उसी प्रकार वह अलखपुरुषमूतिं चराचर जीव, जगत को व्याप्त किये हुए स्थित हैं। अतः सब कुछ उसी से परिपूर्ण है। हमारे हुजूर बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज जिस अलखपुरुषमूर्ति में अपने को तदाकार किये रहा करते थे। उसके स्वरूप को गीता का यह उपर्युक्त श्लोक पूर्णतः स्पष्ट करता है हमारे बाबा जो स्वयं प्रब्रह्मस्वरूप हो गये थे, आज भी अपने भक्तों को उनके पुकारने, ध्यान करने एवं उनके नाम का उच्चारण करने मात्र से सब जगह, सब परिस्थितियों में उनकी मदद करते हैं। आपकी दृष्टि में वह अलख पुरुष प्रत्येक स्थान पर अपने सम्पूर्ण रूप से विद्यमान है वह बाहर ही नहीं समस्त जीव, जगत के अन्दर अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है यह है कि उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' के स्वरूप का वर्णन जैसा गीता के इस 13-13

श्लोकों में किया गया है ठीक वैसा ही अक्षरसः इसी प्रकार श्वेताश्रतरोपनिषद् (3/16) में भी आया है। ब्रह्म की स्वर्णव्यापकता का ऐसा सटीक और स्पष्ट वर्णन अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। संत दादूदयाल अपने शब्दों में कहते हैं–

दोहा *घीव दूध में रमि रहा, व्यापक सबही ठौर।*

"दादू" वक्ता बहुत हैं, मयि काढै ते और॥

अर्थात् वह अलख पुरुषमूर्ति उसी प्रकार जड़ चेतन रूप इस जगत में व्यापक होकर स्थित हैं जैसे दूध में घी सर्वव्यापक होता है। दादू कहते हैं कि उस तत्व का बखान करने वाला संसार में बहुत हैं, लेकिन नंन्थन करके उसे तत्व से जान लेने वाले बहुत कम हैं। हमारे गुरुदेव बाबा ने नड़, चेतन, स्वरूप इस जगत का सूक्ष्मावलोकन कर यह पाया कि ऐसा कोई भी प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति एवं देश, काल नहीं, जहाँ वह अलख पुरुष मूर्ति सदैव एक रस विद्यमान नहीं हो, उन्होंने बाहर एवं अपने भीतर उसी अलख की झलक दिखलाई देती थी, मानसान्तर्गत उसके प्रधान वक्त महादेव जी का कथन कि–

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमतें प्रकट होहिं मैं जाना॥

देस काल दिसि विदिसिहु माहीं। कहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही॥ मानस बात॥

अर्थात् भगवान सब देश, काल, दिशा, विदिशा, सब स्थानों में समान रूप से व्याप्त है। ऐसा स्थान कहीं नहीं जहाँ वह प्रभु नहीं हो। इस प्रकार उस अलखपुरुष मूर्ति की सर्वव्यापकता का निरूपण करके आगे भगवान उसकी विलक्षणता का कथन करते हुए कहते हैं।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।

असक्तं सर्व्भृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्त च॥ गी. 13/14

" वे (अलख पुरुष) सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित हैं, और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करने वाले हैं, आसक्ति रहित हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करने वाले हैं, आसक्ति रहित हैं और सम्पूर्ण संसार का भरण पोषण करने वाले हैं तथा गुणों से रहित एवं सम्पूर्ण गुणों के भोक्ता हैं। तात्पर्य यह है कि वे अलख पुरुषमूर्ति प्राकृत इन्द्रियों से रहित हैं अर्थात् संसार जीवों की तरह उनके हाथ, पैर, मुख, नेत्र, कान आदि इन्द्रियाँ नहीं, लेकिन इन इन्द्रियों के जो विषय हैं उन्हें ग्रहण करने में वे सर्वथा समर्य हैं, जैसे वे कानों से रहित होने पर भी भक्तों की पुकार सुन लेते हैं, त्वचा रहित होने पर भी भक्तों का आलिंगन करते हैं, नेत्रों से रहित होने पर भी समस्त प्राणियों को निरन्तर देखते रहते हैं। रसना रहित होने पर भी भक्तों द्वारा लगाये गये भोग का आस्वादन करते हैं, इसी प्रकार इन्द्रिय रहित होने पर भी वे परमात्मा शब्द स्पर्श आदि विषयों को ग्रहण करने की

सामर्थ्य रखते हैं। वे वाणी से रहित होने पर भी अपने भक्तों से बातें करते हैं, चरणों से रहित होने पर भी अपने प्रेमियों की पुकार पर दौड़े चले जाते हैं, हाथों से रहित होने पर अपने भक्तों द्वारा प्रदत्त उपहारों को ग्रहण करते हैं तथा हर देशकाल, परिस्थिति में उनकी मदद करते हैं, अतः वे इन्द्रियों से रहित होकर भी इन्दियों के विषयों को प्रकाशित करते हैं। ''आसक्त सर्वभृच्चैव'' पद से भगवान यह कहते हैं कि उनका सभी प्राणी जगत में अपनेपन का भाव है, प्रेम है, लेकिन किसी में भी उनकी आसक्ति नहीं है वे समस्त चराचर के प्राणियों को समान भाव से पालन पोषण करते हैं, हर प्राणी की उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, देश-काल एवं परिस्थिति के अनुसार उनकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। भगवान प्रत्येक प्राणी को उसकी आवश्यक वस्तु यथोचित रीति से पहुँचा देते हैं। प्राणी पृथ्वी पर हों या गहरे समुद्रों में, आकाश में हो अथवा स्वर्गादि लोकों में हो, कोई छोटा हो अथवा बड़ा सभी का भगवान समान रूप से पालन करते हैं। ''निर्गुण गुणभाक्तृत्व'' पद द्वारा यह बात स्पष्ट की गई है कि यद्यपि वह ''अलख पुरुष परमात्मा सभी गुणों से रहित है फिर भी सम्पूर्ण गुणों के भोक्ता भी वे ही हैं। जैसे माता-पिता बालक की मात्र क्रियाओं को देखकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार भक्तों की समस्त क्रियाओं को देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं तथा उनकी सब क्रियाओं के भोक्ता भी वन जाते हैं।'' इस उपर्युक्त श्लोक में भगवान के जिस विलक्षण तथा अलौकिक स्वरूप का वर्णन कर परस्पर विरोधी बातें बतलाई गई हैं ठीक वैसा वर्णन श्रुतियों में भी मिलता हैः–

''अपाणपादो जबनो गृहीता,

पश्चत्यचक्षुः स श्रुणोत्यकर्णः।

स वेत्तिवेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम्॥'' *(श्वेतश्रतरोउ. 3/19)*

अर्यात् वह परमात्मा हाथ व पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं को ग्रहण करने वाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करने वाला है, आंखों के बिना ही सब कुछ देखता है, कानों के बिना ही सब कुछ सुनता है, वह जो कुछ भी जानने में आने वाली वस्तुएँ हैं, उन सबको जानता है, परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं है (ज्ञानी पुरुष) उसे महान आदि पुरुष कहते हैं।

यही विचार मानस के बालकाण्ड में पठनीय हैः–

बिनु पद चलइ सुनई बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥

आनने रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी॥

तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥

असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहीं बरनी॥

(मानस बा. का. 7.5.)

अतः वह **अलख** पुरुष मूर्ति जिसका ध्यान जिसका नाम हुजुर महाराज की जबान पर सदैव रहता था। सब तरह से अलौकिक एवं विलक्षण तत्व है, जिसकी महिमा का गान करने में कोई भी समर्थ नहीं है। उस परमपुरुष की सर्वव्यापकता का निरूपण करते हुए भगवान अगले श्लोक में कहते हैंः–

वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।

सूक्ष्म त्वान्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गीता 13.15)

वे (अलख पुरुष मूर्ति) सभी प्राणियों के बाहर, भीतर परिपूर्ण हैं और चर अचर प्राणियों के रूप में भी वे ही हैं। दूर से दूर एवं नजदीक से नजदीक भी वे ही हैं तथा वह अलख पुरुष अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण जानने का विषय नहीं है। अर्थात् जैसे बर्फ के धड़ों को समुद्र में डाल दिया जाये तो उन घड़ों के वाहर-भीतर जल होगा और वे स्वयं भी जलरूप ही हैं। ऐसी ही सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के बाहर भीतर परमात्मा है और वे स्वयं भी परमात्मा स्वरूप हैं। अर्थात् जो कुछ भी इस चराचरात्मक जीव व जगत के रूप में हैं वह सब कुछ परमात्मा ही है। इसी बात को भगवान ने महात्माओं की दृष्टि से "वासुदेवः सर्वम" (गीता 7.19) और स्वदृष्टि से सदसच्चाहम (गीता 9/19) में कहा है। उस परमात्मा को दूर से दूर और नजदीक से भी नजदीक कहने का भाव यह है कि किसी वस्तु का दूर और नजदीक होना, देशकृत, कालकृत एवं वस्तुकृत तीन दृष्टियों से होता है। जैसे दूर से दूर देश में वे ही परमात्मा हैं और नजदीक से नजदीक भी वे ही हैं। पृथ्वी से दूर जल है जल से दूर तेज (अग्नि) है, तेज से दूर वायु है और वायु से दूर आकाश, आकाश से दूर महतत्त्व, महतत्व से दूर प्रकृति और प्रकृति से परे परमात्मा है। इस न्याय से परमात्मा दूर से दूर सिद्ध हुए। दूर से दूर होते हुए भी वे परमात्मा व्यापक रूप से सब प्राणी पदार्थों में ही है। क्योंकि परमात्मा सब जगत के महाकारण हैं और कारण सब कार्यों में विद्यमाज रहता है। यह सिद्धान्त है। अतः वह सव के नजदीक से नजदीक है। ये सब स्थूल शरीर प्रकृति के नजदीक है, स्थूल शरीरों से नजदीक सूक्ष्म शरीर है और सूक्ष्म शरीरों के नजदीक कारण, शरीर से नजदीक अहम और अहम से बिल्कुल नजदीक परमात्मा है। इस प्रकार जीव से जितने नजदीक परमात्मा हैं उतना पास कुछ भी नहीं है। सूक्ष्म त्वातदविज्ञेयम् पद द्वारा यह बात स्पष्ट की गई है कि वह "अलख पुरुष मूर्ति" अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों और अन्तः करण का विशेष नहीं है अर्थात् हमारी इन्द्रियाँ मन बुद्धि की पकड़ में वह नहीं आ सकते। उस परमात्मा को गीता कहीं ज्ञेय (3/12.17) एवं अविज्ञय भी कहती है। इसका तात्पर्य है कि वह स्वयं के द्वारा जाना जा सकता है इसलिए तो वह ज्ञेय है और उसे इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा नहीं जाना जा सकता अतः

उसे अविज्ञेय भी कहा गया है। उपर्युक्त श्लोक में निहित भाव को श्रुति में भी कुछ इसी प्रकार व्यक्त किया गया है।

तदेजति तन्नैजति तद् द्वरे तद्वन्तिके।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ ईशा. 3.5॥

वे (अलख पुरुष मूर्ति) चलते हैं वे नहीं चलते, वे दूर से भी दूर हैं, वे अत्यन्त समीप हैं और वे ही इस समस्त जगत के बाहर भी हैं।

वे परमेश्वर चलते हैं और नहीं भी चलते। एक ही काल में परस्पर विरोधी भाव गुण तथा क्रिया जिनमें रह सकती है वे ही तो परमेश्वर हैं। यह उनकी अचिन्त्य शक्ति की महिमा है। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि भगवान जो अपने दिव्य परमधाम में और लीलाधाम में अपने प्रिय भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए अप्राकृतिक सगुण साकार रूप में प्रगट रहकर लीला किया करते हैं, यह उनका चलना है और निर्गुण रूप से सदा सर्वदा अवल स्थिति है, यह उनका न चलना है। इसी प्रकार श्रद्धा-भक्ति से हीन मनुष्यों को वे दर्शन नहीं देते। अतः उनके लिए वे दूर से दूर हैं और प्रेमी की पुकार सुनकर उसके भावानुकूल दर्शन देना ही उनका समीप से समीप होना है। इसके अतिरिक्त वह अलख पुरुष परमात्मा सदा सर्वदा सर्वत्र परिपूर्ण है इसलिए दूर से दूर एवं समीप से समीप भी वे ही स्थित हैं क्योंकि ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वे उपस्थित न हों। वस्तुतः वे ही इस समस्त जगत के परम आधार हैं और परम कारण हैं इसलिए भीतर बाहर वे ही सर्वत्र वे ही परिपूर्ण हैं। हिरण्याकश्यप हाथ में खड्ग उठाकर मारने को उद्यत हुआ भक्त प्रहलाद से पूछता है वता तेरा ईश्वर कहाँ है? पुकार ले उसे, जिससे तेरी रक्षा हो सके। अपने पिता के प्रश्न का उत्तर भक्त शिरोमणि इस प्रकार देते हैं:–

मुझमें, तुझमें, खड्ग खम्ब में,

व्याप रहे जगदीश।

अर्थात् मेरे प्रभु सर्वव्यापी हैं वह मुझमें, तुझमें तेरी इस तीक्ष्णधार तलवार में तथा इस तेरे महल के खम्बे में भी वह मौजूद हैं। यही कारण है कि उसके विश्वास के अनुरूप भगवान नृसिंह के रूप में खम्ब फाड़कर प्रकट हो गये। द्रोपदी को वस्त्र के रूप में प्रकट हो जाना क्या यह नहीं सिद्ध करता कि वह परमात्मा हमारे सबके अत्यन्त नजदीक है। लेकिन बिना श्रद्धा विश्वास के वही दूर से दूर भी है। यह बात उपर्युक्त श्लोक (गी. 13/15) से ठीक प्रकार से स्पष्ट की गई है।

अब उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' की सर्व समर्थता का वर्णन करते हुए भगवान स्वयं कहते हैं:–

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभ विष्णु च॥ (गी. 13/16)

वे (अलख पुरुष मूर्ति) परमात्मा स्वयं विभाग रहित होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियों में विभक्त की तरह स्थित हैं। वे (ज्ञेयम) जानने योग्य परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, उनका भरण-पोषण करने वाले तथा संहार करने वाले हैं। इस सम्पूर्ण त्रिलोक में देखने सुनने व समझने में जितने प्राणी पदार्थ आते हैं, उन सबमें वह अलख पुरुष मूर्ति विभाग रहित (अखण्ड) होते हुए भी विभक्त की तरह प्रतीत हो रहे हैं। विभाग केवल प्रतीति मात्र है वास्तविक नहीं। जिस प्रकार एक ही आकाश घट मठ आदि की उपाधि से घटा काश, मठाकाश आदि के रूप में अलग-अलग दिखते हुए भी तत्व से एक ही हैं, ठीक इसी प्रकार वह परमात्मा भी भिन्न-भिन्न प्राणियों के शरीरों की उपाधि से न्यारा-न्यारा दिखते हुए भी तत्वतः एक ही हैं। भूत-भर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च पद द्वारा उस परमात्मा को सामर्थ्य का कथन किया गया है। उसी एक अखण्ड परमात्मा को यहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप से वर्णन कर यह बात स्पष्ट हो गई है कि वे (अलख पुरुष) ही रजोगुण को स्वीकार कर ब्रह्म रूप से जगत की सृष्टि करते हैं। सत्व गुण को स्वीकार करके इस चराचर जगत का भरण-पोषण तथा तमोगुण को अंगीकार करके इस सारे जीव जगत का संहार करते हैं। हमारे हुजूर महाराज अपने सात नाम के मंत्र में सामर्थ्य नाम पद से उस अलखपुरुषमूर्ति को उपर्युक्त सामर्थ्य का ही वर्णन करते हैं कि वही एक परमात्मा अनेक रूपों में सृष्टि, पालन एवं संहार कार्य करते हैं। उसके अतिरिक्त ऐसी शक्ति किसी दूसरे में नहीं है। हमारे गुरुदेव अपनी गुरु वन्दना में अपने गुरुदेव ब्रह्म को अग्नि में, ज्योति में, प्रकाश में व्याप्त बतलाते थे। ठीक ये ही भाव श्री मद्भगवद् गीता के इस श्लोक में भी कहा गया है:–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्यं हृदसर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता 13/17)

अर्थात् वह परमात्मा (अलख पुरुष अविनाशी) सम्पूर्ण ज्योतियों का भी ज्योति और अज्ञान से अत्यन्त परे कहा गया है। वह ज्ञान रूप जानने योग्य (ज्ञेय) ज्ञान (साधन समुदाय) से प्राप्त करने योग्य (ज्ञान गम्यम्) और सबके हृदय में विराजमान है। ज्योति प्रकाश को ही कहते हैं प्रकाश ज्ञान को भी कहत हैं। इस प्रकार जिनसे प्रकाश मिलता है, वे सभी ज्योति हैं। भौतिक पदार्थ, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारा, विद्युत एवं अग्नि आदि के प्रकाश में दिखते हैं। अतः भौतिक पदार्थों की ज्योति सूर्य चन्द्र तथा अग्नि है। इसी प्रकार शब्दों की ज्योति कान है, स्पर्श की ज्योति (प्रकाशक) त्वचा है, रूप की ज्योति (प्रकाशक) नेत्र हैं, विभिन्न रसों का ज्ञान (ज्योति) जिह्वा से होता है। गन्ध की ज्योति (प्रकाशक) नाक है, इन पांचों इन्द्रियों से उनके शब्दादि विषयों का ज्ञान तभी सम्भव होता है जब कि उक्त इन्द्रियों के साथ मन रहता हो।

अतः उक्त पाँचों इन्द्रियों की ज्योति (प्रकाशक) मन है तथ मन से विष्यों का ज्ञान होने पर भी जब तक मन के साथ बुद्धि नहीं होती है, तब तक उस विष्य का स्पाट ज्ञान सम्भव नहीं होता। अतः मन की ज्योति (प्रकाशक) बुद्धि है, बुद्धि से सत् असत्, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य का ज्ञान होने पर भी अगर स्वयं (कर्ताजीव) इसको धारण नहीं करता तो वह मात्र बौद्धिक ज्ञान ही रह जाता है, वह ज्ञान जीवन में अचरण में नहीं आता, वह बात स्वयं (कर्ता) में नहीं बेठती, जो बात स्वयं में बैठ जती है, फिर वह स्थाई हो जाती है, अतः बुद्धि की ज्योति (प्रकाशक) स्वयं है, स्वयं कर्ता जीव भी परमात्मा का अंश है और परमात्मा इसका अंशी व स्वयं में ज्ञान (आकाश) परमात्मा से ही आता है। अतः स्वयं की ज्योति (प्रकाशका परमात्मा है उस स्वयं प्रकाश परमात्मा को कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकता। उपर्युक्त विवरण से यहं सिद्ध हुआ कि वे परमात्मा, विषय, इन्द्रियों मन, बुद्धि एवं स्वयं का भी प्रकश है उसका प्रकाशित (जानने) वाला कोई नहीं। यह बात मानस के बाल काण्ड मे इस प्रकार कही गई:-

विषय करनसुर जीव समेता। सकल एकतें एक सचेवा॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।

(मानस -1-117-3)

इस प्रकार वह अलखपुरुषमूर्ति जिसके ध्यान में हमारे हुजूर बाबा रहा करते थे, सम्पूर्ण जड़-चेतन संसार का प्रकाशक है। जिस प्रकार एक के पीछे एक क्रम में बैठे हुए व्यक्तियों में से आगे वाले अपने पीछे बैठे हुए व्यक्तियों को नहीं जान सकते केवल अपने आगे बैठे व्यक्तियों को ही वे जान सकते हैं ठीक उस प्रकार विषय इन्द्रियों को नहीं जानते। इन्द्रियाँ मन को, मन बुद्धि को, बुद्धि स्वयं (जीव) को और अज्ञानी जीव उस परमात्मा को नहीं जाव सकता। परमात्मा को इनमें से कोई नहीं जानता वह (परमात्मा) सबको जानता (प्रकाश्क) है।

''तमसः परमुच्यते'' पद द्वारा कहा गय है कि वह अलख पुरुष परमात्मा अज्ञान (तमस) से अत्यन्त परे, सर्वथा असम्बद्ध है और निलिप्त भी है। इन्द्रियाँ मन, बुद्धि और अहम् (स्वयं) इनमें तो ज्ञान और ध्यान वोनों आते-जाते हैं परन्तु जो सबका परम प्रकाशक है, उस परमात्मा में अज्ञान कभी नहीं आत और आ सकता भी नहीं है। जिस प्रकार सूर्य में कभी अच्चकार नहीं आ सकता, उसी आकार उस परमात्मा में अज्ञान कभी नहीं आ सकता। अतः उस परमात्मा को यहाँ अज्ञान से सर्वथा परे कहा गया है।

ज्ञानम् ज्ञेयं ज्ञानगम्यम् पद द्वारा यहाँ वह बात स्पष्ट की गई है कि उस परमात्मा में कभी अज्ञान नहीं आता, वह स्वयं ज्ञान स्वरुप है और स्ती से सब चराचर जगत को प्रकाश मिलता है, अतः वह परमात्मा (ज्ञानम्) अर्थात् ज्ञान स्वरूप कहा गया है। इन्द्रियाँ मन बुद्धि आदि के द्वारा जनने में अने वाले विषयों का ज्ञान होता है, पर वे (ज्ञानगम्यम्) अवश्य जानने योग्य नहीं है क्योंकि विषयों को

मनने के परवात भी उसे जानना शेष रह नाता है। यास्तय मैं अवश्य जानने योग्य एक मत्र परमात्मा हैं है। उसे जान लेने पर कुछ जानना शेष नहीं रास्ता। भगवान के गीत के अध्याय पन्द्रह में कहा है कि सम्पूर्ण देवी के द्वारा जानना योग्य मैं ही हूँ और जो मुझे जान लेने है वह सर्वतिथित हो जाता है अतः परमात्मा को ज्ञेय कहा गया है। ज्ञान के द्वारा असत का त्यग होने पर परमात्मा को तत्व से जाना का सकता है। इसी कारण यहाँ परमात्मा को ज्ञानगम्यम् कहा गया है।

"हृदयसर्वस्यविष्ठितम्"

अर्थात् वह परमात्मा अलख पुरुष मूर्ति सब प्राणियों का इव्य में नित्य निरन्तर विराजमान है कहन का तत्पय यह है के यद्यरा वह (अलख पुरुष मूर्ति) परमात्मा सब, देष्ट कल वस्तु व्यक्ति रतन परस्यति उद्देश्य आदि में परिपूर्ण रुप से व्यापक है सीकत उसका गति स्थाना ता हृदया ही हैं।

हमारे हुजूर वद श्री श्री 1008 श्री मनोहरदासजी महाराज को अपने हृदयस्थ अलख पुरुष मूर्ति का साक्षाकार कर लिया या झंडे वह समस्त प्राणी, पदार्थों में एक रस नकार आत था उन्होंने उस अलख पुरुष मूर्ति मैं ही अपने को तदाकार कर दिया था। उनके हृदय में अन्धकार का नामर्किशक ही नहीं रहा उस ब्रह्मा ज्ञान के उनका होते ही उनका हृदय में उस परम पुरुष परमेश्वर का ही बलरूप प्रकाश शेष रहा था। उन्होंने जनता को उस अलख मूर्ति मैं ही लेन कर लिया या। महात्मा सुन्दर दास ने कहा है–

दोहा– *सीट ब्रह्म मिल जाता हैं सुन्दर उपजे ज्ञान*
दुर भ्यो प्रतिकिम्ब जब रहयों रक हो भनु।

उनके हृदय मे ज्योंट स्वरूप परमात्मा का परम आकाश परिपूर्ण था वे हमेशा उस ब्रह्मानन्द में झाडे रह करते थे मोह, ममत अदि उसका बनायों को उन्होंने सदैव के लिए तोड़ दिया था के हमेशा मन कर्म एवं रकन से उसी अलख पुरुष मूर्ति का भसन में लेन रहा करते थे। वे उस अचल शन्ति के शिकार पर आसीन थे जहाँ क्लेशो का सठोय अन्त ही जात है रादकदि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में:–

वे मोह-बन्धन-मुक्त थे, स्वच्छन्द थे, स्वाधीन थे;
सम्पूर्ण सुख-संयुक्त थे, वे शान्ति-शिखरासीन थे ।
मन से, वचन से, कर्म्म से वे प्रभु-भजन में लीन थे,
विख्यात ब्रह्मानन्द - नद के वे मनोहर मीन थे।।

भारत भारती से)

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्।

ooo

अध्याय-11

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहर दास जीवन-दर्शन

अलख की झलक

हमारे श्री गुरुदेव बाबा जिस ''अलख पुरुषमूर्ति का उद्घोष अपनी वाणी से किया करते थे, वह तत्व अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म और मन वाणी का अविषय है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि संसार में जो कुछ दृश्य और अदृश्य रूप से दिखाई पड़ रहा है और मन बुद्धि के द्वारा जो अनुभव में आता है वह सब उसी ''अलखपुरुषमूर्ति'' की झलक है। सभी प्राणियों के बाहर एवं भीतर तथा चाराचर प्राणियों के रूप में उसी अलख पुरुष की झलक दिखलाई पड़ रही है। दूर से एवं पास से जो कुछ दिखाई देता है तथा अनुभव में आ रहा है वह उसी अदृश्य–(अलख) की झलक मात्र से है।

बहिरन्तश्च भूतनामचरं चरमेव च।

सूक्ष्मत्वातद विज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गी. - 13/15)

अर्थात्–वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर (चेतन) एवं अचर (जड़) रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है तथा अति समीप और अति दूर भी वही स्थित है।

श्री मद्भगवद्गीता के उपर्युक्त श्लोक से यह बात पूर्ण स्पष्ट है कि संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है सब में उसी की झलक दिखलाई पड़ रही है और झलक ही नहीं संसार के रूप में आप स्वयं भी स्थित है। कभी भी किंचितमात्र ''आप'' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ''सब कुछ वे ही हैं'' वासुदेव :''सर्वम्''। इस से पूर्व हमने अलख पुरुषमूर्ति'' नाम के लेख में उस अलख (अदृश्य) पुरुष के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया उसके स्वरूप को स्पष्ट करने वाले उसके विधेय एवं निषेध्य विशेषणों के अर्थों की व्याख्या एवं उसके प्रभाव को व्यक्त करने वाले नामों का संक्षिप्त उदाहरणों द्वारा विवेचन प्रस्तुत किया गया। ऐसा हमने अपने गुरुदेव बाबा के ''अलखपुरुषमूर्ति'' के रहस्य की जानकारी हेतु किया। श्री बाबा साहब का अलख पुरुष इस विश्व, ब्राह्माण्डों के व्याप्त वह संचिदानन्दघन परमात्मा ही है जो सम्पूर्ण चराचर रूप से इन तीनों लोकों में स्थित है। उसी अलखपुरुष की सत्ता का उसकी झलक का इस प्रस्तुत लेख में विचार करते हैं। जो सत्ता अदृश्य है, मन वाणी से परे है उसी सत्ता का विविध चराचरात्मक जगत में प्रत्यज्ञ दर्शन ही उसकी झलक है। उसकी सत्ता से ही संसार में सभी प्रकार की आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाएं हो रही हैं–

टेरी सत्ता के दिना हे प्रभु मंगल मूल।

पत्ता तक हिलता नहीं, खिले न कोई फूल॥

किसी संत ने उपर्युक्त दोहे के माध्यम से उसी अलख पुरुष की शक्ति सामर्थ्य को प्रकट किया है। यह सारा संसार उस असीम, अलख, अविनाशी, अगोचर, कहे जाने वाले उसी परमात्मा के एक अंश मात्र से धारण किया हुआ है। इस संसार की जानकारी, ही कोई सम्पूर्णता से नहीं कर सकता, तो फिर उसके निर्माण महान् परमात्मा की जानकारी करना तो कल्पना से परे की वात है। भगवान कहते कि– इस सम्पूर्ण जगत को मैं अपनी योगमाया के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूं।'' भगवान को और उनके इस संसार के रूप में प्रकट होने के रहस्य को न तो देवता ही जानते हैं और न महर्षिगण ही क्योंकि भगवान सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों के आदि कारण है कोई भी कार्य अपने कारण को सम्पूर्णता से नहीं जान सकता है–

न मे विदु सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

अहमादिर्हि देवानं महर्षिणां च सर्वशः॥ (गो. 10/2)

अर्थात ''मेरे प्रकट होने को न देवता जानते हैं और न महर्षि क्योंकि सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का आदि हूं।

इस सम्पूर्ण चरावर त्रिलेकी में भगवान विविध रूपों में स्वयं ही अनेक प्रकार की लीलाएँ कर रहे हैं प्रत्येक क्षेत्र में हम उनकी झलक देख सकते हैं। उनको सुन सकते हैं तथा उनको व्यवहार में ला सकते हैं। अर्जुन ने भगवान से पूछा कि मैं इस संसार में किस-किस रुप में आपको देख सकता हूँ। अर्थात् ''आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन किये जा सकते हैं?''

इन प्रश्नों के उत्तर में स्वयं श्री कृष्ण भगवान कहते हैं कि कुरुश्रेष्ठ! मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है इस बात से भगवान अपने असीम रूप को व्यक्त करते हैं, उनके कहने का तात्पर्य यही है कि जैसे परमात्मा असीम, अनन्त है वैसे ही उनकी विभूतियाँ भी अनन्त हैं। भगवान ने अपने मित्र और परम शिष्य अर्जुन को संक्षेप में इस सम्पूर्ण जगत में दिखाई देने वाली अपनी झलक को कहकर सुनाया । भगवान ने इस चाराचर जगत में व्याप्त अपने स्वरूप की एक संक्षिप्त झलक इस प्रकार प्रस्तुत की–

समस्त प्राणियों का आदि मध्य एवं अन्त तथा उनके अन्तःकरण में आत्मारूप से मैं ही स्थित हूं। अदिति का पुत्र विष्णु सूर्य चन्द्र एवं नक्षत्रों एवं मरूतों के रूप में मैं ही हूं। समस्त वेदों, देवों, नदियों पर्वतों, समुद्रों वनस्पति वृक्षादि के रूप में मैं ही विद्यमान हूँ। संसार में चारासी लख योनियों के रूप में पशु, पक्षी एवं कीट पतंगे आदि के रूप में जितने भी जीव हैं एवं मेरे अंश मात्र से हैं। यहाँ तक कि सम्पूर्ण

सर्गों के आदि, मध्य एवं अन्त में, मैं ही हूँ। विद्याओं में, आध्यात्म विद्या में मैं ही हूँ तथा अक्षरों में अंकार तथा समासों में द्वन्द्व समास हूँ, अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल भी मैं ही हूँ। अपने विस्तार का वर्णन करके भगवान कहते हैं कि–

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।

न तदस्ति बिना यत्स्यान्भया भूतं चराचरम्॥ (गी. 10/39)

अर्थात् ''सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज है, वह बीज मैं ही हूँ क्यों कि मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।''

भगवान ने उक्त श्लोक में समस्त विभूतियों का सार अपने को बतलाये हुये कहा है कि सबका बीज अर्थात् कारण वे स्वयं ही हैं। क्योंकि इस संसार के निमित्त कारण भी वे ही हैं'' और उपादान कारण भी आप ही स्वयं हैं अर्थात् संसार को बनाने वाले भी वे ही हैं तथा संसार रूप से वनने वाले भी भगवान् स्वयं ही हैं। इस संसार में सर्वत्र उन्हीं की झलक दिखलाई पड़ती है। संसार में जड़ चेतन स्थावर संगम चर-अचर आदि जो कुछ भी देखने आ रहा है वह सब भगवान के बिना सम्भव नहीं है। भगवान सब के कारण (बीज) हैं सब कुछ उन्हीं से है और सब कुछ वे ही हैं। हमारी इन्द्रियां मन, बुद्धि के द्वारा जो कुछ भी जानने, समझने में आ रहा है, वह सब उसी अलख पुरुष की झलक है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के अध्याय 10 में बीसवें श्लोक–''अहमात्मा गुडाकेश'' से लेकर 39वें श्लोक ''बीजं तदहमर्जुन'' तक अपनी लगभग बयासी विभूतियों में अपनी ही झलक का प्रतिपादन किया है। इन सब विभूतियों में अपनी ही झलक बताने का भगवान का मुख्य तात्पर्य यह है कि कोई भी वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति सामने आये, उन सब में हमें भगवान के दर्शन होने चाहिये। भगवान हमेशा हमारे सामने मन, बुद्धि एवं चित्त के विषय बने रहे। हमें उनकी अखण्ड स्मृति बनी रहे। संसार में हमें जहाँ-जहाँ भी कोई विशेषता दिखाई पड़े वहां हमें ईश्वर की ही झलक दिखलाई दे। वह भगवान हमें हर व्यक्ति वस्तु एवं भाव में प्रत्यक्षवत् दिखाई पड़े यही उद्देश्य भगवान का इन समस्त विभूतियों के वर्णन करने में है।

यच्च किंचित जगत सर्वं दृश्यते श्रुयतेअपि वा।

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥ (नारायणोपनिषद)

अर्थात् यह जो कुछ भी जगत देखने या सुनने में आता है, इस सबको बाहर और भीतर से व्याप्त करके भगवान नारायण स्थित हैं।

श्रीमदभागवत् में ग्यारहवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय में भी भगवान ने अपने प्यारे भक्त उद्धव जी को अपनी दिव्य विभूतियों को विस्तार से सुनाया है भगवान स्वयं अनन्त हैं और उनकी विभूतियाँ, गुण लीलाएँ भी अनन्त हैं, कोई दूसरा उनका पार नहीं पा सकता है–

भगवान ने अपनी दिव्य विभूतियों को अनन्त बतलाकर उनका संक्षेप में वर्णन किया है। संसार में जहाँ हमारा मन किसी विशेषता को देखकर आकर्षित होता है वहाँ-वहाँ उस विशेषता को भगवान की ही मानें उस वस्तु व्यक्ति में भगवान की झलक ही देखें विभूति योग वर्णन का मुख्य उद्देश्य यही दिखाई देता है। संसार के सब नामों एवं रूपों में उसी की झलक दिखलाई पड़े हमारी इन्द्रियों मन एवं बुद्धि द्वारा जो भी ग्रहण किया जावे चिन्तन किया जावे या विचार किया जावे समस्त रूपों में भगवान के साथ अखण्ड हमारा सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गी. 10/41)

अर्थात् जो जो ऐश्वर्य युक्त, शोभा युक्त और बलयुक्त वस्तु है, उस उसको तुम मेरे ही तेज (योग) के अंश से उत्पन्न हुई समझो। ऐसा कहकर भगवान सर्वत्र अपनी ही झलक दिखला रहे हैं। संसार में जिस किसी सजीव निर्जिव वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, गुण, भाव, क्रिया आदि में जो कुछ ऐश्वर्य दीखे शोभा या सौन्दर्य दिखे, बलवन्ता दीखे तथा जो कुछ भी विशेषता विलक्षणता योग्यता दीखे उसे भगवान के तेज के एक अंश से उत्पन्न जानना चाहिए क्योंकि उनकी झलक के बिना कहीं भी कुछ भी विलक्षणता हो ही नहीं सकती। अगर भगवान को छोड़कर किसी दूसरे व्यक्ति वस्तु आदि की विशेषता देखी जाती है तो यह भगवत् निष्ठा का लक्षण नहीं वरन् पतन का चिह्न है। संसार में छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु व्यक्ति क्रिया आदि में जो महत्ता सुन्दरता सुख रूपता दीखती है, वह वास्तव में सांसारिक वस्तु का है ही नहीं, अगर उस वस्तु का वह गुण या क्रिया होती तो सब समय उसमें दिखाई पड़ती। इससे सिद्ध होता है कि वह गुण क्रिया एवं विशेषता उस वस्तु की न होकर किसी और की ही झलक है और वह है परमात्मा। संसार की समस्त वस्तुओं एवं व्यक्तियों में जो सुन्दरता सुख रूपता दिखलाई पड़ती है वह उसी अलखपुरुषमूर्ति को झलक मात्र है। हम उस अलखपुरुषमूर्ति की झलक के रहस्य को नहीं जानकर हमारी वृत्ति परमात्मा की महिमा की ओर न जाकर उस वस्तु की ओर ही जाती है तो हम परमात्मा से दूर होकर इस जड़ संसार के आकर्षण में फंस जाते हैं, हमारे मन में उस वस्तु के भोग एवं उसके संग्रह की कामना पैदा हो जाती है और यही हमारी पतन का प्रमुख कारण है। वास्तविकता तो यह है कि संसार में जितने भी वस्तु व्यक्ति, पदार्थ हैं उन सभी के रूप में आप स्वयं ही प्रकट हैं फिर उनके अन्तर्गत पाये जाने वाले सुन्दरता आदि गुण भी उसी परमात्मा से आगत हैं। तत्वदर्शी व्यक्ति की दृष्टि में सारे गुणों एवं विशेषताओं का घर एक मात्र भगवान ही हैं। जैसे विद्युत शक्ति संचालित विविध उपकरणों यथा रेडियो, कूलर, हीटर तथा रेल के इंजिन में दिखाई पड़ने वाली विशेषताओं को उन यंत्रों की मानना और उसके पीछे

छुपी विद्युत शक्ति के महत्त्व को स्वीकार न करना अल्पज्ञों का ही काम है। ठीक उसी प्रकार समस्त सांसारिक प्राणी पदार्थों में विद्यमान उनके सुन्दरता, बलवन्ता एवं विविध गुणों को उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के मानना हमारी भूल है। वास्तविकता तो यह है कि इन सब में एक उसी अलख पुरुष की ही झलक है।

अतः भगवान का यह कथन कि संसार में जो ऐश्वर्य युक्त शोभा युक्त और बलयुक्त वस्तुएँ हैं, उस उसको तुम मेरी ही तेज (योग) के अंश से उत्पन्न हुई समझो। एक वेश्या सुन्दर स्वर में गाना गा रही थी तो उसको सुनकर एक संत मस्त हो गये कि देखो! ठाकुर जी ने कैसा कंठ दिया है कितनी सुन्दर आवाज है। वेश्या का सुरीला कंठ सुनकर संत की दृष्टि वेश्या पर नहीं वरन् भगवान की ओर गई क्योंकि कंठ में जो मधुरता एवं आकर्षण है वह तो वस्तुतः भगवान की ही देन है। किसी सुन्दर पुष्प में आकर्षण दिखाई दे सुगंधी दिखाई दे तो हमारे अन्दर उसके प्रति आसक्ति एवं भोगवृत्ति जागृत न होकर भगवान की झलक का दर्शन होना चाहिये क्योंकि शोभायुक्त, कांतियुक्त प्राणी पदार्थों के मूल में भगवान की ही सत्ता के दर्शन एवं उनके अस्तित्व का अनुभव होना चाहिये। क्योंकि कण-कण में उसी पुरुष अविनाशी की झलक समाई हुई है! भगवान अपने प्रिय भक्त अर्जुन को विशेष रहस्य की बात बतलाते हुये कहते हैं–

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ (गी. 10/42)

"अथवा हे अर्जुन! तुम्हें इस प्रकार बहुत सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? मैं इस सम्पूर्ण जगत को "अपनी योग यथा माया के (एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ। भगवान के किसी भी अंश में अनन्त सृष्टियाँ विद्यमान हैं" रोम - रोम प्रति लोग कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड"। इस प्रकार सारे संसार में सर्वत्र उन्हीं एक मात्र अलख पुरुष की झलक दिखलाई देती है। हमारी शक्ति सामर्थ्य और योग्यता भगवान के द्वारा ही हमें प्रदत्त है। भगवान पात्रानुसार शक्ति एवं सामर्थ्य प्रदान करते हैं। हमारे अन्दर उतनी शक्ति कहाँ कि हम उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा अलखपुरुषमूर्ति को अपनी सीमित इन्द्रियों एव बौद्धिक ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण देख सकें किसी ने कहा है–

अज़ब कुदरत का करिस्मा, रचाया ख़ालिक नेख़लक।

ख़लक में ख़लकत बसाई, रख दिया सरपै फ़लक॥

फ़लक पै अगिणत सितारे ग़जब की जिनमें झलक।

झलक जिसकी देख नहिं पाए, किये नीचे पलक॥

अर्थात्–यह प्रकृति का अनोखा आश्चर्य है कि खालिक (भगवान ने खलकत) इस संसार को बनाया तथा खलक (संसार) में (खलकत) अनेक प्रकार की सृष्टि बनाई तथा उसके ऊपर फ़लक (आकाश) रख दिया। आकाश (फलक) में अननिगत तारे बनाकर जड़ दियें जिनमें उस परमात्मा की अनोखी झलक देखने को मिलती हैं हमारी वो शक्ति सामर्थ्य कहाँ कि ईश्वर के सौन्दर्य की झलक को सम्पूर्णता से देख सके। अतः हार मानकर हमने अपनी पलक नीची कर ली अर्थात् उस अलख पुरुष के शक्ति सौन्दर्य के सामने हम नतमस्तक होकर रह गये।'' हमारे गुरुदेव ने उस अलखपुरुषमूर्ति के वास्तविक तत्व रहस्य को हृदयांगम किया था। संसार के प्रत्येक प्राणी पदार्थ एवं घटना में उन्हें उन्हीं कृपा निधान प्रभो की झलक दिखलाई पड़ती थी। उनके समकालीन लोगों ने जो अपने संस्मरण हमें सुनाए उनसे बात पूर्ण रूपेण स्पष्ट होती है। उनके मुखार्विन्द से अलखपुरुषमूर्ति का रहस्य कई घोष निकलता और अचानक ऐसी अनोखी रहस्य-मई गहराइयों में वे खो जाया करते थे। हुजूर बाबा के अलखपुरुषमूर्ति'' की व्याख्या मैंने अपनी सीमित शक्ति सामर्थ्यानुसार श्रीमदभगवद् गीता एवं उपनिषदों के आलोक में की है लेकिन उसके वास्तविक तात्पर्य पर पहुंचने का दावा मैं कतई नहीं कर सकता, क्योंकि उनके गुरु का ज्ञान न्यारा था, जिस पर मेरे जैसा अल्पज्ञ भला कैसे पहुंच सकता है।

इस प्रस्तुत निवन्ध में मैंने उसी ''अलखपुरुषमूर्ति की जड़ चेतन में और चराचर रूप में उसी की झलक देखने का प्रयास किया है।

यहाँ तक हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संसार में सर्वत्र उसी का नजारा दिखाई पड़ता है। चाहे कोई सुन्दर वस्तु हो चाहे अन्य कोई विशेष गुण हो वह सब उसी परमेश्वर की ही देन होती है। हमारे मन प्राण इन्द्रियों आदि अनेक देवता सभी में उसी अलखपुरुषमूर्ति की झलक दिखलाई पड़ती है। ये सभी उन्हीं को शक्ति और कृपा से अनुप्राणित प्रेरित और शक्तिमान होकर कार्यक्षम होते हैं। विश्व में जो कोई प्राणी पदार्थ शक्तिमान सुन्दर और प्रिय प्रतीत होते हैं उनके जीवन में जो असफलता दीखती है वह सभी उसी अलख पुरुष परमेश्वर की झलक मात्र से ही सम्भव होती है। उस योग्यता शक्ति या सौन्दर्य को अपना मानकर जीवन की उपलब्धियों पर जो गर्व करने लगता है उसका तुरन्त पतन होता है क्यों कि उसकी दृष्टि से परमात्मा कुछ नहीं जो कुछ शक्ति सामर्थ्य है उसे वे अपनी मानकर उससे प्राप्त सफलता को स्वयं की सफलता मानते हैं। इस सम्बन्ध में केनोपनिषद से एक सुन्दर आख्यायिका का उल्लेख करना चाहूँगा– एक बार परब्रह्म पुरुषोतम ने देवों पर कृपा करके उन्हें शक्ति प्रदान की, जिसके फलस्वरूप उन्होंने असुरों पर विजय प्राप्त कर ली। यह विजय वस्तुतः भगवान की ही थी, देवता तो केवल निमिव्त मात्र थे परन्तु विजयोन्माद में देवगण इस तथ्य को भूल गये। वे भगवान की महिमा को अपनी महिमा समझ बैठे, और अभिमानवश यह समझ बैठे कि हम बड़े भारी शक्तिशाली हैं। हमने अपने ही बल पौरुष से असुरों को पराजित किया है। देवताओं के मिथ्या अभिमान को

भगवान समझ गये। भक्त कल्याणकारी भगवन ने सोचा कि देवताओं के इस अभिमान को दूर कर इनका कल्याण करना होगा। वे उनसे कुछ दूर एक दिव्य यक्षरूप में प्रकट हो गये देवता आश्चर्य चकित होकर उस अत्यन्त अद्‌भुत विशाल रूप को देखकर विचार करने लगे कि यह दिव्य यक्ष कौन है? पर वे उसे पहिचान न सके। उन इन्द्रादि देवताओं ने अग्निदेव से कहा कि आप परम तेजस्वी हैं वेदार्थ के ज्ञाता तथा समस्त जात पदार्थों का ज्ञान रखने वाले हैं इसी से आपका नाम जातवेदा है। अतः हे जातवेदा! आप जाकर इस यक्ष का पूरा पता लगाइये कि ये कौन है। अग्नि देव को अपनी बुद्धि-शक्ति का गर्व था अतः उन्होंने कहा अच्छी बात है अभी पता लगाता हूं।'' अग्नि देवता ने सोचा इसमें कौन सी बड़ी बात है, इसलिए वे तुरन्त यक्ष के समीप जा पहुँचे। उन्हें अपने समीप खड़ा देख यक्ष ने पूछा आपःकौन हैं? (क : असि इति) अग्नि ने सोचा मेरे तेज पुज्ज स्वरूप को सभी पहिचानते हैं, इसने कैसे नहीं जाना? उन्होंने तमक कर उत्तर दिया–''मैं प्रसिद्ध अग्नि हूँ (अहम् वै अग्नि अस्मि इति) मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम जातवेदा है। अग्नि की गर्वोक्ति सुनकर ब्रह्म ने अनजान की भाँति कहा–''अच्छा! आप अग्नि देवता है और जात वेदा सब का ज्ञान रखने वाले भी आप ही हैं?'' बड़ी अच्छी बात हैं, पर यह तो बताइये कि आप में क्या शक्ति है। (त्वयि किं वीर्यम) आप क्या कर सकते हैं? इस पर अग्नि देव ने पुनः सगर्व उत्तर दिया–''अपीदं सर्वमाददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति''। (केन उप. 315)

अर्थात् यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वी में यह जो कुछ भी है इस सबको जलाकर भस्म कर दूँ।'' अग्निदेव की इस गर्वोक्ति को सुनकर सबको सत्ता शक्ति देने वाले यक्षरूपी-ब्रह्म ने उनके आगे एक सूखा तिनका डालकर कहा–''आप तो सभी को जला सकते हैं तनिक सा बल लगाकर इस सूखे तिनके को (तृण) को जला दीजिये''।

अग्नि देव ने इसे अपमान समझा, वे सहज ही उस तृण के पास पहुँचे और उसे जलाना चाहा, जब नहीं जला तव उन्होंने उसे जलाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। पर उसको तनिक भी आंच न लगी वह तिनका जलता कैरो? अग्नि में जो अग्नित्व है–दाहिका शक्ति है वह तो उस शक्तिमान, शक्ति के मूल भण्डार परमात्मा से ही प्राप्त है। यदि वे उस शक्ति स्त्रोत को रोक दें तो फिर शक्ति कहाँ से आएगी। यह सब उसी अलख की झलक मात्र है। अग्नि देव इस सत्य को न समझकर ही डींगें हाँक रहे थे। पर जब उस शक्तिवान् ब्रह्म ने अपनी दी हुई शक्ति को रोक लिया तो उनसे एक छोटा सूखा तृण भी नहीं जला। उनका सिर लज्जा से झुक गया वे हत और हतप्रभ होकर चुपचाप देवताओं के पास लौट आये आकर बोले कि –''मैं तो भली-भाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है।'' जब अग्नि देव असफल होकर लौट आये, तो देवताओं ने इस कार्य के लिए अप्रतिम शक्ति वायु देव को चुना। उनसे कहा कि वायुदेव। आप जाकर इस यक्ष का पूरा पता लगाईये। वायुदेव को भी अपनी बुद्धि शक्ति का गर्व था उन्होंने कहा–''अच्छी बात है, अभी पता

लगाता हूँ।'' वायु तुरंत उसके समीप दौड़ गये। उस यक्ष ने पूर्ववत उनसे वही प्रश्न किये। तुम कौन हो? वायुदेव ने उत्तर दिया ''मैं प्रसिद्ध वायुदेव हूँ, और मैं ही ''मातरिश्वा'' के नाम से प्रसिद्ध हूँ।'' तब यक्ष ने उससे कहा कि उक्त नाम वाले आप में क्या सामर्थ्य है। इस पर वायुदेव ने कहा–''यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है इस सबको आकाश में उड़ा दूं।'' उस यक्ष ने उससे कहा कि उक्त नाम वाले आप में क्या सामर्थ्य है? इस पर वायुदेव ने कहा–''यदि मैं चाहूँ तो इस पृत्वी पर जो कुछ भी है इस सब को आकाश में उड़ा दूँ।'' उस यक्ष ने एक तिनका रखते हुए कहा कि इस तिनके को उड़ा दो। वायुदेव ने अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी लेकिन उस तिनके को नहीं उड़ा सके क्योंकि वायुदेव को प्रदत्त अपनी शक्ति उस परब्रह्म ने खींच ली। वायु देव लज्जित होकर लौट आया और देवताओं से बोला–''कि यह दिव्य यक्ष कौन है? मैं पूरी तरह से नहीं जान सका।'' इसके वाद देवताओं ने इन्द्रदेव से कहा कि ''हेमघवन्! अग्नि और वायु जैसे अप्रतिम शक्ति एवं बुद्धि सम्पन्न देवता भी इस यक्ष का पता नहीं लगा सके है। अतः अव आप जाकर पता लगायें कि यह दिव्य यक्ष कौन है। इन्द्र बहुत अच्छा कहकर उसके पास पहुँचे भी न थे कि वह यक्ष अर्न्तध्यान हो गया। इन्द्र में सभी देवगणों से अधिक अभिमान था अतः उस यक्ष-रूपी परब्रह्म ने उससे बात तक नहीं की, परन्तु इस एक दोष के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार से इन्द्र अधिकारी थे। अतः उन्हें ब्रह्म तत्व का ज्ञान कराना आवश्यक समझ कर उसी व्यवस्था के लिए स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये।

यक्ष के अन्तर्धान होने के पश्चात् इन्द्रदेव वहीं खड़े रहे। अग्नि और वायु की भाँति वहाँ से लौटे नहीं इतने में ही उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष था, उसी स्थान पर अत्यन्त शोभामयी हिमाचल कुमारी उमा देवी प्रकट हो गई है। इन्द्र उनके पास पहुँचे। इन्द्र पर कृपा करके करुणामय परब्रह्म ने ही उमा रूपा साक्षात् ब्रह्म-विद्या को प्रकट किया था। इन्द्र ने भक्तिपूर्वक कहा ''भगवती! आप सर्वशिरोमणि ईश्वर शंकर की स्वरूपा शक्ति हो। अतः आप कृपा करके बतलायें कि यह दिव्य यक्ष जो दर्शन देकर छुप गया, वस्तुतः कौन है और किस हेतु यहाँ प्रकट हुआ था?''

उमा देवी ने कहा–''देवराज! जिसको तुमने देखा वे स्वयं परब्रह्म थे जिनकी शक्ति से आप लोगों ने असुरों पर विजय प्राप्त की है, वस्तुतः यह विजय तुम्हारी नहीं, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान की है। तुमने उनकी विजय को अपनी विजय मानकर, तथा उनकी महिमा को अपनी महिमा मान लिया है यह तुम्हारा मिथ्या अभिमान है। वे परमात्मा ही तुम्हारे अभिमान को पूर्ण करने के लिए यहाँ यक्ष रूप से प्रकट हुये थे। अतः तुम अपनी स्वतंत्र शक्ति के सारे अभिमान का त्याग करके जिन ब्रह्म की महिमा से महिमान्वित और शक्तिमान् बने हो उन्हीं की महिमा समझो। संसार में जिस किसी में जो कुछ भी शक्ति सामर्थ्य एवं योग्यता दिखायी पड़ रही है उसी अलखपुरुषमूर्ति'' को झलक मात्र है। अतः यक्ष के रूप में स्वयं परब्रह्म पुरुषोत्म आप लोगों को शिक्षा देने हेतु प्रकट हुये थे। समस्त देवों में तीनों देव अग्नि, वायु

एवं इन्द्रदेव ही अन्य देवों की अपेक्षा श्रेष्ठ माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने ही उन अत्यन्त प्रिय एवं समीपस्थ परमेश्वर को (दर्शन द्वारा) स्पर्श किया है उन्होंने ने ही ब्रह्म को सबसे पहले जाना है कि ये ब्रह्म है। अर्जित वायु की अपेक्षा इन्द्र को श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि उन्होंने ब्रह्म के वास्तविक रहस्य को सबसे पहले ब्रह्मविद्या'' रूपा उमादेवी से सुना और समझा। उपर्युक्त आख्यायिका से यह स्पष्ट होता है कि संसार में प्राणी पदार्थों में जो भी गुण और योग्यता है वह वस्तुतः उस प्राणी, पदार्थ को न होकर उसी अलखपुरुषमूर्ति की एक झलक मात्रा है। हमें अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं योग्यता को अपनी न सझते हुये उसे भगवान की ही देन मानना चाहिए। हमारे शरीर में और हमारी बुद्धि मन में जो कुछ देखने, सुनने विचार करने तथा विभिन्न प्रकार के क्रिया कलापों की शक्ति है वह हमारी नहीं उसी शक्तिमान की एक झलक मात्र है। जब इस शरीर से, वह शक्तिमान, जो अलखपुरुष के रूप में संसार में व्याप्त है, अपनी दी हुयी शक्ति खींच लेता है तो फिर यह जड़, मृतदे स्वरूप पृथ्वी पर पड़ा रहता है, आँखें खुली रहकर भी देख नहीं सकती, कान सुन नहीं सकते, हाथ, पैर हिल-डुल नहीं सकते क्योंकि इन इन्द्रियों, मन, एवं बुद्धि में जो क्रियाशीलता, मननशीलता एवं विचार करने की शक्ति है वह इन अवयवों की न होकर वस्तुतः उसी की शक्ति के एक अंश की झलक मात्र है। कैसे विद्युत के समस्त उपकरण उसी की शक्ति से अपना-अपना कार्य कर सकने में समर्थ्य होते हैं, ठीक उसी प्रकार संसार में सर्वत्र उसी की शक्ति से सारा कार्य होता है। कूलर ठण्डक दे रहा है, हीटर गमीं दे रहा है, रेडियो, टीवी, शब्द एवं चित्रों का प्रदर्शन कर रहे हैं, रेल का इंजन लाखों टन वजन को लेकर द्रुतगति से दौड़ता है, रात्रि में भी दिन जैसा प्रकाश हो रहा है, यह सब देखने से लगता है कि इन उपकरणों को ही शक्ति सामर्थ्य है। लेकिन विद्युत के चले जाने पर ये मात्र लोहपिण्ड वात् धरे के धरे रह जाते हैं तथा हमारा ध्यान उस शक्ति एवं उसके मालिक शक्तिवान की ओर जाता है उसी, की झलकमात्र से ये सब यंत्र क्रियाशील हैं।

श्री गुरुदेव बाबा जिस अलख पुरुष मूर्ति के ध्यान में भजन में डूबे रहा करते थे ये उसी अलख की झलक का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। संसार के प्रत्येक कण में उसी अलख पुरुष की शक्ति की झलक दिखलाई पड़ती है, जिसे देख कर उसकी शक्ति सामर्थ्य का अनुमान लगाना भी कठिन है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक क्षण उसी उसी अलख पुरुष की शक्ति की झलक दिखलाई पड़ रही है। संसार की समस्त जड़-चेतना सृष्टि में विचार द्वारा उसकी शक्ति के दर्शन किये जा सकते हैं। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि जड़ चेतना चराचरात्मक संसार के रूप में वह अलख पुरुष स्वयं ही स्थित है तथा इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह उसी की माया से है। वह परमात्मा इस जड़ शरीर को चैतन्य किये हुये है और चाहे तो इस चैतन्य शरीर को एक क्षण में जड़ बना दे, यह उसी की शक्ति का खेल मात्र है

दोहा- *जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करहि चैतन्य।*

अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहि जीव ते धन्य॥ (मानस. उ. 119 ख)

संसार में सर्वत्र उसी की शक्ति से सब कुछ हो रहा है हमें अपनी अन्दर की किसी भी शक्ति सामर्थ्य को अपनी मानकर व्यर्थ अहंकार नहीं करना चाहिये। हमारा शरीर जड़ पदार्थों का संघात् मात्र है। इसमें जो भी शक्ति है वह उसी ब्रह्म से आगत है। पत्ता एवं फूल तक उसी की सत्ता से ही हिलते एवं खिलते हैं।

तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगल मूल।

पत्ता तक हिलता नहीं खिलै न कोई फूल॥

हमारी इस दृश्य और अनात्मा माने जाने वाली देह में–जिसमें इस अविनाशी जीव का निवास है जितनी भी क्रियाएँ हो रही हैं। सब उन्हीं शक्तिमान की शक्ति के एक अंश मात्र (झलक) से ही हो रही हैं। अब हम इस देह (जिसमें हमारा विश्वास है) का संक्षिप्त विवरण तथा उसमें ब्रह्म के अंश जीव की स्थिति का वर्णन साधकों एवं पाठकों की सामान्य जानकारी हेतु प्रस्तुत करते हैं।

इस संसार में कुल चौरासी लाख योनियाँ हैं, ऐसा शास्त्र पुराण कहते हैं।

"स्थावरं विंशतिर्लक्षं जलजं नवलक्षकम्।

कूर्मश्च रुद्रलक्षं च दसलक्षं च पक्षिणाम्॥

त्रिंशत्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं च वानराः।

ततो मनुष्यता प्राप्तिस्ततः कर्माणि साधयेत॥

अर्थात् इस जगत में बीस लाख वृक्षादिक नो लाख जलचर, ग्यारह लाख (उभयचर) कछुएँ, दस लाख पक्षीगण तीस लाख पशु (चौपाये) तथा चार लाख वानर इस प्रकार कुल चौरासी लाख पशु योनियाँ हैं। ये सब भोग भोगने के माध्यम (शरीर) हैं जिनमें मनुष्य योनी में किये गये शुभाशुभ कर्मों का भोग जीव भोगता है। ये चौरासी लाख तो भूलोक की ही योनियाँ हैं, स्वर्ग–नरकादि अन्य लोकों की योनियां इनसे अलग हैं। इन समस्त योनियों में शरीर धारण करके यह जीवन अनेक कर्मों का भोग भोगता है। इन योनियों में कर्म करने का अधिकार और अवसर इस जीवन को नहीं है। मनुष्य योनि इन उपर्युक्त योनियों के वाद इस जीवन को प्राप्त होती है। मनुष्य योनि (शरीर) रो ही अन्य योनियों में भोग भोगने के लिए यह जीव जाता है। मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ योनि कहा गया है। यही क्योंकि इसी से यह अविनाशी जीवन मोक्ष तक प्राप्त करता है। यहीं से वन्धन होता है और इसी मनुष्य शरीर से साधन करके जीवन मोक्ष (आवगमन, जन्म मरण से मुक्ति) प्राप्त कर सकता है–

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।

दोहा *सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।*

कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाई॥ (मानस. उ. 43)

अर्थात्–मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है। सद् शास्त्रों में कहा गया है कि यह मनुष्य देह देवताओं को भी दुर्लभ है। क्योंकि यह साधन योनि है देव योनि में साधन नहीं हो सकता वह तो मात्र भोग योनि ही है, जिसमें मनुष्य (जीव) अपने सुकृतों का भोग भोगता है देवताओं को भी यह अभिलाषा रहती है कि यदि उन्हें मनुष्य योनि मिल जाती तो साधना के द्वारा अपने जन्म मरण के वन्धन को काट कर मुक्त हो जाते। क्योंकि मनुष्य योनि ही मोक्ष का खुला द्वार है।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।

ज्ञान विराग सकल गुन देनी॥

अर्थात्-यह मनुष्य योनि अशुभ कर्म करने पर नर्कों को, शुभ कर्मों से स्वर्ग और निष्काम कर्म (भगवत् प्रीत्यार्थ) करने पर मोक्ष को प्रदान करने में सहायक है। जीवन को इसी योनि में ज्ञान वैराग्यादि शुभ गुणों की प्राप्ति होकर परम शान्ति प्राप्त होती है। ऐसी सुर दुर्लभ साधन धाम मनुष्य योनि को पाकर भी जिसने अपनी कल्याण नहीं किया वह निश्चिय ही दुःख भोगता है और माथा पीट-पीट कर ईश्वर और कर्म को झूठा दोषारोपण करता है। इस मनुष्य योनि का फल विषय भोग नहीं क्योंकि भोग भोगने के लिए तो भगवान ने दूसरी योनियों को बनाया है। यह मनुष्य कर्म करता भी है। अतः यह साधना करने के लिए ही है। भगवान श्री राम ने अपनी समस्त प्रजा के लिये एक हितकारी उपदेश में कहा है

एहितन कर फल विषय न भाई।

स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखःदाई॥

हे भाइयो! यह मनुष्य शरीर आपको विषय भोगने के लिए नहीं मिला है, इस संसार के विषय भोग तो क्या स्वर्ग के भोग भी सीमित (क्षणिक) तथा दुख दायी ही होते हैं क्योंकि पूण्य समाप्त हो जाने के पश्चात् स्वर्ग से वापिस इसी मृत्यु लोक में आना पड़ता है।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

अतः मनुष्य शरीर पाकर उसे विषय भोगों में लगाना समझदारी की बात नहीं घाटे का सौदा है, मूर्खता है–

नर तन पाइ विषय मन देही। पलटि सुषा ते सठ विलषेही।

इस प्रकार संतों-शास्त्रों एवं स्वयं भगवान ने इस मनुष्य योनि के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण नर देह की जावकारी हमें होना आवश्यक है। जिस घर में हम रहते हैं उसकी जानकारी हमें होती है लेकिन जिस मानव देह में हमारा (जीव) का निवास है इसकी जानकारी हमें न हो यह बात ठीक नहीं साधक को साधना से पूर्व इस देह का ज्ञान हो तो उसकी साधना निर्विध्न सम्पन्न होती है। क्योंकि इसमें कुछ आगन्तुक दोषों से भी हमारा परिचय हो जाता है। काम-क्रोध मोह आदि जो इस देह में दिखाई पड़ते हैं और जीव उन्हें अपने अन्दर मानकर उनसे प्रभावित हो जाता है, वस्तुतः इनसे जीव का कोई सम्बन्ध नहीं, ये इस जड़ देह के ही विकार मात्र हैं। अतः दृश्य एवं जड़ देह एवं स्वयं का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। जो इस जीव को भव वन्धन, देह बन्धन और अज्ञान के अन्धकार से मुक्त कर सकता है। हमारे गुरुदेव बाबा मनोहर दास जी महाराज ने अपने आत्म निरीक्षण द्वारा अपने को देह एवं गेह से अलग मान लिया था वे वास्तव में विदेह थे तथा इसी जीवन में उन्होंने वास्तविक मुक्ति का अनुभव कर लिया था। वे जीवन मुक्त महात्मा थे। वे संसार को समझाया करते थे कि यह शरीर नाशवान है। जैसे 'काच का शीशा एक जरा धक्के से टूट जाता उसी प्रकार इस देह का कोई पता नहीं कब समाप्त हो जाये अतः इससे साधना करके उस परमतत्व को, परम शान्ति को प्राप्त करना ही मानव देह धारण करने का सही उद्देश्य है। अपने पसंद के एक छंन्द के माध्यम से वे हमें उद्धार का मार्ग दिखलाते हुये कहा करते थे -

ऐरे मन मेरे चल तीरथ करें, किये पातक, घनेरे,

तेरा तन भी छूट जायेगा।

चल काशी अविनाशी ते मिलादऊँ तोय,

चौरासी का फन्दा तुरत टूट जायेगा॥

आवेंगे जम के दूत पकड़ ले जाय तुझे मजबूत,

लुटत लुटत ऐरे बन्दे! तू भी लुट जावेगा।

वहती गंगा हाथ पग क्यों न पखार लेत,

काच का सा शीशा, फटा-फट फूट्ट जायेगा॥

इस पद के माध्यम से मुरुदेव यह सन्देश दे गये कि ऐ मनुष्यों गत दिवस पाप कर्म में प्रवृत्त होकर क्यों अपना अहित कर रहे हो, कुछ साधना करो, यह मनुष्य देह बार-बार नहीं मिलता यह दुर्लभ किन्तु नशवर एवं क्षणभंगुर है। एक क्षण व्यर्थ खोये बिना इसके द्वारा साधना करके अपने अविनाशी स्वरूप का बोध कर लो और जन्म-मरण से मुक्त हो जाओ ज्ञान की गंगा वह रही है, वह तुम्हारे

पास ही बहती है इसमें अपने हाथ पैर पखार लो अर्थात् तत्व का वोध कर आत्म ज्ञान प्राप्त कर लो। अगर ऐसा नहीं करोगे तो पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप यम के दूत तुम्हें नरकों में ले जाकर यातनायें देंगे तुम लुट जाओगे मनुष्य शरीर फिर नहीं मिलना। अतः साधना करो और अविनाशी से मिल जाओ इसी में तुम्हारे इस नर देह की सफलता है।

(तीन देह) शरीरों का सामान्य परिचय तथा जीव (ब्रह्म की उसमें झलक)

देह तीन प्रकार की होती है। (1) स्थूल देह (2) सूक्ष्म देह एवं (3) कारणदेह। इन तीनों का क्रमसः संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

स्थूलदेह–स्थूल सूक्ष्म एवं कारण तीनों ही शरीरों को दृश्य एवं अनात्म (जड़) माना गया है। स्थूल देह का निर्माण पंचीकृत पंचमाहभूतों के पच्चीस तत्वों से हुआ है। यह जीवों को सुख दुःख के अनुभव कराने के लिए साधन (घर) है।

पंचमहाभूत–आकाश वायु, तेज (अग्नि) जल एवं पृथ्वी इन पाँचों के गुण शब्द, स्पर्श रूप, रस एवं गन्द उपर्युक्त पाँचों महाभूतों के पाँच-पाँच तत्व हैं–

आकाश के पाँच तत्व–काम, क्रोध, शोक, मोह, भय

वायु के पाँच तत्व–चलन, वलन, (बल खाना) धावन, एवं प्रसारण

अग्नि के पाँच तत्व–क्षुदा, तृष्णा, आलस्य, निन्द्रा, कांन्ति

जल के तत्व–शुक्र (वीर्य) रुधिर, लार, नाड़ी, त्वचा, एवं रोम

स्थूल देह के मुख्य धर्म–नाम, जाति, आश्रम, वर्ण, सम्वन्ध परिमाण (लम्बा चौड़ा ठिगना) जन्म एवं मरण जब उपर्युक्त पंच महाभूतों का आपस में मिलकर पंचीकरण हो जाता है तो स्थूलदेह का निर्माण होता है। उल्लेखर्नाय है कि पंच महाभूतों के तमोगुण भाग से ही स्थूल देह बनता है। पंच महाभूतों के पंच्चीकरण को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। पाँच मित्र हैं पाँचों पर एक एक फल है, उन्होंने अपने-अपने फलों के पाँच टुकड़े कर लिए प्रत्येक ने अपने फल का एक टुकड़ा स्वयं रखकर शेष चारों अपने चार मित्रों को दे दिये। इस प्रकार पाँचों के पास एक भाग अपना तथा चार भाग अपने मित्रों के फलों के हुये। इस प्रकार प्रत्येक के पास अपने मित्र का तत्व आकार प्रत्येक पर पाँच-पाँच तत्व हो गये यह सब आपस में मिलकर पच्चीस तत्व हो जाते हैं। इसी को पंचीकरण की क्रिया कहते हैं यह स्थूल शरीर बिना पंचभूतों के पंचभूतों के पंच्चीकरण के नहीं बनता। यह स्थूल देह जड़ एवं दृश्य है। जन्मना, बुद्धि को प्राप्त होना तथा नाश को प्राप्त होकर मर जाना इसके सहज धर्म हैं। नाम जाति गृहस्थादि आश्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण पिता पुत्र माता भाई आदि इसी स्थूल शसीर के ही धर्म हैं जन्म एवं मरण भी इसी का

होता है। ये धर्म सूक्ष्म एवं कारण देह में नहीं होते सिर्फ स्थूल के धर्म हैं। अज्ञानी जीव इसी को प्रायः अपना स्वरूप मान कर सुखी दुःखी अनुभव करता रहता है। इसमें जो कुछ है वह मात्र पंचभूत और इसकी पच्चीस प्रकृतियाँ ही हैं। अविनाशी जीव का इससे किंचित मात्र संम्बन्ध नहीं है, लेकिन ये बात उसे तत्वबोध के उपरांत ही मालूम होती है कि स्थूल शरीर मैं नहीं मेरा नहीं, पंच भूतों के तमोगुण भांग की रचना मात्र है।

सूक्ष्म देह

अपंच्चीकृत पंचमहाभूतों के सत्रह तत्वों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण, मन एवं बुद्धि) का यह सूक्ष्म देह है, जो जीवों के भोग भोगने का साधन शास्त्रों एवं संतों द्वारा प्रमाणित है। अपंच्चीकृत पंच महाभूतों के सत्रह तत्व जिनसे इस लिंग शरीर का निर्माण होता है, निम्नलिखित है–

पांच ज्ञानेन्द्रियों-

शोत, त्वचा, चक्षु जिव्हा एवं नाक (घ्रांण) ज्ञानेन्द्रियों की रचना पंच महाभूतों के सत्व गुण से होती है। इनके माध्यम से जीवों को घांच विषयों का ज्ञान एवं भोग क्रिया सम्भव होती हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध, आदि विषयों का निर्माण पंचमहाभूतों के तमोगुण भाग से होता है।

पांच कर्मेन्द्रियां–

वाक (वाणी) हाथ, पैर, उपस्थ एवं गुदा इनके द्वारा बोलना चलना, लेना देना रति भोग एवं मलत्याग आदि क्रियाएं सम्भव होती हैं। कर्मेन्द्रियों का निर्माण पंचमहाभूतों के रजोगुण भाग से होता है।

पांच प्राण–

प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यायाम, इनके माध्यम से स्वांसप्रश्वांस, मलत्याग, अन्नरस, को शरीर से सर्वत्र पहुँचाना, स्वप्न आना छींक आना, आँखों का खुलना मिंचना, तथा शरीर के प्रत्येक अंग का हिलना-डुलना, जोड़ों का हिलना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य संचालित होते हैं। पांचों प्राणों का निर्माण पंचमहाभूतों के ''रजोगुण भाग से होता है।

मन–

मनुष्य के अन्तःकरण में संकल्प विकल्प रूप वृत्ति को ही मन कहते हैं चित्त का समावेश भी प्रायः मन में ही मान लिया जाता है। चित्त का कार्य मन के संकल्पानुसार चित्रों का निर्माण कर उसे अन्तःकरण रूपी पर्दे पर दिखाकर जीव को भटकाना मन का निर्माण पंचभूतों के सत्वगुण भाग से होता है। कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों में क्रियाशील बनाना तथा अपने-अपने विषयों में इन्द्रियों को प्रवृत्त करना

बुद्धि–अन्तःकरण की निश्चय रूपवृति को बुद्धि कहते हैं। जिस प्रकार मन में चित्त का अन्तर्भाव मान लिया जाता है, उसी प्रकार अहंकार का बुद्धि में अन्तर्भाव मान लिया जाता है। इसकी रचना भी पंच महाभूतों के सत्व भाग से ही होती है। मन के द्वारा प्रस्तुत संकल्पों पर विचार कर निश्चय प्रदान कर इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण शरीर को कर्म में प्रवृत्त करने का महत्त्वपूर्ण कार्य बुद्धि का ही है। उल्लेखनीय है कि कर्मेन्द्रियां एवं ज्ञानेन्द्रिया ये बाह्य करण हैं तथा मन बुद्धि चित्त एवं अहंकार ये चारों अन्तःकरण कहलाते हैं। पंच महाभूतों के सत्वांश से ज्ञानेन्द्रियां, तथा अन्तः करण का निर्माण रजोगुणांश से कर्मेन्द्रियाँ एवं पांच प्राणों का निर्माण तथा पंचमहाभूतों के ही तमो गुणांश से पांच विषयों की रचना होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त सत्रह तत्वों से जो सूक्ष्म शरीर बनता है वह भी दृश्य एवं जड़ होतां है। जीव का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं लेकिन अविद्यावश उसने ही इसे अपना स्वप्न मान लिया है। उसके द्वारा किये कर्मो को वह अपने ही द्वारा कृत मान उनका भोक्ता भी बन गया है। तत्व बोध (आत्म बोध) के पश्चात् इस देह का रहस्य समझ में आता है कि जिसे वह अपना स्वरूप समझता था वह तो वस्तुतः पंचमह्मभूतों के सत्रह तत्वों की रचना है, इसी को लिंग शरीर कहते हैं!

सूक्ष्म शरीर के मुख्य धर्म–लिंग देह के प्रमुख धर्म है पूण्य पाप का कर्तापन और उसके फल सुखदुखादि का भोक्तापन इस लोके से परलोक में कर्मोनुसार गमनागमन यह लिंग देह (सूक्ष्म देह) ही करता है। वैराग्य समदम आदि सात्विक वृत्तियाँ, राग द्वेष हर्षादि राजसी वृत्तियाँ तथा क्षुदा तृषा अन्धपना मन्दपना पदुपना इत्यादि इसी लिंग देह के प्रमुख धर्म हैं। ये सात्विकी रजोगुणी एवं तमोगुणी वृतियाँ एवं उनके कार्य भी इसी सूक्ष्म देह के ही धर्म हैं। जीव ने भमवश उनको अपने में आरोपित कर रखा है। अतः सूक्ष्म देह और उसकी वृत्तियाँ में नहीं, ऐसा समझने से इस देह एवं उसके विकारों से जीवनयुक्त होकर परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

कारण देह

पुरुष सुषुप्ति (गहरी निन्द्रा) से जागकर यह अनुभव करता है कि आज बड़ी गहरी नींद आई । मैंने कुछ भी नहीं जाना, नहीं जानता हूँ। ऐसे व्यवहार का हेतु आवरण विक्षेप शक्ति वाला अनादि भाव रूप अथवा स्थूल सूक्ष्म देहों का हेतू रूप अज्ञान कारण देह कहलाता है। यह भी स्थूल शरीरों की भाँति जड़ (दृश्य) है। यह स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीरों का कारण है। अतः इसे कारण देह (अज्ञान रूप) कहते हैं।

सुषृप्ति से जागकर जब यह पुरुष (जीव) कहता है कि आज बड़ी गहरी नींद आई कुछ भी नहीं जाना (अज्ञान) ऐसा अज्ञान अनुभव रूप नहीं है वरन् सुषुप्ति काल में अनुभव किये अज्ञान की स्मृतिमात्रा है। इस स्मृति का विषय सुतृप्ति काल का अज्ञान है यह अज्ञान ही कारण देह है। जागृत अवस्था में मैं ब्रह्म को नहीं जानता। मैं स्वयं को नहीं जानता इत्यादि अनुभव का विषय अज्ञान है। स्वप्न का

कारण भी निन्द्रा रूप अज्ञान ही है। उल्लेखनीय है कि जागृत अवस्था में स्थूल देह का व्यापार चौदह त्रिपुटियों से चलता है। जीव दोनों नेत्रों के पीछे स्थित होकर समस्त व्यवहार का कर्ता एवं भोक्ता होता है तथा स्वपना वस्था में जीव सुक्ष्म शरीर के माध्यम से कण्ठ स्थान में स्थित हिता नामक नाड़ी में स्थित रहकर सत्रह तत्वों के लिंग शरीर से सूक्ष्म भोग अपनी ज्ञान-शक्ति से भोगता है तथा सुषुप्ति अवस्था में जीव हृदय स्थान में पुरोतत नामक नाडी में, अविद्या ही उसके लिए सुषुप्ति रचकर तमोगुणी आनंन्द का भोग प्रदान करती है अब हम तीनों अवस्थाओं आदि का विवरण प्रस्तुत करते हैं यह जानकारी साधना हेतु आवश्यक है क्योंकि जीव को जागृत स्वप्न एवं संषुप्ति अवस्था में क्रम से आना-जाना पड़ता है।

तीन अवस्थाएं एवं उनमें ''जीव की झलक''

प्रत्येक प्राणी मात्र को दिन रात किसी न किसी अवस्था में रहना पड़ता है दिन में व्यवहार काल में जागृत अवस्था में तथा सुषुप्ति से पूर्व कुछ समय स्वप्नावस्था में तदोपरांत जागृत के व्यवहार से थक कर उसे सुषुप्ति रूपी माँ की गोद में विश्राम करना होता है। संक्षेप में तीन अवस्थाओं का विवरण निम्न प्रकार है–

जागृत अवस्था

जिस अवस्था में चौदह त्रिपुटी द्वारा व्यवहार होता है वह स्पष्ट प्रतीति वाली जागृत अवस्था होती है। जिन चौदह त्रिपुटियों से इस अवस्था में व्यवहार होता है, वे चौदह त्रिपुटियाँ हैं–

पाँच ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटियाँ

इन्द्रिय (अध्यात्म)	देवता (अधिदेव)	विषय (अधिभूत)
(1) श्रोत	दिशा	शब्द
(2) त्वचा	वायु	स्पर्श
(3) चक्षु	सूर्य	रूप
(4) जिह्वा	वरूण	रस
(5) घ्रांण	अश्रनीकुमार	गन्ध

कमेन्द्रियों की त्रिपुटी

(6) वाक	अग्नि	बचन क्रिया
(7) हस्त	इन्द्र	लेन-देन क्रिया
(8) पाद	वामन	चलना

(9) उपस्थ	प्रजापति	रति भोग
(10) गुदा	यमराज	मल त्याग

अन्तः करण की त्रिपुटी

(11) मन	चन्द्रमा	संकल्प विकल्प
(12) बुद्धि	ब्रह्मा	निश्चय (विचार)
(13) चित्त	वासुदेव	चिन्तन
(14) अहंकार	रूद्र	अहंपना (अस्ति)

वे चौदह त्रिपुटियाँ जागृत अवस्था में जीव के कर्म व व्यवहार एवं भोग व्यवहार में सहायक होती। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त त्रिपुटियों में से एक भी अंग नहीं हो तो उस इन्द्रिय (करण) का व्यवहार नहीं चल सकता। अतः इन्द्रिय उसका देवता तथा विषय की उपस्थिति होने पर ही तत्सम्बन्धी व्यवहार सम्भव होता है। उदाहरण के लिए आँख हो और विषय (दृश्य) हो लेकिन सूर्य (देवता) न हो तो दृश्य व्यवहार क्रिया सम्भव नहीं होगी ठीक इसी प्रकार सभी को समझ लेना चाहिये। राम चरित मानस एवं अन्य पुराण शास्त्रों में भी भगवान के विराट स्वरूप वर्णन में इन देवताओं और करण त्रिपुटियों का संकेत दिया गया है।

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।

मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥ (लंका. 15)

अर्थात्– शिव जिनका अहंकार है ब्रह्मा बुद्धि है चन्द्रमा मन है, और महान (विष्णु) ही चित्त है उन्हीं चराचर रूप भगवान ने मनुष्य रूप में निवास किया है। यहाँ पर उपर्युक्त तथ्यों के प्रदर्शन का यही ध्येय है कि वह "अलखपुरुषमूर्ति जो चराचर में व्याप्त है इस मनुष्य देह में भी उसी की झलक स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रही है। पाताल उनके चरण हैं ब्रह्म लोक सिर है, अन्य बीच के लोकों की स्थिति जिनके भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौहों का चलना) सूर्य नेत्र हैं। बादलों का समूह उनके बाल हैं आश्विनी कुमार जिनकी नासिका है पलकों को खोलना दिन है, पलकों को मींचना रात्रि है, दसों दिशाएं उनके कान हैं इस प्रकार वेदों ने निरूपित किया है। वायु श्वांस है, वेद जिनकी वाणी है। उनका अधर (ओठ) लोभ है, भयानक दाँत यमराज हैं। भगवान की हँसी ही माया है दिक्पाल उनकी भुजाएँ हैं अग्नि मुख (वाणीं) है वरूण जीभ (जिह्वा) है उत्पति पालन एवं संहार उनकी क्रियाएँ हैं, अठारह प्रकार की असंख्य वन स्मृतियाँ भगवान की रोमावलि हैं। पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ उनकी नसों का जाल है। समुद्र पेट है, और नरक भगवान की नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार वे प्रभु विश्वमय हैं। राम चरित मानस लंका काण्ड के दोहे संख्या 14 से 15 तक भगवान के विश्वमय का

वर्णन पटनीय हैं, मनुष्य शरीर उस विराट ब्रह्माण्ड का ही छोटा रूप है जो विराट ब्रह्माण्ड में है सोई इस पिण्ड में भी हैं। अतः उसी अलख पुरुष की झलक दर्शनार्थ उपर्युक्त विवरण दिया गया है। अतः जागृत अवस्थाओं में उपर्युक्त चौदहों त्रिपुटियों से व्यवहार होता है इनमें देवताओं के रूप में उसी अलख पुरुष की सत्ता की झलक दिखलाई देती है, बिना उनके इस शरीर का न तो अस्तित्व है और न उसके द्वारा व्यवहार सम्मव है।

जागृत अवस्था में जीव का नाम

स्थान नेत्रों में, वाचा बैखरी भोग स्थूल, शक्ति, क्रिया, और गुण रजोगुण होता है। जागृत अवस्था में जीव का नाम ''विश्व'' होता है

स्वप्नावस्था

इस जन्म को अथवा पूर्व जन्म की जागृत अवस्था में देखें सुने और भोगे हुए भोगों पदार्थों एवं घटनाओं के संस्कार कंठ में रहने वाली बाल के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म आकार वाली ''हिता'' नामक नाड़ी में संचित रहते हैं। उन संस्कारों से ही निद्राकाल में प्रतिभासिक सत्ता वाले पाँच विषय आदि पदार्थ और उनके ज्ञान उत्पन्न होते हैं। इन दोनों से जिसमें व्यवहार होता है वह सूक्ष्म शरीर की क्रिया व्यवहार स्थली स्वपन्नावस्था है। जीव प्रारब्धवश जागृत अवस्था में दसों इन्द्रियों तथा अन्तःकरण मन बुद्धि एवं चिन्त अंहकार के द्वारा अपने क्रिया व्यापार में प्रवृत होता है तथा स्थूल भोग रूप आनंद (विषयानंद) को प्राप्त करता है, तत्पश्चात् श्रम को प्राप्त कर उस स्थूल क्रिया व्यापार से विरक्त होकर स्वप्नावस्था को प्राप्त होता है। स्वप्नावस्था में राजा रूपी जीव अपने दलवल को एक सीमा तक छोड़कर स्वप्नावस्था रूपी चित्र शाला में अपने मंत्री मन और अपनी प्रिया रानी (बुद्धि) को साथ लेकर मन को विविध सूक्ष्म भोग रूप सामग्री एवं विविध सृष्टि हेतु प्रेरित करता है। मन सूक्ष्म इन्द्रियों के सहयोग से विविध प्रकार के सुख दुःख कारक विविध दृश्यों एवं भोगों की रचना करता है। ये भोग एवं दृश्य जागृत अवस्था से प्राप्त भोगों से भिन्न होते हैं। जिन मनोकामनाओं की पूर्ति जीव जागृत अवस्था में नहीं कर सकता है उनकी प्राप्ति उसे इस स्वप्नावस्ता में हो जाया करती है, यहाँ के भोग सूक्ष्म और जागृत अवस्था से भिन्नता लिए होते हैं। स्वप्नावस्था में जीवन की स्थिति एवं भोग व्यवहार निम्न प्रकार हैं–

स्थान	वाचा (वाणी)	भोग	शक्ति	गुण	नाम
कण्ठ में	मध्यमा	सूक्ष्म	ज्ञान	सत्वगुण	तैजस

हिता नामक नाड़ी में यह जीव अन्तः करण सहित निवास करता है। अन्तः करण (मन, बुद्धि, चिन्त, अहंकार) स्वप्न रचियता है तथा जीव भोक्ता होता है।

सुषप्ति अवस्था

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है जीव गहरी निद्रा से जाग कर जागृत अवस्था में आता है तो उसे सिर्फ निद्रा सुख की स्मृति मात्र होती है उसे और कुछ पता नहीं रहता वह पूर्ण अज्ञान वाली सुषुप्ति अवस्था है। जीव कारण (अज्ञान रूप) शरीर से इस अवस्था के आनंद का भोग करता है। सुख और अज्ञान का प्रकाश (ज्ञान) साक्षी चेतन रूप अनुभव जिसमें होता है ऐसी बुद्धि को विलयावस्था सुषुप्ति अवस्था कहलाती है। सुषुप्ति अवस्था में जीव का–

स्थान	वाचा (वाणी)	भोग	शक्ति	गुण	नाम
हृदय में	पश्चंन्ति	आनंद	द्रव्य	तमः	प्राज्ञ

स्वप्नावस्था एक जागृतवस्था में ''जीव-के साथ इन्द्रियां, मन, प्राण एवं बुद्धि होती है। लेकिन सुषुप्ति में बुद्धि को भी विलयावस्ता होती है। इसे निम्न व उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

जैसे कोई बालक अपने मित्रों के बुलाने पर उनके साथ खेलने मैदान में जावे। विविध प्रकार के खेलों को खेलने के पश्चात् श्रम (थकावट) को पाकर अपने घर आकर अपनी माँ की गोद में सो जावे। उसी प्रकार कारण शरीर अज्ञान रूपी माता है, उसका बुद्धिरूप बालक प्रारब्धकर्मरूप साथियों के साथ जागृत एवं स्वप्नावस्था रूपी खेल के मैदान में इन्द्रिय व्यवहार रूपी विविध भोगों को भोगने रूपी खेल खेलता है। तत्पश्चात् विक्षेप रूपी श्रम को पाकर सुषुप्ति रूप गृह में अविद्या (अज्ञान) रुपी माता में लीन होकर ब्रह्मानंन्द का अनुभव करता है। पुनः प्रारब्ध रूप कार्यरूपी अपने दोस्तों के बुलाने पर जागृत स्वप्न रूप मैदान में व्यवहार रूपी खेल खेलने चला जाता है। जैसे समुद्र जल से भरा हुआ कोई घट (लिंगदेह) गले में रस्सी (अदृष्टरूपी रस्सी) बाँधकर समुद्र में डुबोया जावे (सुषुप्ति काल में तथा उसके आवन्तर भेद रूप, मरण, मूर्च्छा तथा प्रलयकाल) अर्थात (समष्टि अज्ञान रूप ईश्वर की उपाधिमाया में लीन होता है) तब घट में स्थित जल, समुद्र के जल से एकता को प्राप्त होता (व्यष्टि रूप अज्ञान जीव की उपधि अविद्या, समष्टि अज्ञान से एकता को प्राप्त होता है) तो भी घट रूप उपाधि से भिन्न की भांति अलग भासता है (तो भी लिंग शरीर के संस्कार रूप उपाधि के कारण अलग अस्तित्व वाला दिखाई देता है) फिर रस्सी के खींचने पर घट समुद्र से अलग दिखलाई पड़ता है (अन्तर्यामी की प्रेरणा से या प्रारब्धकर्म की प्रेरणा से पुनः सुषुप्ति को त्याग जागृत व स्वप्नावस्था में अलग से दिखाई पड़ता है) परन्तु जल सहित घड़े का आकाश और समुद्र का आधार आकाश भिन्न नहीं होते (व्यष्टि अज्ञानरूप जल सहित लिंग देह रूपी घट का साक्षी चेतन और समष्टि अज्ञानरूप समुद्र का आधार चिदाकाश (ब्रह्मचेतन) दोनों अलग नहीं होते ये तीनों कालों में एक रस ही हैं। इस

प्रकार साक्षी चेतन रूप जीव एवं चिदाकाश रूप ब्रह्म चेतन दोनों अलग-अलग न होकर दोनों को एकता सिद्ध होती है। उल्लेखनीय है कि प्राणी जब सुषुप्ति रूपी अज्ञान (अविद्या) रूपी महल में प्रवेश कर विश्राम कर रहा होता है तो स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर रूपी रथ की प्राण पहरेदारी करता है, इस देहरूपी रथ के दस घोड़े इन्द्रियाँ हैं तथा बुद्धि सारथी है। ये भी विश्राम को प्राप्त होकर अपने-अपने क्रिया व्यवहार से रहित हो जाते हैं। पुनः प्रारब्धकर्मरूप अदृष्ट की प्रेरणा से नींवरूपी रथो पुनः महल (सुषुप्ति) से बाहर आता है। उसके आते ही दुद्धि रूप सारथी देहरूपी रथ को तैयार कर उसे जागृत स्वप्न रूप क्षेत्र में लेकर आ जाता हैं। इस प्रकार जीव रूप राजा अपने दल बल सहित व्यवहार रूप मैदान में विविध विषयों के भोगों को भोगने व क्रिया व्यापार में संलग्न होता है। थक जाने पर पुनः अपने रथ और सारथी (स्थूलसूक्ष्मदेह युक्त मन बुद्धि तथा इन्द्रियों) को बाहर ही छोड़ सुषुप्ति रूपी महल में अज्ञान (अविद्या) रूपी माता की गोद में विश्राम करता (आनन्द भोगता) है। इस प्रकार हमने देखा कि स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों दोहों में उसी अलख पुरुष (ब्रह्म-चेतन) को ही झलक दिखलाई पड़ती है, विना उसके ये तीनों शरीर जड़ (अक्रिय) एवं चेतनाहीन दिखलाई पड़ते हैं इस अलख की ''झलक'' से ही इन जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं का अस्तित्व है। वस्तुतः ये तीन अवस्थाएं तथा तीन देह, इस जीव की नहीं, जीव इनका साक्षी (दृष्टा) है, जो जिसको जानता है वह उससे न्यारा होता है। अतः हमें यह जानना चाहिये कि जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि तीन अवस्थाएँ एवं स्थूल सूक्ष्म एवं कारण देह मेरे नहीं, मैं नहीं वरन् पंचतत्वों की रचना मात्र जड़ एवं दृश्य है।

''आप'' में ''आप'' की झलक

उपर्युक्त विवरण इस जीव द्वारा अज्ञान से अपने माने जाने वाले तीन दोहों एवं तीन अवस्थानों का है। अब जरा अपने स्वरूप की कुछ बात हो जाये। वैसे तो यह सब कहानी अकथ है, समझते तो बनती है, पर कहने में नहीं आती।

''सुनहु तात यह अकथ कहानी।

समुझत बनइ न जात बखानी॥

ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेत अमल सहज सुख रासी॥

इस चेतन अमल और सहजसुख की राशि जीव एवं उसके अंशी ब्रह्म के भेद को निम्न प्रकार कहा गया।

चैतन्य

चैतन्य दो प्रकार का होता है। (1) सामान्य चैतन्य और विशेष चैतन्य।

सामान्य चैतन्य–(ब्रह्म) जो आकाश की भाँति सर्वत्र परिपूर्ण (व्याप्त) है तथा संसार के समस्त नामों एवं रूपों का आधार (अधिष्ठान) एवं आश्रय है तथा अस्ति (है) भाति (चित, प्रकाशक) तथा प्रिय (आनंद) रूप है एवं निर्विकार है उसे सामान्य चेतन (ब्रह्म) कहते हैं. संसार के समस्त पदार्थों में (1) अस्ति (सत्) भांति (चित), प्रिय (आनन्द) नाम एवं रूप ये पाँच अंश होते हैं उपर्युक्त पांचों ब्रह्म में कल्पित हैं। सामान्य चेतन सबसे अधिक सूक्ष्म एवं व्यापक होता क्योंकि जो, जो कारण हैं वे अपने कार्यों से सूक्ष्म एवं व्यापक होते हैं तथा कार्य अपने कारण की अपेक्षा स्थूल एवं परिच्छिन्न (सीमित) होता है। ब्रह्म सब का कारण है अतः वह सबसे अधिक सूक्ष्म एवं व्यापक (व्याप्त) दूसरे कारण अपने कार्य में सर्वत्र सूक्ष्म रूप से व्याप्त रहते हैं। अतः इस सिद्धान्तानुसार सामान्य चैतन्य (ब्रह्म) अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक है। उदाहरण के लिए जल पृथ्वी के सूक्ष्म एवं व्यापक (सर्वत्र विद्यमान) है तथा जल की अपेक्षा अग्नि सूक्ष्म एवं व्यापक है, तेज से वायु सूक्ष्म एवं व्यापक है, वायु की अपेक्षा आकाश सूक्ष्म सर्वत्र व्याप्त है। आकाश की अपेक्षा अज्ञान सूक्ष्म एवं व्यापक होता है, तथा अज्ञान से व्रह्म चेतन सूक्ष्म एवं व्यापक है। इस प्रकार प्रत्येक कारण अपने कार्य से सूक्ष्म एवं व्यापक होता है। चूंकि व्रह्म सव का कारण है अतः सर्वत्र व्यापक है और और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। ''अज्ञान मन से ग्रहण नहीं किया जा सकता किन्तु मैं नहीं जानता इस अनुभव रूप से उसका अनुमान किया जाता है। किन्तु ब्रह्म चेतन स्वयं प्रकाश होने के कारण किसी भी प्रमाण का विषय नहीं है। शरीर में काले तिल की भाँति अज्ञान ब्रह्म के एक देश (स्थान) में स्थित है, अगर अवशेष ब्रह्म शुद्ध एवं स्व प्रकाश है।

विशेष चेतन ''जीव''

विवेकी पुरुष सामान्य चेतन को ही सत्य कहते हैं, तया जो विशेष चेतन (जीव) है वह भ्रांति स्वरूप कल्पित एवं जन्म मरण का आश्रय है। अन्तःकरण (वुद्धि आदि) एवं उसकी वृत्तियों में सामान्य चेतन्य (ब्रह्म) का प्रतिविम्व रूप चिदामास ही विशेष चेतन है। जैसे जल में, दर्पण में सूर्य का प्रतिबिम्व दिखाई देता है, वह (सूर्य का विशेष) छाया, प्रतिविम्ब) रूप है उसे विवेकी पुरुष नित्था कहते हैं। ठीक इस प्रकार बुद्धि में परमात्मा को जो प्रतिबिम्ब भासता है वही विशेष चेतन (जीव रूपी) है। यह विशेष चेतन ही लिंग देह धारण कर लोक परलोक में आता-जाता है। स्थूल सूक्ष्म देहों को अपना स्वरूप मान प्रकृति से होने वाले उनके समस्त कार्यों को अपने द्वारा कृत मात्र उनके परिणामों सुख दुखादि को भोगने यत्र-तत्र ऊपर (देवादि) नीचे सरीसृपादि तथा मृत्य लोक की विभिन्न योनियों से भट्कता रहता है। यह सब क्रिया आवागमन आदि चेतन (ब्रह्म) का प्रतिबिम्ब ही करता है। शुद्ध सामान्य चेतन (ब्रह्म) में आना जाना एवं कृतित्व भोगत्व नहीं होता। चिदामास चैतन्य (ब्रह्म) के लक्षणों से रहित, अर्थात् सर्वत्र व्यापक, निर्विकार आदि लक्षणों से रहित है मात्र चैतन्य की भांति भासता हो उसे 'चिदाभास' कहते हैं। 'चिदाभास' को विशेष चैतन्य

कहने का तात्पर्य यह है कि अल्प देश अल्प काल वाला होता है, जो वस्तु अल्प देश (सीमित क्षेत्र) और अल्प काल (क्षणिक कुछ समय के लिए) होती है, उसे विशेष कहते हैं। चिदाभास, अन्तः करण देश और जाग्रत स्वप्न एवं अज्ञान काल में होता है, इसलिए इसे विशेष चेतन (जीव) कहते हैं विशेष चेतन (जीव) उस अलखपुरुषमूर्ति सामान्य चेतन ब्रह्म की झलक (परिछाई मात्र) होता है। अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि वह ब्रह्म जीव की भांति वोलता चलता होता जागता दिखाई क्यों नहीं देता, इसकी भाँति व्यवहार क्यों नहीं करता? जैसे सूर्य सर्वत्र है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब सर्वत्र नहीं होता जहाँ दर्पण, या जल रूप उपाधि है वहीं उसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, सूर्य का प्रकाश सर्वत्र है लेकिन वस्तुओं को नहीं जलाता लेकिन जहाँ सूर्य कांतिमयी होती है वहाँ अग्नि रूप विशेष रूप धारण कर वस्तुओं को जलाने में समर्थ होता है। सामान्य रूप सर्वदा एक रस ज्यों का त्यों विद्यमान रहता है तथा बहुकाल स्थाई रहता है लेकिन जो उपाधि (अन्तः करण) से चिदाभास रूप विशेष भासता है वह अल्प देश एवं अल्प काल वाला होता है। हमारे गुरु देव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज ने उस ब्रह्म के सामान्य रूप को जानकर, देहरूप में प्रकट (जीवरूप विशेष चेतन) जो मिथ्या एवं कल्पित है मान, ज्ञान के द्वारा उसकी असारता को पहिचान, अपने को उस ब्रह्म के साथ एकाकार अनुभवकार लिया था। उनका अलखपुरुषमूर्ति'' सर्वत्र व्याप्त निराकार निर्विकार एवं अन्तर्यामी था। उसी की झलक प्रतिबिम्ब रूप से चराचरात्मक जगत में भासती है जिस प्रकार महान् समुद्र में उसी सूर्य का प्रतिविम्ब होता है वही एक जल के छोटे से छोटे पात्र में भी है, संसार में सभी छोटे बड़े जीवों के अन्तः करणों में उसी का प्रतिबिम्ब है। अतः समस्त बीच जगत उसी के अंश से क्रियाशील है।

इस प्रकार अस्ति (सत्) भाति (चित्त) एवं प्रिय (आनन्दः रूप ब्रह्म सामान्य चेतन है लेकिन उससे वोलना, चालना आदि विशेष व्यवहार नहीं होता। जहाँ अन्तः करण रूप उपाधि होती है, वहीं चिदाभास रूप से विशेष चैतन्य होकर, बोलना, चालना, कर्तापना, भोक्तापना, परलोक गमनागम क्रिया, इत्यादि विशेष व्यवहार देखने में आते हैं। लेकिन यह सव कुछ सत्य नहीं, आभास एवं भ्रम मात्र होता है। अतः सामान्य चैतन्य ब्रह्म ही सत्य है तथा चिदाभास रूप से उपाधि करके भासने वाला, चिदाभास मिथ्या, तथा उसके द्वारा होने वाली समस्त क्रियाएँ भी वस्तुतः सत्य नहीं लेकिन अज्ञान से सत्य सी प्रतीत हो रही है। जब भी गुरुदेव की कृपा से यह अज्ञानान्धकार दूर होगा तभी अपना वास्तविक, (शुद्ध चैतन्य) रूप स्पष्ट होकर संसार को, संसार व्यवहार को, सत्य मानकर सुखी दुःखी होना रूप अज्ञान, दूर हो जावेगा इसी अज्ञान (अविद्या) के कारण हम अपने वास्तविक रूप को भूल गये हैं–

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें।

जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥

जेहि जाने जग जाइ हेराई।

जागे तथा सपना भ्रम जाई॥

अर्थात–जिस (अलखपुरुषमूर्ति) के यथार्थ ज्ञान के अभाव में यह झूठा (अस्तित्व होना) संसार सत्य सा प्रतीत हो रहा है जैसे बिना पहिचाने रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है तथा तत्व का यथार्थ बोध हो जाने (क्षेत्र क्षेत्रज्ञपन बोध) के पश्चात् इस झूठे संसार का उसी प्रकार लोप हो जाता है जिस प्रकार जागने के पश्चात् स्वप्न का भ्रम नष्ट हो जाता है। कहने का मूल भाव यह है कि यह चराचर जगत जैसा दिखलाई दे रहा है यथार्थ में वैसा नहीं क्यों कि यह सदा एक रस नहीं रहता तथा क्षणभंगुर एवं नाशवान कहा जाता है, इसमें जो सत्यत्व एवं स्थायित्व दृष्टि गोचर हो रहा है वह उसी परमात्मा को झलक मात्र से है क्योंकि वह चेतन को जड़ एवं जड़ को चेतन बनाने की शक्ति सामर्थ्य रखता हैं।

जो चेतन कहँ जड़ करहिं,

जड़हिं करहिं चैतन्य,

अस समर्थ रघुनाथकहि,

भजहिं जीव सो धन्य॥

जैसा कि हमने तीन दोहों और तीन अवस्थाओं में उसी अविनाशी परमात्मा की झलक का दर्शन किया और यह पाया कि उन तीनों (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण) देहों में उसी अलखपुरुषमूर्ति की झलक रूप जीव ही अपनी क्रियाएँ किये हुए उसे अज्ञानवश अपना स्वरूप मान बैठता है यही अज्ञान उसका जीवत्व है तथा वही जागृत एवं स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओं को अपनी मानकर उनमें विविध भोगों और क्रियाओं को भी अपनी (निजकृत) मानकर उनके फलों के भोक्ता रूप में ऊपर नीचे विविध चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। वह माया की प्रेरणा से कालानुसार कर्म में प्रवृत होकर अपने स्वभाव का निर्धारक बन बैठता है। जबकि वास्तविकता कुछ और ही है भगवान श्रीकृष्ण इस सम्बन्ध में कहते हैं।

यथा सर्वगत सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।

सर्वत्रावस्थितों देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥ (गीता. 13/32)

अर्थात–जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा (त्रिगुणातीत होने के कारण) देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता।

अतः जीव के ये तीनों देह प्राकृतिक हैं, जड़ हैं, अनित्य हैं, परमात्मा का प्रकाश (भास) पड़ने के कारण उसमें उनका प्रतिबिम्ब पड़ता आभासित होता है

उसके उस आलोक से ही तीनों देह एवं समस्त अवस्थाएं प्रकाशित होती हैं, वह उन शरीरों में स्थित होकर भी उनके कोई सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि वह निर्गुणतत्व है, वह चेतन है। शरीर जड़ है। शरीर विनाशी है वह विनाशी है। अतः किसी भी प्रकार से यह जड़ वर्ग उस चिदानन्द भगवान की संगत के योग्य नहीं।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ (गी. 13/31)

भगवान कहते हैं कि "हे अर्जुन! अनादि होने और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न कुछ करता है और न लिपायमान होता है। लेकिन अविद्यावश जब उनका अंश यह अविनाशी जीव जब प्रकृतिस्थ हो जाता है अर्थात प्रकृति के कार्य इस नाशवान क्षण भंगुर अशान्ति कारक इस शरीर को अपना स्वरूप मान बैठता है और प्रकृति (शरीर इन्द्रयों, मन बुद्धि) द्वारा होने वाले कार्यों को अपने द्वारा किये मानने लगता है साथ ही उन कर्मों का भोक्ता भी बन बैठता है। जो निर्गुण निराकार था, उसने गुणों का संग किया अपने को साकार (देहरूप) मान लिया उसे कर्मों के भोगार्थ ऊपर-नीचे की विविध योनियों में आना-जाना पड़ता है। यह सब उसके प्रकतिस्थ होने का ही परिणाम होता है–

पुरुषः प्रकृतिस्थो हिभुङक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।

कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ (गी. 13/21)

अर्थात प्रकृति में (भगवान की त्रिगुणमयी माया में) स्थित हुआ ही पुरुष (जीव) प्रकृति से उत्पन्न हुये त्रिगुणात्मक सब पदार्थों (पांबधियों) को भोगता है और इन गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि यह आत्मा इस शरीर से बिल्कुल असंग होती है, इन प्राकृतिक तत्वों इन्द्रियों, विषयों, मन एवं उसके संकल्पों, वुद्धि एवं उसके भले-बुरे विचारों का दृष्टा मात्र होता है। वस्तुतः यह प्रकृति से सर्वथा न्यारा होता है। इस पुरुष (आत्मा) की शरीर में कितने रूपों में "झलक" दिखलाई पड़ती है उसका सुन्दर उदाहरण भगवान इस श्लोक में देते हुये कहते हैं–

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः

परमात्मेति चाप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुषः परः॥ (गी. 13/22)

इस श्लोक में एक ही तत्व (आत्मा) को भिन्न-भिन्न उपाधियों के सम्बन्ध से अपदृष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता एवं महेश्वर आदि पांच सम्बन्धों वाला बतलाया गया है। उस एक ही निर्विकार निर्लिप्त (अलखपुरुषमूर्ति) की यहां पांच प्रकार की झलक प्रस्तुत की गई है। हम संक्षेप में इनकी जानकारी लेते हैं क्योंकि यह हमारा (जीवमात्र का) निजी मामला है। अतः समझ लेना भी आवश्यक समझते हैं–

उपदृष्टा कैसे?– यह पुरुष (अलखपुरुषआत्मा) स्वरूप से नित्य है सब जगह परिपूर्ण (व्याप्त) है, अचल है, तथा सदा रहने वाला है। ऐसा होते हुए भी जब यह प्रकृति एवं उसके कार्यों (शरीरों) की ओर दृष्टि डालता है, अर्थात् उनके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, तब ही इसकी उपदृष्टा संज्ञा हो जाती है।

अनुमन्ता कैसे?–इन्द्रियों, मन, एवं बुद्धि के सहयोग से विविध प्राकृतिक कार्य (कर्म एवं भोग) सम्पादित होते हैं, प्रत्येक कार्य करने में यह सम्मति, एवं अनुमति देने वाला होता है, बिना इसकी सम्मति एवं अनुमति के सुभाशुभ कार्य सम्पादित नहीं हो सकते, अतः यह अनुमन्ता कहा जाता है।

भर्ता कैसे?–एक व्यष्टि शरीर के साथ एकात्म होकर यह अन्न जल एवं अन्य प्रकार के पदार्थो से यह उस (शरीर) का पालन-पोषण करता है, उसके अस्वस्थ होने पर औषधि आदि के द्वारा उसे नीरोग प्रदान करता है, शीत उष्ण आदि प्राकृतिक प्रकोपों से उसे सुरक्षित कर उसका (शरीर का) संरक्षण करता है। अतः इस सम्बन्ध से यह उसका भर्ता (भरतार) होता है।

भोक्ता कैसे?– यही अविनाशी कुटस्थ (अलख पुरुष मूर्ति) शरीर के साथ (मिलकर प्रकृतिस्थ होकर) अनुकूल परिस्थिति के आने से अपने को सुखी एवं प्रतिकूल परिस्थिति अपने पर अपने को दुःखी मानने लगता है। अतः भोक्ता कहा जाता है यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आत्मा निर्विकारी होने से सुखी अथवा दुःखी नहीं होती वह सदा एक रस आनंदस्वरूप होकर स्थित रहती है, अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थिति, वस्तुओं, व्यक्तियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं एवं प्रकृति जड़ होने के कारण कभी सुखी-दुःखी नहीं होती, कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति में भोक्तापन नहीं एवं शुद्ध ब्रह्म'' में भी भोकतृत्व कर्तृत्व नहीं केवल ब्रह्म का वह अंश (चेतन) जो पड़ प्रकृति (बुद्धि के संसर्ग से जीव) (अहंरूप) धारण कर प्रकृतिस्थ हो जाता है, वही कर्ता भोक्ता बन जाता है। यह चिंद्जड़ ग्रन्थि (जीवत्व) जो वस्तुतः मानी डुई है, वास्तविक नहीं, उसी में यह कर्त्तत्व एवं भोक्तृत्व भाव पैदा होता है।

महेश्वर कैसे हुआ?–यह अपने को शरीर, मनवुद्धि तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले समस्त प्राणी पदार्थ (सम्पत्ति) योग्यता आदि का स्वामी मानने लगता है अतः यह महेश्वर नाम से कहा गया है।

भगवान आधे श्लोक में पुनः कहते हैं–

परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।

अर्थात् यह अविनाशी परमात्मा देह में रहता हुआ भी देह से परे (सम्बन्ध रहित है) पुरुष सर्वोत्कृष्ट है, परमात्मा है इसलिए शास्त्रों में इसको परमात्मा कहा गया है। भगवान ने अपने स्वरूप कथन में कहा है–

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम॥

(गी. 15/18)

अर्थात् में क्षर (नाशवान जड़वर्ग) से सर्वथा अतीत (न्यारा) हूँ और अक्षर (माया में स्थित जीव) से भी उत्तम (शुद्ध ब्रह्म) हूँ। अतः लोक में और वेदों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। यह आत्मा देह में रहती हुई भी देह के सम्बन्धों से रहित है यह न कुछ कर्ता है न भोक्ता है। उपर्युक्त विवेचन में यह बात स्पष्ट हो रही है कि एक ही आत्मा विविध सम्बन्ध (कार्यों) के संसर्ग से विविध रूपों–

(उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।). . . . .में प्रकट दिखाई देता है। जैसे एक ही व्यक्ति देशकाल, वेश, कार्य एवं सम्बन्ध आदि से पिता चाचा, भाई नाना तथा गुरु-शिष्य, विद्वान मूर्ख आदि नामों से पुकारा जाता है, लेकिन वह अलग-अलग न होकर एक ही होता है। इसी प्रकार एक ही आत्मा उपद्रष्टा अनुमन्ता भर्ता, भोक्ता होता है एवं महेश्वर आदि विविध रूपों में भासने वाली एक ही (आत्मा) अलख की झलक मात्र है, यह प्रतिपादन करना इस लेख का प्रमुख ध्येय था। देश काल आदि की अपेक्षा से कहे जाने वाले मैं, तुम, यह तथा वह, इन चारों के मूल में एक ही परमात्मा तत्व है, (अस्ति) विद्वमान है जो इन चारों का प्रकाशक एवं आधार है। उस अलखपुरुषमूर्ति की ही मुझमें (जीवरूप से) तुझमें (त्व) इसमें इंद्ररूप जगत में) उसमें (तत्रूप से) सर्वत्र झलक दिखलाई पड़ती है। मैं, तू यह वह तो परिवर्तनशील है लेकिन है (परमात्मा) नित्य एवं अपरिवर्तनशील है, वह तीनों कालों में एक रस सदा स्थिर रहता है। मैं मेरा, तू, तेरा, यह इसका तथा ''वह'' उसका आधार वहीं आत्मा है वह ''है'' रूप से जब सबके साथ लगा रहता है तो ही उनका अस्तित्व (अस्तिपना) दिखलाई देता है इन सब में तू है, यह है, वह है, ऐसा तो बोला जाता है पर ''मैं है'' ऐसा व्यवहार में नहीं बोला जाता वरन् ''मैं हूँ'' ऐसा कहा जाता है। कारण यह है कि मैं हूँ में ''हूँ'' मैंपन के कारण आ गया है। जब तक मैंपन (अहंकार) है तभी तक ''हूँ'' के रूप में परिछिन्नता या एक देशीयता है। जब मैंपन मिट जाता है तो है (परमात्मा) ही शेष रह जाता है, 'हूँ' (परिछिन्नता) समाप्त हो जाती है–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाय।
प्रेम गति अति सांकरी जा में दोइ न समाय॥

अर्थात् जब तक जीव में (अज्ञान के कारण) मैंपन (शुद्र अहंकार) रहता है तब तक वह है'' तत्व (परमात्मा) से दूर होता है और तत्व विचार (आत्मनिरीक्षण) से जब उसे सत्य का बोध होता है तो उसका यह परिछिन्न भाव समाप्त होकर मात्र 'है' रूप परमात्मा ही शेष रह जाता है, किसी संत ने कहा है–

पहले तो अपना नामों निशां मिटावै,
फिर उसको पूरन, ब्रह्म साफ दिखलावै॥

"मैं", तुम यह वह, सब मिथ्या हैं। "है" सत्य है। यह, वह, मैं तू प्रकृति के साथ सम्दन्ध से उत्पन्न भाव है तथा "है" (अस्ति) परमात्मा का वाचक है। प्रकृति और उसके सुन्दर दिखाई पड़ने वाले सभी प्राणी पदार्थ, जड़ चेतन संसार नहीं है।

अर्थात झूठे (आभासमात्र) है जो उसी 'है' (परमात्मा) की सत्ता से ही सत्य और सुन्दर भास रहे हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि वह "है" तो हमें स्पष्ट दिखाई नहीं देता और 'नहीं' है, सो संसार में सर्वत्र दृष्टिगोचर है। संतं सुन्दर दास ने इस सम्दन्ध में क्या ही सुन्दर बात कही है–

दोहा- *"है" सो सुन्दर है सदा, "नहीं" तो सुन्दर नांहि।*
"नहीं–सो सुन्दर देखिये, "है" सो दीखै नांहि॥

अर्थात्–सुन्दरदासजी कहते हैं कि "जो "है" (परमात्मा) वह सदा सत्य, शिव एवं सुन्दर होता है। और नहीं (प्रकृति) सत्य, शिव एवं सुन्दर नहीं होती क्योंकि प्रकृति परिवर्तनशील है, एक रस नहीं, बदलने वाली है। अतः वह सत्य नहीं, "सत्य" नहीं तो "सुन्दर नहीं तो सुन्दर (आनंद प्रद) भी नहीं, और सुन्दर नहीं तो श्रेयष्कर (कल्याणकारी) नहीं अर्थात् 'शिव' भी नहीं वेदान्त की भाषा में हम कहें तो ब्रह्म (है) सत्य है, द्वितीय (प्रकृति) (नास्ति) नहीं है",।

ब्रह्म में अस्तिपन (हैपन) भांति (चिद्रूप) और प्रिय (आनंदरूप) तीन तत्व (स्वरूप) होते हैं, जबकि प्रकृति में यह अस्ति, भांति और प्रिय तत्व नहीं होता। संत सुन्दर दास एक प्रमुख बात यहाँ यह कहते हैं कि हम व्यवहार (संसार) में देख रहे हैं कि प्रकृति अपने बड़े अनोखे, चित्र, विचित्र, आकर्षक रूपों से हमारे सामने (सत्यइव) सत्य जैसी दिखती है अर्थात् जो "नहीं" [अस्तित्वहीन] है और सुन्दर (परिवर्तनशील नश्वर) है, वह हमें सुन्दर एवं सत्य दिखती है और है (परमात्मा) कहीं दिखलाई नहीं दे रहा जब कि वह "है" अस्ति अर्थात् सत्य शिवं सुन्दरम् रूप से चराचर में व्याप्त होकर स्थित है। वह "अलखपुरुषमूर्ति" हमारे गुरुदेव के हृदय में तथा समस्त बाह्य रूपों में समाया हुआ था तभी तो हर दम आप बोला करते–

"अलख पुरुषमूर्ति".....।
"हुजूर गरीवन्निबाज.....॥"

"अलख" खोल दे-पलक, देख ले, दुनिया की झलक-झलक"। इस संसार में हम तेरे वन्दे सर्वत्र तुझे ढूंढते हैं लेकिन तू पर्दानसी की भाँति इस संसार रूप अपनी त्रिगुणमयी माया के पर्दे की पीछे छुपकर हमें न देख। हम सिर्फ तेरे हैं और तू हमारा तू ही विविध रूपों में सदा सर्वदा हमारी आँखों के सामने है। हम न कोई

साधना जानते हैं न योग क्रिया, बस तेरा नाम अपनी जिह्वा पर रटते रहते हैं, तू हमारे मन मन्तिष्क में समाया हुआ है, अधिक क्या कहें तुम्हें हमारी सब कुछ खबर है–

"हम तेरे सनम हो चुके, हमारा" तू है।
महाराज, तुम्हें है, सरम हमारी जी,
हमें नहीं, कुछ उज़र करेंगे तावेदारी जी॥
जन्मान जन्म से लगन हमारी तेरी,
महाराज, तुमको दमभर न विसारूं जी,
तन-मन-धन और प्राण तुझवै न्यौछावर डारूं जी॥
श्रवनों से जिक्र हर जगह तेरा सुनता हूँ,
महाराज नाम रसना से उचारूं जी।
तू नैनों में रहा छाय, चाहे जिस वख्त निहारूं जी॥
रहूँ एक पैर से खड़ा मैं हाजिर बन्दा,
अब तेरे इश्क का पड़ा गले बिच फन्दा।
महाराज, तुम्हें सब खबर हमारी जी,।
हमें नहीं कुछ उज करेंगे तावेदारी जी॥
तेरा ही जलवा झलक खलक में छाया,
महाराज, खता दू बख्शन हारा जी,
तूही दिलो दिल्दार हमारा प्रान से प्यारा जी॥

(तुकन्नगिर/हरिनंद)

"हरिः शरणम्"

हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।

❑❑❑

अध्याय-12

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहर दास जीवन-दर्शन

बाबा के मन भाये छंद

इस अध्याय में उन छंदों को लिखा जा रहा है जो प्रायः हुजूर के श्री मुख से समय-समय पर भाव विभोर होकर निकला करते थे। एक वार हुजुर के दरबार में एक नव युवक योगी आया था, जिसे बाबा ''बड़ी बहू का छोरा'' कहा करते थे, उसने बाबा को अपना गुरुदेव स्वीकार कर लिया था। बावा भी उससे प्रसन्न रहा करते थे, एक दिन आप धूना पर विराजमान थे उसी समय आपने विरजू सेठ को आदेश दिया–''छोरा एक कापी पैन ला''। कापी-कलम लाये गये, हुजूर अपने श्री मुख से छंदों को बोलते गये और बृजलाल सेठ जिन्हें हुजूर ''मन्नू'' कहा करते थे, कापी में लिखते गये। जब लिख लिए गये तो वह कापी हुजूर ने उस साधू को दे दी। बाबा के सत्य लोक प्रस्थान के कई वर्ष बाद वह साधू पुनः वैर आया अब उसका वेश बदला हुआ था उसने सफेद खादी के कुर्ता व पाजामा पहन रखे थे, एक नेता जैसा लग रहा था। पहले वह कुन्दन दास बाबा के पास पहुँचा नमस्कार प्रणाम किया लेकिन कुन्दन दास बाबा ने उसे नहीं पहिचाना क्योंकि एक तो वह बहुत वर्षों बाद आया था और दूसरे उसका रूप बदला हुआ था, पहले अल्पवय में साधु रूप में आया था अपना परिचय देने पर कुन्दन दास बाबा ने उसे ठीक से पहचान लिया। अरे! तू तो सोनी है''। हाँ पहचान गया।

इसके बाद वह बृजलाल सेठ (बिरजू) से मिला तो वह भी नहीं पहिचान सके। उसने अपने बैग से वह कापी जिसमें बाबा ने कुछ छंद लिखाये थे और जिसमें बृजलाल की लिखावट थी निकाल कर उसे दिखलाई तो तुरन्त अपनी लिखावट को पहिचान कर उस घटना की स्मृति हो आई। यह सब लिखने का मेरा तात्पर्य यह है कि अग्रांकित छन्द मैंने उसी कापी से ज्यों की ज्यों उतार कर पाठकों के हितार्थ यहाँ लिख दिये हैं। इन छंदों से साधना में उपयोगी बातों की जानकारी प्राप्त होती है, साथ ही बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज के आध्यात्मिक विचारों की झलक भी हमें इन छंदों से मिलती है–

(1)

निरंजन को नमस्कार, नमों गुरुदेव जी को,
गनपति औ फजपति, सरस्वती जी को प्रणाम है।
साधुअन कूँ दण्डवत हैं, संतों को सत्य नाम,
और लोग दुनियाँ के, तिन्हैं राम राम है,

शोभा कहै, वन्दे को बन्दगी बराबर है।
कलमा के शरीफों को अपना भी सलाम है।
दंगल के लोग सब, सभा बीच हाजिर रहें,
सत्य नाम पैरी पै, हमारी हरि नाम है॥

(2)

पंडित के पिरोहित, पड़ौसी परमारथ के,
बल्लभ के सेवक, चेला चाटे हैं सिद्धन के।
गुनिन के गुलाम हैं, खुशी हैं खूबसूरत के,
आदर के ठौर बीच, रहने वाले हदद् के।
शहर के ग्राहक हैं, कायर से कौन काम,
कहत घनश्याम हम आशिक हैं मर्द के।
भले के भाई हैं, बुरे के जमाई हैं,
दाता के सहाई हैं, वहनोई बेदर्द के॥

(3)

एरे मन मेरे! चल तीरथ करें, किये पातक घनेरे,
तेरा तन भी छूट जायेगा।
चल काशी, अविनाशी ते मिलाय दउ तोय,
चौरासी का फन्दा, तुरत टूट जायेगा।
आवेंगे जमन के दूत, पकड़ ले जांय तोय मजबूत,
लुटत-लूटत एरे बन्दे, तू भी लुट आयेगा।
वहती गंगा, हाथ पग क्यों न पखार लेत,
काचकासा शीशा फटाफट फूट जायेगा।

(4)

दाने की खातिर ऊंच गिनें न नीचन को,
दाने की खातिर सारा जहान् ही मजूर है।
दाना दिखाय बधिक फाँस लेत पँछी को,

दाने की खातिर मर जाना भी मंजूर है॥
दाने की खातिर परदेश गये हीरा–लाल,
दाना और पानी दोनों मिसल मशहूर है,
दाने बिन दिवाना नांय, इस दम का ठिकाना नांय,
जहाँ दाना ले जाये, वहाँ जाना ही जरूर है॥

(5)

मन से महीप के मुंशी मंतग–मोह,
मदन मौहर्रिर की मिशल मतबारी है।
क्रोध कोतवाल लोभ नाजिर की मिल्लत से
ज्ञान मुद्दई की जिन मिशल विगारी है।
अहंकार अहलमद, करत न रिपोर्ट भली,
तृष्णा चपरासी की, दस्तकनित जारी है।
दीन की अपील, अद्यडिगरी न होय, केशव,
अर्जी हमारी, आगे मर्जी तुम्हारी है।

(6)

दीनताई, दया और नम्रताई दुनिया बीच,
बन्दगी से प्यार राखि, भूले को खिलायेगा।
चारबीसीचार से तू बचेगा मेरे यार,
साधुअन की संगत से, तू बड़ा सुख पायेगा।
वेद और पुरान सब, कहते हैं जमान भये,
संकटहु न आवै, जमशहु न पावेगा।
उद्धवजी, विचार देखी, औसर न बार-बार,
बड़ी सरकार का सलुक काम आयेगा॥

(7)

राजन की नीति गई, मित्रण की प्रीति गई,
नारी की प्रतीति गई, यारमन भायौ है।

अध्याय-13

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

गीता अध्यायी संत

बाबा के जीवन वृत्त का विस्तार से अध्ययन करने के उपरांत यह ज्ञात होता है कि उनकी सबसे प्रिय पुस्तक थी ''श्रीभगवद्गीता''। उन्होंने गीता का बड़े मनायोग से स्वाध्याय किया था उनके समकालीन लोगों का कहना है कि बाबा महाराज को लगभग गीता के सभी अध्याय कंठस्थ थे। वे ध्यान में आने पर लगातार घंटों तक गीता के श्लोक बोला करते थे। वे अपने भक्तों को यह उपदेश भी दिया करते थे कि ''श्रीमदभगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम'' का सेवन करने के समान दुनियाँ में कोई भी श्रेय साधन नहीं है। ''जो ज्ञान श्रीमद्भगवद्गीता'' में है और जितना स्पष्ट है उतना दुनिया के किसी भी धर्मग्रंथ में नहीं है। कल्याण-कामी पुरुष को गीता का सेवन अवश्य ही करना चाहिए।

जग्दगुरु स्वामी शंकराचार्य के वचन हैं–

गेयं गीता नामसहस्त्रं, ध्येयं श्रीपति रुपमजस्त्रम।

नेयं सज्जन संगे चित्तं, देयं दीन जनाय च वित्तम॥

अर्थात्–गीता और विष्णु सहस्रनाम का नित्य पाठ करना चाहिए चित्त को संत जनों के संग में लगाना चाहिए। भगवान विष्णु के स्वरूप का निरंतर ध्यान करना चाहिए तथा दीन जनों की धन से सहायता करनी चाहिए।

बाबा ने अपने जीवन में गीता के ज्ञान को उतार लिया था वे हमेशा भगवान के ध्यान में मग्न रहा करते थे। कोई दीज-दुःखी उनकी शरण में आता उसकी वे मनोकामना की पूर्ति करते। वे चलते-फिरते वेदान्त थे उनके आचार-विचारों में गीता का रहस्य छुपा हुआ था। कहा जाता है कि वेदों का सार उपनिषद् है, उपनिषदों का सारमाग गीता है और गीता का भी सार भगवान ने समर्पण योग बतलाते हुए अर्जुन से कहा है कि–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (गीता 18/66)

अर्थात– सम्पूर्ण धर्मों (कर्तव्य कर्मो) को मुझ में त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आजा। मैं तुझे सब पापों से

मुक्त कर दूंगा तू शोक मत कर। बाबा महाराज अक्सर कहा करते थे कि–"लाला! गीतास्य वेदन कौ सार है"। वास्तव में मुनिवर व्यास ने अठारह पुराण नव व्याकरण और चार वेदों का मन्थन करके महाभारत की रचना की थी।

महाभारत रूपी महासमुद्र का मन्थन करके गीता जैसा महान ग्रंथ प्रकट किया और गीता के मन्थन से प्राप्त सार (शरणागतयोग) जो गीता के अठारहवें अध्याय के छासठवें श्लोक के माध्यम से भगवान ने अर्जुन के कर्णपुटों में डालकर उसे कृतार्थ किया था।

जिस श्री मदभगवद्गीता को बाबा ने अपने जीवन और अपनी साधना का आधार बनाया था। वह कोई साधारण ग्रंथ नहीं वरन् सब धर्मों का सार बतलाने वाला एक महान ज्ञान का सागर है।

सर्ववेद मयी गीता, सर्वधर्ममयो मनुः।

सर्वतीर्थ मयी गंगा, सर्वदेवमयो हरिः॥

"गीता सम्पूर्ण वेदमयी है, मनुस्मृति सर्वधर्ममयी है, गंगाजी सर्व तीर्थमयी है तथा भगवान विष्णु सर्वदेव मयी है।" ऐसे महान ग्रंथ को गुरुदेव ने सम्यक प्रकार से स्वाध्याय करके उसके गूढ तात्पर्य को अपने जीवन का अपरिहार्य अंग बनाया था। उन्हें गीता के सातसौ श्लोक में से अधिकतर कंठस्थ कर लिए थे तथा उसके भाव को अपने आचार में ढाल लिया था। वे जो कुछ भी थे गीता का परिणाम था।

कहा जाता है कि जो मनुष्य गीता का एक श्लोक आधा श्लोक एक चरण अथवा आधा चरण भी प्रतिदिन धारण करता है, वह अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है–

पादस्याप्यर्धपादं वा श्लोकं श्लोकर्धमेव वा।

नित्यं धारयते यस्तु स मोक्षममधिगच्छति॥ (स्कन्द पु.)

अब आधे चरण (मामेंक शरणंब्रज) का इतना अधिक महात्म्य है तो जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही गीता ज्ञान सागर में डुबकी लगाने में लगा दिया हो तो वह इसी जीवन में (जीवन्मुक्त) मुक्त क्यों नहीं होगा। ऐसे ही जीवनमुक्त महान आत्माओं में थे। हमारे श्री गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदासजी महाराज।

श्री मद्भगवद्गोता ज्ञान के प्रकाश में, उनके चरित्र को हम निरखें-परखें तो पाएंगे कि वह साक्षात गीता की प्रतिमूर्ति ही थे। जैसा कि गत अध्यायों में स्थान-स्थान पर हमने उनके चरित्र में गीतोक्त गुणों का होना सिद्ध किया है। इस अध्याय में पुनः गीता के आलोक में उनके उन सद्गुणों का विस्तार से वर्णन करते हैं, जो श्रीमद्भगवद् गीता में स्थान-स्थान पर वर्णित हैं।

गीता अध्याय दो, में भगवान श्रीकृष्ण ने परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्यों का जैसा वर्णन किया है, वे सबके सब हमें बाबा के चरित्र में दिखाई देते हैं–

प्रजहाति चदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थिर प्रज्ञस्तदोच्यते॥ (गी. 02/55)

"श्री भगवान बोले–हे पृथा नन्दन! जिस काल में साधक मनोगत सम्पूंर्ण कामनाओं का अच्छी तरह त्याग कर देता है और अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है उस काल में वह स्थित प्रज्ञ कहा जाता हैं। इस श्लोक में कही गई मुख्य वात है कामना का सम्पूर्ण रूपेण त्याग तथा अपने आप में पूर्ण संतुष्ट रहना, ये दोनों वाते हुजूर के जीवन में सांगोपांग थी। अतः वे परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले नहान संत थे। दुःखों की प्राप्ति में उनके मन में कभी उद्वेग नहीं होता था और सुख की अवस्था में उनके मन में स्पहा नहीं होती थी। स्पृहा का तात्पर्य होता है कि यह परिस्थिति ऐसी ही बनी रहे यह सुख की अवस्था कभी बदले नहीं, मन में ऐसा भाव होना इसके साथ-साथ राग, भय एवं क्रोध से उनका अन्तःकरण सर्वदा मुक्त था और सदैव ईश्वर चिन्तन करने का उनका स्वभाव था। गीता अध्याय दो में वर्णित स्थिर बुद्धि पुरुष के अन्य लक्षण सब जगह आसक्ति रहित होना, शुभ तथा अशुभ को प्राप्त करके न तो हर्षित होना न द्वेष करना, इन्द्रियों को विषयों से इन्द्रियों को हटा लेना, ये सबके सब लक्षण बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज के चरित्र में मौजूद थे। अतः वे गीता ज्ञान के सागर थे। गीतोक्त ज्ञान को उन्होंने अंगीकार किया था, उसके अनुसार ही अपने जीवन को ढाल लिया था। उनकी इन्द्रियाँ और मन पूर्णतः उनके वश में थे क्योंकि गीता के अनुसार जिसकी इन्द्रियाँ इन्द्रियों के भोगो से दूर रहती हों वही पुरुष स्थिर बुद्धि वाला होता है (2/68) सम्पूर्ण मनुष्यों की जो रात (परमात्मा से विमुखता) है उसमें संयमी मनुष्य जागता है, और जिसमें साधारण मनुष्य जागते हैं अर्थात् भोग और संग्रह में लगे रहते हैं, वह तत्व वेत्ता मुनी की दृष्टि में रात है। (2/69) कहने का तात्पर्य है कि विषयों से विमुखता एवं परमात्मा से नित्ययोग की अवस्था सिद्ध भक्तों का प्रमुख गुण होता है। जैसे सम्पूर्ण नदियों का जल चारों ओर से समुन्द्र में आकर गिरता है पर समुद्र अपनी मर्यादा में अचल प्रतिष्ठित रहता है इसी प्रकार सम्पूर्ण भोग पदार्थ संयमी मनुष्य में विकार उत्पन्न नहीं कर सकते, वह परम् शान्ति में ही स्थित रहता हैं। बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके निर्मम, निरहंकार और निस्पृह होकर विचरते थे, उन्होंने परम् शान्ति को प्राप्त कर लिया था। गीता अध्याय दो में भगवान श्रीकृष्ण ने स्थिर बुद्धि प्रकरण में कहा कि–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरंहकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गी. 2/71)

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके निर्मम, निरहंकार और निःस्पृह होकर विचरता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।

श्री मद्भगवद गीता अध्याय बारह में श्लोक संख्या 13 से 19 तक भगवान ने अपने सिद्धभक्तों के 39 लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुंख क्षमी॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा छढ निश्चयः॥

मध्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद् भक्तः स मे प्रिय॥ (गी. 12/13-19)

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपने प्रिय सिद्ध भक्तों के दिव्य गुणों को स्पष्ट करते हुए कहा कि (1) सब भूतों में द्वेषभाव रहित होना, (2) स्वार्थ रहित सबका प्रेमी (3) करुणा का भाव रखने वाला (4) ममता से रहित (5) अहंकार शून्यता (6) दुःख सुख में समता वाला (7) क्षमावान् (8) निरंतर संन्तुष्ट (9) परमात्मा से नित्य निरंतर जुड़ा हुआ (10) मन बुद्धि-इन्द्रिया सहित शरीर को वस में रखने वाला (11) दृढ़ निश्चय वाला (12) मन और बुद्धि को मुझे अर्पित किये हुए मेरा भक्त मुझे प्रिय है। भगवान आगे के श्लोकों में अन्य गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं–

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च में प्रियः॥

अनपेक्षः शुर्चिदक्ष उदासीनों गतव्ययः।

सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स में प्रियः॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।

शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स में प्रियः॥ (गी. 12/15-17)

(13) जिससे कोई प्राणी उद्विग्न नहीं होता (14) जो स्वयं किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं हो (15)-(18) हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से सहित (19) आकांक्षा से रहित (20) बाहर-भीतर से पवित्र (21) दक्ष अर्थात् जिसने मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया हो (22) पक्षपात से रहित (23) व्यथा से छूटा हुआ (24) सर्वारम्भ परित्यागी अर्थात् मन, वाणी, शरीर द्वारा प्रारब्धवश होने वाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी (25) जो कभी हर्षित नहीं हो (26) किसी से द्वेष नहीं करता हो (27) कभी शोक नहीं करता हो (28) न किसी प्रकार की कामना करता हो (29) शुभ और अशुभ कर्मों का त्यागी, मेरा प्रिय भक्त होता है और वह मुझे अत्यंत प्रिय लगता है। अपने सिद्धभक्तों के शेष गुणों को

अगले श्लोकों में वर्षन करते हुए भगवान कहते हैं कि -

श्लोक– *समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।*

शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः संगविवर्जितः॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिर मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥ (गी. 12/18-19)

इन दो श्लोकों में भगवान ने अपने सिद्धभक्तों के सदा सर्वदा समभाव में स्थिर रहने का वर्णन किया है (30) जो शत्रु और मित्र में समान भाव वाला हो (31) मान तथा अपमान में सम (32) सर्दी गर्मी अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल विषयों में तथा सुख-दुःख में अर्थात् सुखदायक एवं दुःखदायक परिस्थितियों में जो सम रहता हो (33) आसक्ति से रहित है (32) निन्दा और स्तुति को समान समझने वाला (35) मननशील स्वभाव वाला अर्थात सिद्धभक्त के द्वारा स्वतः स्वाभाविक भगवत स्वरूप का मनन होता रहता है इसलिए उसे "मौनी" अर्थात मननशील कहा है (36) जिस किसी प्रकार से शरीर का निर्वाह होने से सन्तुष्ट अर्थात प्रारब्धानुसार शरीर निर्वाह के लिए जो मिल जाये उसी में पूर्ण संतुष्ट रहने वाला (37) रहने के स्थान में तथा शरीर में भी ममता-आशक्ति न रखने वाला (38) स्थिरमति अर्थात जिसकी स्थिर बुद्धि हो गई हो (39) भक्ति मान पुरुष मुझे प्रिय है।

गीता के बारहवें अध्याय के 13 से 19 श्लोक तक कुल सात श्लोकों में अपने प्रिय सिद्धभक्तों के उपर्युक्त 39 लक्षणों का वर्णन किया है, उनमें प्रमुख बात और महत्त्वपूर्ण तत्व भक्तों में पाये जाने वाले राग द्वेष, हर्षशोक आदि विकारों का अत्यन्ताभाव एवं समता की स्थिति और समस्त प्राणियों के हित की भावना ये समस्त दैवी गुण हमारे बाबा श्री मनोहरदास में विद्यमान थे। उनका चरित्र दैवी गुणों का भण्डार था उन्होंने गीतोक्त सद्गुणों को पूर्ण रूपेण अपने जीवन का अंग बना लिया था।

ज्ञान की कसौटी

श्री मद्भगवद् गीता अध्याय 13 में श्लोक 7 से लगायात 11 तक पाँच श्लोकों में तत्ववेत्ता ज्ञानी में पाये जाने वाले बीस लक्षणों का उल्लेख करके भगवान ने कहा है कि जिस महापुरुष में ये लक्षण हों वह परम ज्ञानी एवं तत्ववेत्ता है और इनके विपरीत लक्षण हो तो उसे परम अज्ञानी एवं मूर्ख समझना चाहिये। यहाँ पर हम उन पाँच श्लोकों पर विचार करते हैं जो ज्ञान की कसौटी कहे जा सकते हैं।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्ति रार्जवम्।

आचार्योपासनं शौच स्थैर्यमात्म विनिग्रह॥

ज्ञानी पुरुष में जो गुण पाये जाते हैं उनमें सबसे पहले भगवान ने अमानित्वम् अर्थात अपने में मानीपन का अभाव (मान रहित होना) बतलाया है। मनुष्य वर्ण आश्रय योग्यता, विद्या, गुण पद आदि को लेकर अपने में श्रेष्ठता का भाव आरोपित कर अपने को आदरणीय मान लेता है। मूल रूप से यह भाव उत्पत्ति विनाशशील शरीर के साथ तादात्म्य होने से ही उत्पन्न होता है। ज्ञानी पुरुष में मान का सर्वथा अभाव होता है। हाँ वह आप अमानी रह कर दूसरे को मान देने वाला होता है राम चरित मानस में तुलसीदास जी महाराज ने संतों के गुणों में "सबहिं मान-प्रद आप अमानी'. .....। होना वर्णित किया है। उपर्युक्त श्लोक (13.-17) में अन्य लक्षण हैं– दम्भ हीनता अर्थात दिखावटीपन का अभाव, अहिंसा अर्थात् मन वाणी तथा शरीर से किसी को कष्ट न देना, क्षमाशील, सरलता, गुरु की सेवा, शौचम अर्थात् बाहर-भीतर की शुद्धि, स्थिरता और मन का वश में होना

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।

जन्म मृत्युजरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्॥ (गी. 13/8)

अर्थात्–इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव, अहंकार शून्यता, तथा जन्म-मृत्यु वृद्धावस्था और रोग आदि में दुःख दोषों का बारम्बार विचार करना

असक्तिरनभिष्वसंग पुत्रदार गृहादिषु।

नित्यं च समचिन्तत्वमिष्टानिष्टों पपन्तिषु॥ (गी. 13-9)

पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति के आवे में हर्ष शोकादि विकारों का उत्पन्न न होना।

मयि चानन्य योगेन भक्तिरव्यभि चारिणी॥
विविक्त देशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥

मेरे में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति का होना एकान्त स्थान में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना।

अध्यात्मज्ञान नित्यत्वं तत्व ज्ञानार्थ दर्शनम।

एतत् ज्ञानम् इति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ (गी. 13-11)

अध्यात्मज्ञान में नित्य निरंतर रहना, तत्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सब जगह देखना इस उपर्युक्त प्रकरण में हमने देखा कि अपने प्यारे भक्त एवं सखा अर्जुन को भगवान अपने मुखारविन्द से ज्ञानियों के लक्षणों को सुना रहे हैं इन

पाँच श्लोकों में उन्होंने अमानित्वम् से लेकर 'तत्व ज्ञानार्थ दर्शनम्' तक जो बीस साधन वतलाये हैं वे सब देहाभिभान मिटाने वाले तथा परमात्मा की प्राप्ति में साहयक होने से ''ज्ञान'' नाम से कह गये हैं इन साधनों के विपरीत मानित्व, दम्भित्व और हिंसा आदि जितने भी दोष हैं वे सब देहाभिमान बढाने वाले होने के कारण परमात्मा से विमुख करने वाले होते हैं। अतः भगवान ने उन्हें ''अज्ञान'' कहा है। उपर्युक्त प्रकरण के प्रकाश में हम अपने बाबा मनोहर दास जी के जीवन को निरखें परखें तो पाते हैं कि ये सम्पूर्ण गुण उनके चरित्र में पूर्ण रूपेण मौजूद थे, आगे संस्मरण खण्ड में हमने एक संस्मरण में वर्णन किया है कि पुरबनीवाली बगीची पर रहने वाला महात्मा भगवान गिरि अब बाबा की तपोस्थली धूना पर आता था तो बाबा उसका बड़ा आदर सत्कार करते थे। अपना आसन उसे बैठने को देते थे। उस महात्मा के मन में ऐसा अहंकार आ गया कि मैं तप और साधना में इनसे बड़ा हूँ। वह बाबा का विशेष सम्मान नहीं करता था। लेकिन एक दिन की घटना ने उसकी आँखें खोल दी और वह बाबा के प्रभाव को जान कर उनका आदर करने लगा। सब कुछ कहने का मेरा मन्तव्य यह है कि हुजूर के जीवन पर गीता ज्ञान का पूर्ण प्रभाव था उन्होंने गीता का अध्ययन ही नहीं किया वरन् उसका मनन और तवानुसार आचरण भी किया। गीता के अध्ययन से वे त्रिगुणातीत हो गये उन्होंने जड़ता से अपने माने हुए सम्बन्ध को तोड़कर जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करली थी। उपर्युक्त ज्ञान के प्रकरण में भगवान ने जिन गुणों का उल्लेख किया है जैसे मानरहित होना अपने में पूज्य भाव या अपने को पुजवाने का भाव नहीं होना, दिखावटीपन का अभाव, अहिंसा, क्षमा, विषयों से वैराग्य अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में समतायुक्त रहना तथा विषयों पुरुषों में प्रीति भाव नहीं होना एकान्त में रहने का स्वभाव तथा ईश्वर को सब जगह अनुभव करना आदि गुण हमारे गुरुदेव में विद्यमान थे।

गुणातीत पुरुष के लक्षण

गीता अध्याय 14 के श्लोक संख्या 20 में भगवान ने अर्जुन को वताया कि जो पुरुष तीनों गुणों का अतिक्रमण कर लेता है वह जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा समस्त दुःखों से रहित होकर अमरता का अनुभव कर लेता है। गुणातीत की ऐसी महिमा को सुनकर अर्जुन के मन में गुणातीत पुरुष के लक्षणों को जानने की जिज्ञासा हुई उसने श्लोक संख्या 21 में प्रश्न किया कि प्रभो–इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है? उसके आचरण कैसे होते हैं? अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर में भगवान सबसे पहले गुणातीत पुरुष के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

प्रकाशं च प्रवृति च मोह मेव च पाण्डव।

न द्वेष्टि सम्प्रवृन्तानि न निवृतानि कांक्षति॥ (गी. 14/22)

भगवान **बोले**–हे पाण्डव! प्रकाश प्रवृति तथा मोह ये सभी अच्छी तरह से प्रवृत्त हो जायं तो भी गुणातीत मनुष्य इनसे द्वेष नहीं करता और ये सभी निवृत्त हो जाये तो वह इनकी इच्छा नहीं करता। कहने का तात्पर्य है कि सत्वगुण का कार्य प्रकाश है। इन्द्रियों और अन्तःकरण की स्वच्छता और निर्मलता का नाम ही यहाँ प्रकाश हैं, जिससे इन्द्रियों द्वारा शब्दादि पाँचों विषयों का स्पष्टतया ज्ञान होता है उसे यहाँ भगवान प्रकाश कह रहे हैं, रजोगुण का कार्य प्रवृत्ति हैं, इसमें लोभ प्रवृत्ति, राग पूर्वक कर्मों का आरम्भ अशान्ति और स्पृहा आदि वृतियाँ पैदा होती हैं। रजोगुण के दो रूप कहे गये हैं–राग और क्रिया इनमें राग तो दुःखों का कारण है। यह राग गुणातीत पुरुष में नहीं रहता परन्तु जब तक शरीर है, तब तक उसमें निष्काम भावपूर्वक स्वतः किया होती रहती हैं, इसी क्रियाशीलता को भगवान ने इस श्लोक में प्रवृत्ति कहा है।

तीसरी मुख्य बात है तमोगुण का कार्य रूप मोह यह प्रमुखः दा प्रकार का कहा गया है (1) नित्य-अनित्य, सत्-असत् कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक न होना (2) व्यवहार में भूल होना। गुणातीत महापुरुषों में पहले प्रकार का मोह तो होता ही नहीं (गी. 4/35) परन्तु व्यवहार में भूल होना अर्थात रस्सी में साँप, मृग तृष्णा का जल, सीपी और अभ्रक में चाँदी का भ्रम होना आदि मोह गुणातीत मनुष्यों में भी हो सकता है, इसी पर विशेष जोर देते हुये यहाँ भगवान कहते हैं कि प्रकाश, प्रवृत्ति एवं मोह इन तीनों के अच्छी तरह प्रवृत डोने पर गुणातीत पुरुष द्वेष नहीं करता और इनके निवृत होने पर इनकी कामना नहीं करता। गुणातीत के लक्षणों को आगे कहते हैं–

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।

गुणावर्तन्ते इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ (गी. 14/23)

जो उदासीन की तरह स्थित है और जो गुणों द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता तथा गुण ही गुणों में बरत रहे है, इस भाव से जो अपने स्वरूप में स्थित रहता है, स्वयं कोई भी चेष्टा नहीं करता–वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

आगे के श्लोकों में भगवान गुणातीत मनुष्या के आचरणों पर प्रकाश डालते हैं–

सम दुःख स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियों धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
माजा पमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः॥
सर्वारम्भपरित्यगी गुणातीतः स उच्यतेः॥ (गी. 14/24-25)

जो धीर मनुष्य सुख-दुःख में समान रहता है स्वस्थः अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित रहता है जो मिट्टी के ढेले, पत्थर एवं स्वर्ण को एक समान समझता हो

जो प्रिय अप्रिय तथा अपनी निन्दा स्तुति में सम हो.जो मान अपमान तथा शत्रु मित्र में समान भाव वाला हो जो सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ का त्यागी हो ऐसा मनुष्य गुणातीत कहा जाता है।

उपर्युक्त प्रकरण को लिखने का मेरा तात्पर्य यह है कि महात्मा मनोहर दास जी महाराज त्रिगुणातीत थे और उनको इस अवस्था में पहुँचाने वाली श्री मद्भगवद् गीता ही है–जिससे वे अपने साधना काल में प्रमुख अध्येता रहे। गीता के अध्ययन के फलस्वरूप उनमें समस्त देवी गुणों का विकास हो गया था, जिन्होंने उन्हें ब्रह्म प्राप्ति का पात्र बना दिया था। भगवान ने दैवी सम्पदा को मुक्ति दायिका और आसुरी सम्पदा को बन्धनकारिणी तथा अधोगति का मूल कहा है। मुक्तिदायिका दैवी सम्पदा के वारे में भगवान का मत देख लेने का भी शुभ अवसर न छोड़ते हुये हम यहाँ उसका उल्लेख करना भी समयानुकूल समझते हैं–

गीतोक्त देवी सम्पदा

अध्याय 16 में प्रथम श्लोक से लगायत श्लोक संख्या 3 तक भगवान ने इन दिव्य गुणों का जो मोक्षदायक हैं तथा जिनमें इनका अभाव होता है वह असुर माना गया है तथा अद्योगति का पात्र माना गया है। अतः भगवान कल्याणकारी देवी गुणों का सरल एवं संक्षिप्त शैली में वर्णन करते हैं अपने भक्त एवं सखा अर्जुन एवं विश्व कल्याणार्थ इन गुणों का भगवान ने वर्णन इस प्रकार किया है–

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर पैंशुनम।

दया भूतेप्व लोलुप्त्व मार्दवं ह्रिचापलम्॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचम्द्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ (गी. 16/1-3)

भगवान ने कहा कि–सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति, सत्विकदमान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, कर्तव्य पालन के लिए कष्ट सहना, शरीर-मन वाणी की सरलता, अहिंसा, सत्यभाषण, क्रोध न करना, संसार की कामना का त्याग, अन्तःकरण में राग द्वेष जनित हलचल का न होना चुगली न करना, प्राणियों पर दया करना, सांसारिक विषयों में न ललचाना, अन्तःकरण की कोमलता, लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा, चपलता का अभाव।

तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर की बाहर भीतर की शुद्धि, वैर भाव से रहित मान को न चाहना, ये सभी दैवी सम्पदा को प्राप्त मनुष्य के लक्षण हैं। उपर्युक्त तीनों श्लोकों में जो बात कहीं है भगवान ने उन्हें कई वार अन्य अध्यायों में प्रकारान्तर से कहा है। जिस बात को उन्होंने कई वार दोहराया है कहीं स्थित प्रज्ञ के लक्षणों के रूप में तथा कहीं अपने सिद्ध भक्तों के लक्षणों के रूप में तो कहीं दैवी सम्पदा के रूप में ये बातें हमारे जीवन को उन्नत करने तया सदा-सदा को बन्धन से मुक्ति दिलाने वाली है। अपने जीवन को गीतोक्त मार्ग पर ढालने वाले बाबा मनोहर दास ने उपर्युक्त सदगुणों को अपने जीवन में स्थान दिया तथा जीवन्मुक्त हो गये। उनके दिव्य चरित्र से शिक्षा ग्रहण करके उनके बताये मार्ग पर चलकर हमें भी अपना कल्याण कर लेना चाहिए।

हमने पूर्व अध्यायों में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि हुजूर के अध्यात्मिक विचारों पर श्रीमद्भगवद गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है उसी को इस अध्याय में उदाहरण सहित स्पष्ट किया है। गीता जैसा गूढ गम्भीर ग्रंथ जो उपनिषदों का सार कहा गया है प्रमुखतः साधन की करण निरपेंक्ष शैली को प्रधानता देता है तथा उसी करण निरपेक्ष शैली को बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज ने अपनी साधना का आधार बनाते हुए सिद्धावस्था प्राप्त की थी। अतः गीता की करण निरपेक्ष शैली की कुछ चर्चा करें।

परमात्म तत्व की प्राप्ति हेतु साधन शैलियाँ

परमात्मा की प्राप्ति हेतु साधन की प्रायः दो शैलियों का वर्णन वेद शास्त्रों और अन्य धर्म ग्रन्थों में पाया जाता है। पहली करण-सापेक्ष शैली और दूसरी करण निरपेंक्ष शैली जिसे शैली में अन्तःकरण अर्थात मन बुद्धि चित्त आदि जड़ साधनों की सहायता से साधना की जाती है उसे करण सापेक्ष शैली तथा जिसमें "स्वयं" की प्रधानता रह जाती है अर्थात् जिसमें जड़ता का त्याग किया जाता है और साधना का प्रमुख आधार स्वयं चेतन आत्मा होता है उसे करण निरपेक्ष शैली कहा जाता है। इन दोनों ही साधन शैलियों से परमात्म तत्व की प्राप्ति करण निरपेक्षता से अर्थात् जड़ता का त्याग करने से ही होती है। करण सापेक्ष साधन से भगवत प्राप्ति में देर लगती है, जब कि करण निरपेक्ष शैली का साधक जल्दी सिद्धि प्राप्त करता है।

योगी की सिद्ध के लिए गीता में करण निरपेक्ष शैली को महत्त्व दिया गया है जब कि पातंजति योग दर्शन में योग की सिद्धि के लिए करण सापेक्ष शैली को आधार बनाया है। परमात्मा में मन लग गया तो ठीक है पर मन नहीं लगा तो कुछ नहीं। मन जड़ है परमात्मा चेतंन स्वरूप है, चेतन तत्व की प्राप्ति जड़ता के सहयोग से सम्भव नहीं। उसके लिए चेतन जीव को स्वयं ही परमात्मा से जुड़ना होगा। करण-निरपेक्ष शैली में किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं। क्यों कि सारे अभ्यास जड़ साधनों के द्वारा होते हैं। करण निरपेक्ष शैली में मन बुद्धि से साजन्ध

विच्छेदपूर्वक परमात्मा के साथ स्वयं का सम्बन्ध है। करण निरपेक्ष शैली में अभ्यास की आवश्यकता नहीं है। कारण कि स्वयं का परमात्मा के साथ स्वतः सिद्ध नित्य सम्बन्ध अर्थात् नित्य योग है ही। करण सापेक्ष शैली में अपने लिए साधन करने अर्थात् भाव को प्रधानता कही गई है।

बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज की साधन पद्धति-करण निरपेक्ष थी। बाहारी तीर्थ, व्रत, भजन, ध्यान, कथा, कीर्तन तथा माला तिलक आदि बाह्य वेश का उन की साधना में कोई स्थान न था, क्योंकि ये सब काम जड़ता का सहारा लेकर ही सम्पन्न होते हैं।

साधन की जो पद्धति बाबा ने अपनाई थी वह सभी जीवों को चाहे वे किसी देश वेश या सम्प्रदाय के क्यों न हो उपयोगी एवं कल्याणकारी है। इसमें किसी विशेष योग्यता या परिस्थिति की आवश्यकता नहीं। केवल अपने अन्दर भगवत् प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा होनी चाहिये। उत्कृष्ट अभिलाषा से तत्काल जड़ता से सम्बन्ध विच्छेद होकर नित्य प्राप्त परमात्मा तत्व का अनुभव हो जाता है। कमरे में चाहे कितने ही वर्षों का अन्धेरा हो एक माचिस को जलाते ही वह नष्ट हो जाता है ठीक इसी प्रकार जडता के साथ कितना ही पुराना सम्बन्ध हो उत्कट अभिलाषा होते ही वह मिट जाता है। उत्कृष्ट अभिलाषा करण-सपेक्षता से होने वाली समाधि से भी ऊँची चीज है। उँचो से उँची निर्विकल्प समाधि का भी आरम्भ और अन्त होता है। जब तक आरम्भ और अन्त है तब तक जड़ता से सम्बन्ध है। जड़ता से सम्बन्ध हटते ही मनुष्य को तत्काल भगवान से नित्य योग का अनुभव हो जाता है। जिस परमात्मा से जीव का नित्य योग है उसकी उसे विस्मृति हो रही है। सिर्फ उधर दृष्टि डालने की आवश्यकता है, लेकिन सांसारिक सुख की कामना आशा और भोग के कारण जीव की उधर दृष्टि जाती ही नहीं। जब तक सांसारिक भोगों और उनके संग्रह में जीव लगा हुआ है तब तक उसे अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति सम्भव नहीं। नाशवान् पदार्थों की जो प्रियता भीतर बैठी हुई है, वह प्रियता भगवान के स्वतः सिद्ध सम्बन्ध को समझने नहीं देती। हुजूर ने अपने तन-मन तथा बाहरी संसार की सब प्रकार की जड़ता का त्याग कर स्वयं को उस पर तत्व में (लीन होकर उस परम तत्व में) जोड़ दिया था तथा उस परम तत्व में लीन होकर पर शान्ति का अनुभव अपने जीवन काल में ही कर लिया था। यह सब श्रीमदभगवद गीता के स्वाध्याय का ही महान प्रभाव था।

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

अध्याय-14

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

दार्शनिक विचार एवं आध्यात्मिकता

हुजूर को रहनी सहनी और उनकी वाणियों के आधार पर हम उनके दार्शनिक विचारों को समझ सकते हैं। वे ईश्वर को निर्गुण निराकार तथा घट-घट का वासी मानते थे। उनका लौकिक ज्ञान भी बहुत विस्तृत था। वे पाखण्डों अन्धविश्वासों और रूढियों से मुक्त थे। उनकी दृष्टि में ईश्वर का निवास ऊँच-नीच अच्छे-बुरे सभी व्यक्तियों के हृदय में है। उनके विचारों में एक अनौखा रहस्यवाद, दार्शनिक चिन्तन एवं आध्यात्मिकता दिखाई देती थी। उन्होंने जीव और ब्रह्म के बीच मोह (माया) को व्यवधान बताया। उन्होंने पूर्ण रूपेण अनासक्त रहकर परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त किया वे गुरु कृपा को सर्वोपरि मानते थे। यहाँ तक कि वे ईश्वर को गुरुदेव के रूप में मानकर उनकी अखण्ड ध्यान वृति से उपासना करते थे। वे मानते थे कि निर्गुण निराकार ईश्वर का प्रथम प्रकटीकरण गुरुदेव के रूप में साकार होता है। गुरु कृपा से ही जीव 'शिव' हो जाता है गुरु कृपा से ही उस 'अलख' परमतत्व का बोध होता है। उनकी प्रार्थना में सर्व प्रथम "निरंजन" (मायारहित अविकारी ब्रह्म) का नमस्कार किया गया है–

"निरंजन को नमस्कार है,

नमो गुरुदेवजी को,

गनपति और फनपति,

सरस्वती जी को प्रनाम् है।"

इस प्रकार निर्गुण निराकार ईश्वर जो संसार में जड़ चेतन सभी में समान रूप से व्याप्त है जब सगुण साकार रूप लेता है तो गुरुदेव के रूप में जीवों का उद्धार करने का अवसर लेते हैं–

बन्दउ गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि"

महा मोह तम पुंज, जासुवचन रविकर निकर॥

उनका यह विचार था कि अज्ञान (अविद्या) के कारण ही जीव अपने "शिव-रूप को भूला हुआ है जब गुरु कृपा से इसके अज्ञान का निवारण हो जाता है तो यह जीव ही अपने सहज स्वरूप जो "चेतन अमल सहज सुख रासी" है, का अनुभव कर लेता है।

बाबा महाराज निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा से विशेष प्रभावित लगते हैं। वे अक्सर कबीर, नानक आदि भक्ति कवियों के पदों का गुनगुनाया करते थे। उनके विचार से आत्मा एवं परमात्मा न्यारे-न्यारे न होकर एक ही हैं। यह संसार मिथ्या एवं स्वप्नवत् है, जब तक अज्ञान है तभी तक यह सत्य सा लगाता है। गुरुकृपा से ज्ञानोदय होने पर इस संसार की असारता का भान हो जाता है और उसे परमतत्व का बोध हो जाता है। हुजूर साधना को ईश्वर प्राप्ति के हेतु बहुत ही आवश्यक मानते थे उनका मत था कि मानव देह बन्धन और मोक्ष का एक मात्र साधना (स्थान) है, विषय भोगों से आसक्ति हटाकर मन तथा इन्द्रियों को वस में करके जब साधक साधना करता है तो उसकी आत्मा से मल, विक्षेप एवं आवरण दोष दूर होकर वास्तविव तत्व का बोध हो जाता है। लेकिन ज्ञान साधना का पथ अत्यन्त अगम और कठिन है। जब तक द्वैत है तब तक ज्ञान नहीं। जब जीवात्मा द्वैतभाव समाप्त करके आगे साधनारत है तो उसे ज्ञान प्राप्त होता है। जब मन का भ्रम (अज्ञान) दूर होता है तो उसे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

बाबा मनोहरदास जी महाराज का चिन्तन अद्वैत वेदान्त दर्शन से पूर्ण रूपेण प्रभावित जान पड़ता है। उनके स्वाध्याय ग्रन्थों में श्री मद्भगवद्गीता'' एवं उपनिषदों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्हें गीता के सैकड़ों श्लोक कंठस्थ थे। एकेश्वरवाद के अनुसार वे ब्रह्म, अल्लाह राम, रहीम आदि अनेक रूपों में एक ही सत्ता को स्वीकार करते थे तथा जीवात्मा एवं परमात्मा की सहज एकता को मानते थे–''तू खुद ही खुदा है''। माया एवं अज्ञान के कारण हमारी एकता में विघ्न आकर अनेकता का भाव आता है। जीवात्मा अपने को ईश्वर से भिन्न मानकर सुखी दुःखी होता रहता है। उनके मतानुसार न सुख है न दुःख न स्वर्ग है न नर्क यह सब अज्ञान से कल्पित है। वे ''अलख पुरुष'' के उपासक थे। उनके अनुसार घट-घट वासी परामात्मा का स्वरूप आश्रित पदार्थ के अनुसार भले ही मान लिया जाए लेकिन यह धारणा लौकिक है ईश्वरीय स्वरूप तो अलौकिक तथा अतीव सूक्ष्म है।

गुरुदेव बाबा साहव की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अनुभूतियाँ बड़ी ही रहस्य से भी भरी हुई थीं। उनके विचार इतने परस्पर विरोधी से जान पड़ते थे कि उनकी दार्शनिक विचार धारा का स्पष्ट निरूपण करना मुझ जैसे अल्पज्ञ के वस की बात कहाँ? कभी-कभी सूफियों जैसी विरह की पीर से ईश्वरीय प्रेम की बातें करते, कभी अद्वैत वेदान्त की एकता में मस्त हो जाते, कहीं-कहीं उनकी वाणियों से उनका साधनात्मक रहस्यवादी रूप प्रकट होता। प्रमुख रूप से निर्गुण ज्ञानाश्रयी भक्ति धरा से प्रभावित उन्होंने निराकार ईश्वर की भक्ति को अपनाया था। वे कहा कहा करते कि–''साधना के लिए मनुष्य के लिए अपने मन एवं आचरण को पवित्र करना होगा। माया मोह एवं अहंकार के कारण जीवात्मा भक्ति के सूक्ष्मत्त्व को नहीं जान पाता। बाहरी आडम्बरों और पाडित्याभिमानी लोगों को ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। उन्होंने सतसंग को भी ईश्वर की आराधना में बड़ी सहायक बतलाया है।

संतों की (तत्ववेत्ताओं) की संगत से प्राणी सहज ही आत्मतत्व का सम्मलेता है, संतों के अन्दर निम्नलिखित गुणों को आवश्यक बतलाया–

दोहा– *दया गरीबी बन्दगी, समता शील स्वभाव।*

ऐसे लक्षण साधु के, कहै कबीर विचार॥

इस दोहे को बोलकर वे कहा करते कि अब तक हमारे हृदय में, दयाभाव, दीनभाव (नम्रता) तथा नित्य नियम से ईशअराधना (नाम जप) का अभ्यास तथा सभी प्राणियों में समान भाव (समता के साथ शील स्वभाव (अहंकार शून्यता) नहीं होगी तव तक हम साधक कोटि में नहीं आ सकते। उन्होंने सच्चे संतों के संसर्ग को मोक्ष का द्वारा वतलाया और दुर्गुण दुराचारियों की संगत को नर्क का मार्ग बतलाया–

''संतसंग अपवर्ग का, कामीभव कर पंथ''

कि संतों की संगत मोक्षदायिका है और कामी, विषयी लोगों की संगत वन्धन और पतन की करने वाली है साधकों के उपदेश हेतु वे एक पद वोला करते थे–

दीनताई दया और नम्रताई दुनिया बीच,

बन्दगी से प्यार राख भूखे को खिलाएगा।

चार बीसी चार से, बचेगा तू मेरे यार,

साधुअन की संग से तू बड़ा सुख पाएगा।

वेद अरु पुरान सब, कहते हैं जमान भऐ,

संकट हूँ न आवै जमत्राशहुँ न पावेगा॥

उद्धव जी विचार देखो, औसर न बारबार।

बड़ी सरकार का सलूक काम आवेगा॥

इस वद में साधकों के लिए एक आचार संहिता है और सतसंग की महिमा का बखान किया गया है साधुओं और परमार्थ के खोजियों को चाहिये कि अपने अन्दर दैवी गुणों का विकास करे इस संसार को ईश्वर का ही प्रति रूप मानते हुए जीव मात्र की सेवा में लगे रहे। अपने हृदय में दीनता एवं दया का भाव साथ ही अहंकार को त्याग कर नम्रता का गुण धारण करे। बन्दगी से प्यार'' अर्थात् भगवान के भजन को अधिक से अधिक समय तक, हर क्षण ईश्वर की याद में बिताना ही बन्दगी से प्यार रखना है। जो हर क्षण सोते जागते एवं अन्य संसारी व्यवहार के समय भगवान के नाम का जप करता है, उसे तत्काल सिद्धि प्राप्त होती है। बाबा महाराज भूखे को भोजन कराने के समान संसार में कोई पूण्य नहीं मानते थे। भूखे को खिलाएगा पद पे यह स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि अन्नदान को वे बहुत

महत्त्व दिया करते थे। स्वयं भी अपने लिए आया भोजन दूसरे भूखे टूटे को खिला दिया करते थे। जो भी भेंट रूप सामग्री फल, मिठाई या अन्य वस्तु आया करती, उसे आप दूसरा को ही बाँट दिया करते थे।

इस प्रकार भगवान की बन्दगी एवं भूखे प्यासे प्राणियों की सेवा का फल ''चार बीसी चार से बचेगा तू मेरे यार अर्थात् कर्मानुसार प्रारब्ध भोग के निमित्य मिलने वाली 84 लाख योनियों से मुक्त होना बतलाते थे चार बीसी चार अर्थात् 20×4 = 80 और + 4 = 84 के फन्दे से बचना। जन्म मरण से मुक्त होकर बन्धन से मुक्त हो जाना बतलाते थे। साधु संगत परम कल्याणकारी होती है इस पद में यह बात स्पष्ट रूप से बतलाई गई है कि साधुओं और संतों की संगत से मनुष्य अनेक संकटों से मुक्त हो जाता है और उसका आवागमन जन्म मरण का चक्र समाप्त हो जाता है, उसे यम का भय नहीं रहता है। इस बात को वेद और पुराण भी साक्षी के रूप में कहते हैं। मानव देह बार-बार नहीं ''मिलती औसर न वार वार'' कह कर इसी को बतलाया गया है। मनुष्य को इस बात को समझ लेना चाहिए–

कबहुँक करि करुना नर देही।

देत ईस बिनु हेत सनेही॥

नर तन भव वारिधि कहुँ बेरो।

सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

भगवान जीवन पर परम कृपा करके इसे मानव देह देते हैं उस देह को पाकर सद्गुरु के उपेदेशानुसार वह साधना करता है अपने अन्दर दिव्य गुणों का संचार करके शुद्ध सत्वमई होकर दया, करुणा, अहिंसा, परोपकार जैसे दिव्य गुणों को धारण कर भगदान के नाम का जप करता हुआ भगवान का ही रूप हो जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि मानव देह ही मुक्ति का साधन है, इसके समान और कोई देह नहीं–

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।

जीव चराचर जाचत तेही॥

नरक स्वर्ग अपवर्ग जिसेनी।

ज्ञान विराग भगति सुध देनी॥

इसलिए मानव देह जो बहुत ही श्रेष्ट देह है जिसे चराचर जीव चाहते हैं एक बार मिलने पर जो सुख मिलना दुर्लभ है मनुष्य को व्यर्थ ही नहीं गवानी चाहिए। वरन् इससे भगवान का भजन ही करना इसका सर्वोत्तम उपयोग है। इस नर तन को पाकर भी जो भगवान का भजन नहीं करता और विषय भोगों के भोग में ही

इसे लगाते हैं उससे अधिक मूर्ख और अभागा कोई नहीं क्योंकि –

नर तन पाई विषय मन देहीं।

पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

इसी प्रकार "उद्धव जो विचार देखौ औरस न बारबार" अर्थात् मुक्ति का अवसर बार-बार नहीं मिलता हमें मनुष्य देही पाकर ईश्वर के चिन्तन, मनन, भजन ध्यान के अतिरिक्त कुछ नहीं करना चाहिए क्योंकि यह संसार स्वप्न के समान झूठा (मिथ्या) असार एवं क्षण भंगुर है इसके विषयों में अपने मन बुद्धि को नहीं लगाना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट आदेश दिया है कि–

मय्येव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव, अतः ऊर्ध्वं न संसयः। (गी. 12/18)

हे अर्जुन तू मेरे में ही मन को लगा, मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं। अतः हमें अपने कल्याणार्थ मिले मन बुद्धि को भगवान में लगाना चाहिए, क्योंकि यह अनित्य है, अभी है कुछ समय पश्चात् यह नहीं रहेगा। यह शरीर इस संसार से ही प्राप्त होता है, इसका कारण यह सकार हो जब अनित्य और सुख रहित है तो इसका कार्य यह देह नित्य और सुखदायक कैसे हो सकता है। अतः इसको पाकर इसका सर्वोत्तम उपयोग भगवान का भजन ही है। भगवान श्रीकृष्ण जी गीता में अर्जुन के माध्यम से हम सब मनुष्यों को यह उपदेश करते हैं कि

अनित्यमऽसुखं लोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम्॥

तू सुख रहित और अनित्य (क्षण भंगुर) लोकम मनुष्य शरीर को) प्राप्त करके निरंतर नेरा ही भजन कर अर्थात् मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है, परन्तु है नाशवान और सुखरहित इसलिए काल का भरोसा न करके तथा अज्ञान से सुखरूप भासने वाले विषय भोगों में न फंसकर निरंतर मेरा ही भजन कर॥

मन्मना भव मद्मेक्तोमद्धाजी मां नमस्कुरु।

नामेवेष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्पशयणाः॥ (गी. 9/34)

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

अध्याय-15

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

वीतराग शिरोमणी संत

बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज वीतराग शिरोमणी महात्माओं में से एक थे। वे ऐसे उच्चकोटि के महापुरुष थे जिन्होंने गीतोक्त दैवी सम्प्रदा के गुणों का आत्मसात करके परमानंद की प्राप्ति की थी। ऐसे महापुरुषों के चिन्तनमात्र से ही चित्त शुद्ध होकर परमात्मा में लीन होने लगता है तथा मानव मन को अपार शान्ति प्राप्त होती है। महर्षि पातंजलि ने अपने योग्यदर्शन में चित्त निरोध का साधन बतलाते हुए एक स्थान पर कहा है–

वीतराग विषयं चित्तम्'' (योगदर्शन 1-37)

इसका भावार्थ है कि जो महापुरुष वीतराग विषयासक्ति रहित है, उनका चिन्तन करने से चित्त का निरोध हो जाता है। जिन महानुभावों ने गुरुदेव का संग किया, उनसे वार्तालाप किया, तथा उनका सेवा का लाभ लिया उन सबका यही कहना है कि उनके सानिध्य में हमें अपार शान्ति का अनुभव होता था। वे वैराग्य के मानो अवतार ही हैं, उनके जीवन में ''राग'' नाम की कोई वस्तु न थी। राग रजोगुण से उत्पन्न होता है, लेकिन गुरुदेव त्रिगुणातीत थे। उन्होंने इस गुणमयी संसार की प्रत्येक वस्तु से अपने मन को हटा लिया था। वे जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओं एवं तीनों गुणों से अलग तुर्यावस्था में स्थित योगी थे। इन तीनों अवस्थाओं एवं तीनों गुणों में जो आकर्षण है जो मिथ्या आनंद का आभास है। उसका उन्होंने त्याग किया था। वे सच्चे अर्थों में परम वैराग्यवान् महा पुरुष थे। रामचरितमानस में अपने अनुज श्री लक्ष्मणजी को परमैवराग्यवान पुरुष का लक्षण बतलाते हुए श्री रामजी का कथन है–

कहिअ तात सो परम् विरागी।

तृन समसिद्धि तीन गुन त्यागी॥

जो तिनके के समान सब सिद्धियों को तथा तीनो गुणों का त्याग करके वही परम वैराग्यवान है। गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी के जीवन में ''राग-सर्वथा समाप्त हो गया था। वे परम ज्ञानी महान भगवद्भक्त थे। जिस पुरुष ने अपने जीवन में राग को तिलांजलि देकर अपने जीवन को वीतराग बना लिया हो वही सच्चा ज्ञानी है क्योंकि हमारे जीवन में राग अज्ञान की उपस्थिति का परिचायक है। अगर हमने महात्मा का वेश धारण कर जीवन से राग को दूर नहीं किया तो ये एक बहुत

हास्यास्पद स्थिति होती है। अक्सर देखा जाता है कि कुछ लोग बाह्याडंम्बर करके साधु का वेश तो धारण कर लेते हैं लेकिन उनके जीवन में अहंता, ममता और आसक्ति पूर्ववत डेरा जमाएँ रहती है, वैराग्य कोसों दूर भी नजर नहीं आता उनका मन विषय भोगों में पूर्ववत रचापचा रहता है, वे समाज में उपहास के पात्र होते हैं। वास्तव में सन्यास शब्द का अर्थ है "त्याग" बिना त्याग (वैराग्य) के कोई भी सन्यासी नहीं हो सकता केवल वेश धारण मात्र से कोई साधु सन्यासी नहीं हो जाता उसे जिस तत्व की परम आवश्यकता है वह है वैराग्य वृत्ति" और यह मुख्य तत्व हमारे गुरुदेव में पूर्णरूपेण देखने को मिलता था। जब कोई साधु सन्यासियों की (भगवावेश धारियों की) जमात हुजूर के यहाँ से गुजरती थी तो आप अपनी अटपटी भाषा में कहा करते थे, "कि डूडू! देख्र तोय, रँगे स्यार दिखाउँ"। वे ऐसे लोगों को रँगे स्यार की उपाधि दिया करते थे जो समाज को ठगने के लिये विविध प्रकार का स्वरुप धारण करते हैं तथा एक प्रकार के पाखण्ड का सहारा लेकर धर्मकर्म की आड में संसार को धोखा देकर धन को ठगते हैं समाज के लोगों की धार्मिक भावनाओं को अपने हित में भड़काकर तथा उनकी श्रद्धा भक्ति का अनुचित लाभ उठाकर उनको ठगते रहते हैं। संसार को ज्ञान वैराग्य के उपदेश देकर खुद विविध प्रकार के भोगों को भोगते हैं। लाखों रुपये अपने पास संग्रह कर लेते हैं। गुरुदेव इस प्रकार के लोगों साधुनामधारी समाज के लिए कलंक और समाज का दुश्मन समझते थे। गुरुदेव का कहना और मानना था कि वैराग्य बिना ज्ञान कैसा? तथा ज्ञान और वैराग्य के बिना कैसी भक्ति। चाहे भक्त हों चाहे ज्ञानी वैराग्य के बिना सब व्यर्थ है-

सवनप भए जोग उपहासी।

जैसे विनु विराग सन्यासी॥ मानस बा. ॥

जिस साधक के हृदय में राग द्वेष हैं तथा वैराग्य एवं समता का अभाव है वह सोचनीय स्थिति में है उसे कभी भी अपेक्षित सिद्धि नहीं मिल सकती है। क्योंकि ये ही साधना के महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारे गुरुदेव तो मानो साक्षात् वैराग्य की प्रतिमूर्ति थे। उनके मन, वचन और समस्त क्रियाओं में वैराग्य को स्पष्ट झलक देखने को मिलती थी। प्रत्येक जीव अपनी इन्द्रियों की तृप्ति दायक भोग पदार्थों की तलाश में रात-दिन अपने अमूल्य जीवन को बर्बाद किये जा रहा है। लेकिन बिना प्रारम्भ विधान के उनकी प्राप्ति प्रत्येक को सम्भव नहीं हो पा रही है। हमारी कामनाएं पूरी नहीं हो पा रही है, दूसरे शब्दों में जो हम चाह रहे हैं जो हमारी अभिलाषा है, वह पूरी नहीं हो पा रही है यही हमारी अशान्ति का मूल कारण है। लेकिन जिन्हें कुछ नहीं चाहिए जिन्होंने अपनी सारी कामनाओं को समाप्त कर दिया है, जो सर्वथा ममता से रहित है तथा अहंकार शून्य है, वे परमशान्ति के अधिकारी हैं। हमारे गुरुदेव शाश्वत शान्ति को प्राप्त महात्मा थे, वे हनेशा भगवन्नाम् के जप में मग्न तथा सांसारिक प्रपंच से दूर अखण्ड आनंद महासागर में निमग्न

रहा करते थे। तप, उनके जीवन का एक अभिन्न अंग था। 'तप' भोगों से अपने मन को विमुख रखना तथा प्रारब्ध के भोगं को भोगकर समाप्त कर पुनः मरणदायी कर्मों से दूर रहना उनकी जीवनचर्या का एक अंग वन गया था।

''गुरु गुरु जप रे, यही तेरा तप रे।''

जिन लोगों को तप, त्याग से लगाव नहीं, केवल संसार वंचना हेतु साधु सन्यासी का रूप धारण कर विषय भोगों में रुचि अधिक है वे वास्तव में सोचनीय है–

वैखानस सोई सोचै जोगू।

तपुविहाई जेहि भावे भोगू॥ मानस अयो. ॥

हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपना सम्पूर्ण जीव तप त्याग एवं भगवद्भजन में ही व्यतीत किया था, उनके मन एवं बुद्धि से लोगों के संस्कार सर्वथा समाप्त हो गये थे। उन्हें इस संसार के नश्वर भोगों की कतई चाह नहीं थी, उन्होंने अपने अन्तःकरण को वश में कर लिया था तथा उसे परमात्मा में लीन कर दिया था। आपने, अपने मन को किसी भी कामना को जीवित नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि मन को वाहरी दौड़ को समाप्त कर उसे अन्तर्मुखी बना लिया था, वे सच्चे अर्थों में शहंशाह थे–

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ वेपरवाह।

जिनकों कछू नहिं चाहिये वे शाहन्के शाह॥

उनके मतानुसार जब तक किसी व्यक्ति के मन में कामनाओं की अविरल लहरें उठ रही है तब तक उस मनुष्य को सुख कहाँ जीवन में जब सन्तोष आ जाए तब कहीं समझो कि अब जीवन में सुख शान्ति का आगमन होने वाला है। जब तक मानव मन में विविध प्रकार की कामनाएं डेरा जमाएं रहती हैं, तब तक वह चंचल और दुःखी रहता है। एक कामना पूरी होने के पश्चात् जीव सुखी नहीं होगा, क्योंकि उसके स्थान पर अब दूसरी कामना आ धमकती है। इस प्रकार जीवन पर्यन्त विविध प्रकार की कामनाएं आती जाती रहती हैं और यह अविनाशी जीव कभी सम्पूर्णता से सुखी एवं शान्त नहीं हो पाता। हमारे गुरुदेव ने सन्तोष को खड़ग से समरत कामनाओं को समाप्त कर दिया था वे सच्चे अर्थों में योगी थे उन्होंने अपने मन एवं इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण शरीर को अपने वश में किया हुआ था तथा अपने मन बुद्धि का विश्वासपूर्वक ईश्वर में लगा दिया था–

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।

मय्यार्पित मनो बुद्धियों भद्भक्तः समेप्रियः॥ (गी. 12/14)

योगी पुरुष हमेशा सब परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहा करते हैं तथा मन-बुद्धि तथा इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण शरीर उनके नियंत्रण में रहता है। किसी भी प्रकार का दुर्गुण दुराचार उसके मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों में प्रवेश नहीं कर सकता है। उसकी बुद्धि में एक परमात्मा की अटल सत्ता रहती हैं, उसकी बुद्धि विपर्यय और संशय दोष से सर्वथा रहित होती है। उसका केवल परमात्मा में ही दृढ़ विश्वास होता है, ऐसा होते ही उसके मन और बुद्धि स्वयमेव भगवान में लग जाते हैं। ऐसा सिद्ध भक्त भगवान को अपनी आत्मा के सदृश्य प्यारा होता है, क्योंकि वह भक्त भगवान को अपनी ही आत्मा में तदाकार समझते हुए उसका भजन करता है। जब भक्त भगवान को सर्व समर्पण भाव से अपनी आत्मा मान लेता है और उसकी शरणागति ग्रहण कर लेता है तो ऐसे भक्त के लिए भगवान भी अपना हृदय स्थल खोल देते हैं, उसे अपनी आत्मा में लीन कर लेते हैं, गीता में उन्होंने अपना सिद्धान्त वर्णन करते हुये कहा है–

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (गी. 4/11)

"अर्थात् जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे ठीक वैसे ही भजता हूँ। रामचरित मानस में भगवान ठीक इसी प्रकार के भाव प्रकट करते हैं–

दोहा *पुरुष नपुसंक नारि वा, जीव चराचर कोई।*
सर्व भाव भजकपट तजि, मोहि परम प्रिय सोई॥

(मानस उ. 87)

इस प्रकार भगवान भक्तों के हृदयानुसार उन्हें अभेद भाव से प्रेम करते हैं। लेकिन जिस मनुष्य को सांसारिक कामनाएँ शान्त नहीं हुईं, उसके हृदय में सन्तोषादिक गुणों का शुद्ध अभाव रहता है और उसे भगवान को प्राप्त न होकर इस नश्वर संसार के दुःखों को प्राप्त होती है। उसका मन कामनाओं की पूर्ति न होने के कारण सदैव दुःखी रहता है। प्रत्येक सांसारिक जीव के दुःखों का मूल कारण उसकी अनन्त इच्छाएँ हैं। जो कभी भी पूर्ण नहीं होंगी, क्योंकि किसी की भी सम्पूर्ण कामनाएँ आज तक न तो पूरी हुई हैं न भविष्य में होंगी, क्योंकि उनका समुद्र तरंगवत अंत नहीं। हमारे गुरुदेव वीतराग शिरोमणि महान् पुरुष थे उन्होंने संतोषरूपी धन का संग्रह किया था, जो संसार के समस्त धनों से श्रेष्ठ है–

दोहा *गोधन गज धन बाजि धन और रतन धन खान।*
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

इस प्रकार सन्तोष के आते ही समस्त कामनाओं का अन्त हो जाता है और जीव पूर्ण सुखी हो जाता है–

सो. *बिन सन्तोष न काम नसाहीं।*
काम अछत सुख सपने हूँ नाहीं॥

अतः जो अपनी कामनाओं को सन्तोष के खड़ग से काट फैंकता है, वही जीव वास्तविक शान्ति को प्राप्त होता है–

विहाय कामान्य सर्वान्पुमांश्चरति निःसपृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिर्माधगच्छति॥ (गी. 2/71)

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर, ममता रहित और अहंकार रहित, सपृहा रहित हुआ बर्तता है; वह शान्ति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपने हृदय से सम्पूर्ण इच्छाओं को समाप्त कर स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो गये थे तथा हम संसारी जीवों को साधना का आलोकमय पथ प्रदर्शन किया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

❑❑❑

अध्याय-16

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

सर्वात्मवादी सच्चे महात्मा

बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज ने मत मतान्तरों के झगड़ों को सर्वथा त्याग दिया था और ''सर्वात्मावाद'' को अपना लिया था, तो उन्हें कण-कण में गुरुमहाराज के दर्शन होते थे, उनकी दृष्टि में ''कंकर-कंकर शंकर'' था। कभी-कभी विचरण करते समय उन्हें कोई पशु या पक्षी की हड्डी दिखाई दे जाती तो उसे'' गुरुजी की हड्डी कहते हुए उठा लेते और अपने आश्रम पर ले आते उसे जल तथा दूध से स्नान कराके वड़े प्रेम से अपने पास रखते थे। उनका एक भक्त अपने संस्मण सुनाते हुए कहता है–

''एक बार कोटापट्टी के बांध पर जंगल में 'हुजूर' अपनी धुन में चले जा रहे थे, उनके पीछे-पीछे में (बौलत पहलवान) चला जा रहा था। अचानक एक पशु की हड्डियों का सूखा ढांचा दिखाई पड़ा। बोले–''अरे छोरा! यह गुरुजी की हड्डी है इसे उठा'' मैंने आज्ञा का पालन किया और एक डलिया में उन्हें भर लिया। धूना पर लाकर पहले दामोदर जी महाराज के कुएं के जल से स्नान कराया तथा दूध से स्नान कराके अपने आश्रम में रख लिया। उन्हें किसी मजहब से पक्षपात नहीं था उनकी शिक्षाएँ सर्वजनीन थीं। वे हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई सेवकों के लिए एक दृष्टि से देखते थे। सभी धर्मों के लोग उन्हें एक सच्चे फकीर की तरह आदर देते थे। उनका सम्मान करते थे। उनकी वाणियों को सुनकर धन्य होते उनके सत्संङ्ग से लाभ उठाते थे। प्राणी मात्र का कल्याण कर उन्हें सुखी करना और हनेशा ईश्वर के चिन्तन में मग्न रहते ही उनका मजहव था। ऐसे समदर्शी और सर्वात्मावदा महापुरुष इस संसार में बड़े दुर्लभ होते हैं, उनकी रहनी-सहनी सीधी सरल एवं उनके विचार भी सीधे सरल तथा अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए सूर्य प्रभावित थे, वनावटीपन तथा दिखावा उनके जीवन में कभी नहीं देखा गया उनके व्यक्ति ज्यों-ज्यों ऊपर उठता है उसके साथी ही बाहरी आडम्बर समाप्त होता जाता है वे सच्चे अर्थों में महान संत थे क्योंकि उनके विचारों की उच्चता के साथ ही सादगी के दर्शन होते थे। बाहरी ठोंग एवं प्रदर्शन उनके जीवन में दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता था। वे साधारण वेश-भूषा में अपार गुणों से विभूषित महामानव थे। बाह्याडम्वर और दिखावे का उनमें सर्वधा अभाव था। माला तिलक रंगे वस्त्र तथा अन्य पंथिक-पहिचानों को वे साधता के लिए आवश्यक नहीं मानते थे। अपने सेवक दौलत पहलवान (किडंडू) से एक दिन आप बोले–''किड्डू देख तोय रंगे स्यार दिखाउँ बात यूँ थी कि एक दिन

भगवावस्त्रों वाले संन्यासियों की एक जमात वहाँ से गुजर रही थी। उन्हें देखकर उन्होंने उपर्युक्त विचार प्रकट किये। वे संत होना और संत दिखाई देना दोनों से संत दिखाई देना अर्थात् बाहरी वेष और छापातिलक जटा जूट, को आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनावश्यक समझते थे। मनुष्य का सम्मान वेष के कारण नहीं गुणों के कारण होता है। तुलसीदासजी ने एक स्थान पर लिखा है–किये हुकुवेश साधुसनमान'' अर्थात् सज्जन पुरुष साधारण वेष धारी होने पर भी सम्मान का पात्र होता है और यह उक्ति बाबा हजूर पर सटीक बैठती थी। उन्हें देखकर कोई कह नहीं सकता कि साधारण धोती कुरता जाकिटधारी ये कोई उँचे संत होंगे। लेकिन गुदड़ी के लाल की तरह वह आध्यात्मिक क्षेत्र की परम निधि को अपने हृदय के भीतर छुपाए हुए थे। विवेकानंद के आध्यात्मिक गुरुदेव स्वामी रामकृष्ण जिस प्रकार एक सामान्य से व्यक्ति दिखाई देते थे ठीक उसी प्रकार सामान्य लिवास में मानव मूल्यों के चरमोत्कर्ष हमारे हुजूर थे। वे संतों के लिए बाहरी वेशभूषा की अपेक्षा मानव मूल्यों को धारण करने पर अधिक जोर देते थे। उनके नतानुसार दया, नम्रता, अभिमान, शून्यता एवं सब प्राणियों में ऊँच नीच अच्छे बुरे का भाव न रखते हुये समभाव से सवका हित करने में लगे रहना सच्चे साधु का लक्षण मानते थे तथा समस्त जगत से राग द्वेष मोह ममता छोड़कर भगवान के भजन में अखण्ड भाव से लगे रहने वाले को वे सच्चा महात्मा मानते थे, उपर्युक्त गुणों के अभाव में माला-तिलक एवं बाह्य वेशभूषा मात्र से कोई साधु नहीं हो जाता कबीर के मतानुसार–

दोहा- *दया गरीबी वन्दगी, समता शील स्वभाव।*

एते लच्छन साधु के, कहै कबीर विचार॥

इस प्रकार बाबा श्री मनोहरदासजी महाराज एक साधु के लिए यह आवश्यक मानते थे कि वह मोह, ममता एवं दुर्गुण दुराचारों से दूर रहकर संसार के अपने क्रिया व्यवहार द्वारा शिक्षा दें। केवल बातों से उपदेश देना और स्वयं माया में लिप्त रहकर जगत को ठगते रहना साधु के लिए लज्जा एवं शर्म की बात मानते थे। वे स्वयं सदैव कंचन एवं कामिनी से दूर रहे ये दोनों अविद्या के अभिन्न अंग हैं, जो जीवन को सद्मार्ग से भटकाकर उसे पतनोन्मुख करते हैं। वे सच्चे साधु के लिए इन दोनों का त्याग आवश्यक मानते थे। जो साधु संतोषी और ब्रह्मचारी होता है वह भगवान को भी प्यारा होता है, क्योंकि उसने अविद्या को जीत कर महात्याग किया होता है, संसार के सभी साधकों का वह आदर्श होता है, वही सच्चा सद्गुरु'' कहलाने का अधिकारी हैं। ऐसे ही महान संतों की वाणी का उपदेशों का अपने अनुयायीयों पर अमिट प्रभाव पड़ता है–

दोहा- *गाँठ न दामहिं बाँधई, नहिं नारी सों नेह।*

कह कबीर वा साधु की, हम चरनन् की खेह॥

इस तरह हमारे गुरुदेव साधुता के लिए बाह्याडम्बरों की अपेक्षा साधु को साधुता के विभिन्न गुणों को धारण कर संसार को उस सच्चे मालिक से मिलने, के लिए उसके लिए भजन ध्यान करने की प्रेरणा देते थे, वे सभी धर्मों का आदर करते थे, उनके विचार साम्प्रदायिक धर्म और आध्यात्मक के क्षेत्र में समन्वयवादी थे। वे सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों का ईश्वर की ओर ले जाने वाले कहाकर सभी का सम्मान करते थे। वे सभी सम्प्रदायों एवं धर्मों की एकता तथा सहअस्तित्व के समर्थक थे। उनके दरबार में सभी लोग चाहे वे हिन्दू, मुस्लिम, सिख या अव कोई भी क्यों न हो सम्मान पाते और बाबा के दर्शन पाकर परमशान्ति का अनुभव करते थे। उनकी धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता देखते ही बनती थी। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो उसे यह लगता कि बाबा का मेरे प्रति बहुत स्नेह है। बाबा मेरे ही है वस्तुतः बाबा सब के थे। उनके लिए ऊंच-नीच, गरीब और सभी समान थे। वे ''भाव'' के भूखे थे ''भाव गति'' का वे विशेष ध्यान रखते थे। उनसे किसी के हृदय की बात छुपी नहीं थी। बाबा ने धर्म के व्यावहारिक रूप को विशेष महत्त्व दिया, वे केवल वाचक ज्ञान की थोथी बातों को ठीक नहीं मानते थे। जिन बातों को अपने जीवन का अंग नहीं बनाते, सिर्फ विद्वता और मनोरंजन का आधार बनाया जावे, इन बातों से हमारा कोई अधिक भला नहीं होता। सार यह कि उन्हों करनी एवं कथनी का अन्तर पसंद नहीं था–

करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिनरात।

कूकर ज्यों भौंकत फिरैं, सुनी सुनाई बात॥

बाबा का व्यक्तित्व सरल था वे कहने की अपेक्षा क्रियापक्ष को अधिक आवश्यक समझते थे संसार के धर्म ग्रन्थों में अनेकों अच्छो बातें लिखी हैं, लेकिन जब तक हम उन्हों अपने जीवन का अंग नहीं बनाते वे हमारा कोई हित नहीं कर सकती हैं। उन्होंने ज्ञान वैराग्य की कथाएँ अपने उपदेशों में न कहकर अपने जीवन में उतार कर दिखलाई थी। उनका जीवन गीता के कर्मयोग, भक्ति योग और सांख्य योग का व्यावहारिक रूप था। अपने मन बुद्धि और चित्त को हमेशा ईश्वर की आराधना (सुमरन ध्यान) में लगाये रखना तथा दीन दुखियों के दुःखों को दूर कर उन्हें सुखी करना, वे अपना कर्तव्य समझते थे। जो भी उनके पास आता वे उनके समस्त मनोरथों को पूर्ण करते थे। ज्ञान के साथ भक्ति और कर्मयोग को वे आवश्यक मानते थे। भक्ति बिना ज्ञान के शोभा नहीं पाती और कर्महीन का ज्ञान लज्जादायक है। जैसे बिना कर्णधार के जलयान नहीं शोभा नहीं पाता, ठीक उसी प्रकार बिना श्रद्धा और प्रेम के ज्ञानी की शोभा नहीं–

सोह न राम प्रेम बिन ज्ञानू

करनधार बिनु जिमि जलजानू॥

बाबा ने अपने जीवन चर्या के माध्यम से हमें यह शिक्षा दी कि कोरी किताबी

बातें और दाचक ज्ञान मनुष्य में अहंकार की ही वृद्धि करता है। प्रामाणिक ज्ञान वह होता है, जिसे अपने जीवन में उतारा जाए तथा जिसके द्वारा संसार का हित किया जावे। धारणा योग का अत्यावश्यक अंग है। बिना धारण के अन्तिम दृश्य ध्यान एवं समाधि की स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती। पुस्तकीय ज्ञान के माध्यम से हमें अपनी साधना की सफलता तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि हम उन बातों की प्रबल धारणा न करें। बाबा ने अपनी साधना की प्रारंम्भिक अवस्था में गीता जैसे महान ग्रन्थ का स्वाध्याय किया और उसमें बताए निर्देशों को अपने जीवन में धारणा की और सिद्धावस्था को प्राप्त किया। अपने जीवन में पुस्तक का आधार अवश्यक लिया लेकिन उसके बाद उन्होंने धारणा पर ही विशेष ध्यान दिया। वे अखण्ड इष्टदेव (गुरुदेव) के नाम का जप तथा ध्यान में मग्न रहा करते थे। वे कहा करते–

''गुरु-गुरु जपरे, यही तेरा तप रे''

''गुरु नाम सार है, और सब बेकार है।''

बाबा मे अपनी साधना में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा गुरु के ज्ञान गुरुदेव द्वारा बताए हुए तत्व रहस्य को विशेष फलदायी कहा। मनुष्य चाहे कितनी ही भाषाओं का विद्वान हो और चाहे कितने ही ग्रन्थों को कंठस्थ करले लेकिन बिना ''गुरु'' के ज्ञान सम्भव नहीं। बिना गुरु के जो भी साधना होगी उसका परिणाम अहंकार की वृद्धि ही होगी। इसलिए अपने जीवन में योग्य गुरुदेव की शरण होकर साधना करने पर सिद्धि प्राप्त अवश्य होती है यह उन्होंने अपने जीवन के द्वारा हमें शिक्षा दी। उनका कहना था कि ''गुरु'' के ज्ञान के वचन मंत्र समान होते हैं उनका प्रभाव श्रोता पर अमिट होता है, क्योंकि उसने गुरुदेव के ज्ञान की धारण अपने जीवन में स्वयं की हुई होती है–

ज्ञान कथा सीखी घनी, प्रश्न करै अति गूढ़।

नारायण बिनु धारणा, व्यर्थ बकत है मूढ़॥

अतः सद्य सन्त की कथनी से नहीं अपने व्यावहारिक ज्ञान द्वारा लोगों को सही मार्ग दिखाना चाहिए। सच्चा संत कभी किसी प्राणी को स्वप्न में भी पीड़ा नहीं देता वह दूसरे की पोड़ा समझ कर उस पर दया दिखलाता है। वह संसार के हित के लिए ही देह धारण करता है–

पर उपकार बचन मन काया।

सन्त सहज सुभाउ खगराया॥ (मानस उ.का.)

अर्थात् अपने मन, वचन एवं मर्म से सारे संसार का हित करना सन्तों का सहज स्वप्न ही होता है। हमारे गुरुदेव अपने सम्पूर्ण जीवन में तथा आज भी

जगत के जीवों का विविध प्रकार से कल्याण करते हैं। उनके दरबार में जो भी कोई, किसी भी कामना से आया उसकी मनोकामना सिद्ध की। इस पुस्तक के संस्मरण खण्ड को पढ़ने से यह भली-भाँति सिद्ध होता है कि किसी को भक्ति, किसी को शक्ति हमारे गुरुदेव पर यह उक्ति शत प्रतिशत खरी उतरती है–

अन्धेन को आँख देत कोटिन को काया।

बाँझन को पुत्र देत, निर्धन को माया॥

उन्होंने एक अन्धे की आँखों को ज्योति प्रदान की, एक कोढ़ी जो बाबा के यहाँ आया हुजूर ने उसकी काया को कंचन के सदृश्य शुद्ध कर दिया था। वह जघीना गाँव का रहने वाला हरिसिंह नाम का व्यक्ति था। जिसके सम्पूर्ण शरीर में कोढ़ी था सारे अंगों में मवाद बहती रहती थी हुजूर ने उसे प्रतापगंगा में स्नान कराया और छः महा के अन्दर उसकी काया शुद्ध कर दी (देखिए संस्मरण ''कोढ़ी को काया'') इस प्रकार अनेक लोगों को अपने आशीर्वाद से पुत्र प्रदान किये सैकड़ों लोगों को माला माल कर दिया। आज भी उनके दरबार में दूर-दूर से अपनी श्रद्धा एवं कृतज्ञता प्रकट करने के लिए भक्त जन आया करते हैं। जो भी भक्ति भाव से बाबा के सम्मुख अपनी प्रार्थना करता है उसे दे तदनुरुप ही पूरा करते हैं। वे सच्चे अर्थों में दाता थे। हुजूर बाबा की महिमा का वर्णन लघु काशी वैर के एक बुजूर्ग कवि स्व, श्री नत्थी लाल जी चौबे ने इस प्रकार किया है–

काहू को रिद्धी दई, काहू को सिद्धि बई। काहू को प्रसिद्धि दई, दानी मतवाले थे॥

बहुतक निहाल किये, बिगड़े बहाल किये, बहुतों के अंधेरे घर में कर दिये उजाले थे॥

मान मद दूर रहे भक्ति में चूर रहे, रख दिया जो नाम उसे भूलने न वाले थे॥

बाबा मनोहरदास कहाँ तक गुण-गान करुं, तुममें तो अनेकों गुण बड़े ही निराले थे॥

इस प्रकार उनकी महिमा का बखान अनेकों कवियों ने अपनी-अपनी भावनानुसार अनेक प्रकार से किया है लेनिक उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को, उनके महान गुणों को, अपनी लेखनी का विषय वना सके ऐसा अब तक कोई भी कवि लेखक पैदा ही नहीं हुआ। वास्तविक तो यह है कि उन्होंने अपने गुणों का प्रदर्शन ही नहीं किया, वे सच्चे संत थे नारद भक्ति सूत्र में लिखा है–

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः, सनाथा चेयं भूर्भवति॥ (ना. भ. सू.)

ऐसे भक्तों का आविर्भाव देखकर पितरगण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सानाथा हो जाती है।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

❑❑❑

अध्याय-17

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

मनोहर दास जीवन-दर्शन

मनोहर उपदेश

(1)

केवल हरिनाम ही मधुर से भी मधुर, मंगलमय से भी मंगलमय और पवित्र से भी पवित्र है, केवल हरि का नाम ही सत्य है, जो सार्वदा हरिनाम स्मरण करना ही सिखलाता है वही गुरु है।

(2)

सन्त का देह ईश्वर का दर्पण होता है संतदर्शन ही
ईश्वर का साक्षात दर्शन होता है।

दोहा अलख पुरुष की आरसी, संतों का ही देह।
लखना चाहे अलख को, इनही में लख लेय॥

(3)

दयावान, अहंकार, शून्यता, ईश्वरचिन्तन में संलग्नता।
समत्वभाव तथा नम्र स्वभाव, संतों के प्रमुख लक्षण हैं॥

दोहा दया गरीबी बन्दगी, समताशील-स्वभाव।
एते लक्षण साधु के, कहै कबीर विचारि॥

(4)

जो धन का भूखा है वह साधु नहीं।

दोहा साधु भूखा भाव का धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरे, वो तो साधु नाहिं॥

(5)

कंचन-कामिनी के त्यागी ही सच्चे साधु हैं–

दोहा गांठी दामं ना वाँधइ, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरन की खेह॥

(6)

भोग और संग्रह का त्यागी ही सच्चा फकीर होता है–

दोहा उदर समाता अन्न ले, तनहि समाता चीर।
अधिकहिं संग्रह ना करहिं, ता का नाम फकीर॥

(7)

सच्चे फकीर (महात्मा) की आत्मा समस्त विश्व में व्याप्त होती है–

दोहा हद् तपै सो औलिया, अनहद तपै सो पीर।
हद-अनहद दौनों तपै, ता का नाम फकीर॥

(8)

जो पराई पीड़ा को समझाता है वही सांचा साधु है।

जिसमें परदुःख कातरता नहीं वह सच्चा साधु नही।

दोहा कबिरा सोई पीर है, जो जानत पर-पीर।
जो पर पीर न जानइ, सो काफिर बेपीर॥

(9)

परमहंस सच्चा संत, नीर क्षीर विवेकी तथा तत्ववेत्ता होता है।

दोहा छोर रूप संतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोई साधु है, तत्व का छाननहार॥

(10)

साधु के मुखार्विन्द से अमृत वचन पुष्प झरते हैं वह कटुभाषी नहीं होता।

दोहा साधु भया तो क्या भया, बोलत नहीं विचारी।
हनै पराई आत्मा, बाँधि जीभ तरवारि॥

(11)

सरल स्वभाव और निष्कपट भगवद् भक्त की नथ्या भगवान स्वयं पर लगाते हैं–

दोहा कपट भाव मन में नहीं, सब सन सरल स्वभाव।

नारायन ता भगत की लगी किनारे नाव॥

(12)

हरि भक्त को पाँच बात अच्छी नहीं लगती, वह इनको साधना में विघ्न कारक समझ कर त्याग कर देता है–

दोहा विषय भोग निन्द्रा हँसी, जगत प्रीति वहु बात।
नारायन हरि भगत को, ये पाँचों न सुहात॥

(13)

जिन विषय भोगों को संतों ने अमंगल कारी जान कर तज दिया मूर्ख लोग ही उनमें अनुरक्त होते हैं–

दोहा जो विषया संतन तजी, मूढ ताहिं लपटात।
ज्यों नर डारत बमनकरि, स्वान स्वाद सों खात॥

(14)

कुमति से भरे बुद्धि हीनों पर सतसंग का प्रभाव भी नहीं पड़ता है–

दोहा संगत समुति न पावहिं, भरे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होय सुगंन्ध॥

(15)

कामी, क्रोधी और लोभी इनसे भक्ति नहीं हो सकती, ये तीनों नरक के अधिकारी हैं–

दोहा कामी, क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति वरन कुल खोय॥

(16)

ईश्वर तेरे भीतर है जैसे तिल में तेल और चकमक में अग्नि अदृश्य होकर रहती है, उसी प्रकार भगवान घट-घट में निवास करते हैं।

दोहा ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग।
तेरा सांई तुज्झ में, जाग सकै तो जाग॥

(17)

जब तक संसार से कोई ममता है तब तक तू संसार का भक्त है

जब संसार से नाता तोड़ देगा तभी हरिभक्त होगा।

दोहा जब लगि नाता जगत का, तब लगि भक्ति न होय।

नाता तोडि हरि भजै, भक्ति कहावै सोय॥

(18)

दया धर्म की जननी है, पाप का बाप लोभ है, क्रोध काल का कारण है तथा जहाँ क्षमा है तहाँ स्वयं भगवान हैं–

दोहा जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।

जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

(19)

भगवद् भक्ति में दिखावा नहीं होता–

दोहा बाहर क्या दिखलाइये, अन्दर जपिए नाम।

कहा काज संसार से, तुझे धणी से काम॥

(20)

इस नश्वर देह का क्या भरोसा साथ छोड़ दे, अतः प्रत्येक सांस पर हरिनाम स्मरण करो।

दोहा कहा भरोसा देह का विनसि जात छन मांहि।

सांस सांस सुमिरन करो, और जतन कछु नांहि॥

(21)

जिसका राम नाम ही आधार है वह अमर हो जाता है–

दोहा वैद्य मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।

एक कबीरा न मुआ, जेहि के राम आधार॥

(22)

जो माया से दूर भागता है, वह उसके पीछे भागती है और

जो माया के पीछे दौड़ रहे हैं, माया उनके हाथ नहीं आती

दोहा माया छाया एक सी, विरला जानें कोय।

भागत के पीछे लगे, सन्मुख भागें सोय॥

(23)

जो स्वयं माया के जाल में बँधे पड़े हैं, उनसे मुक्ति दिलाने की आशा करना मुर्खता है, जो स्वयं मुक्त है उन्हीं की शरण लो।

दोहा बँधे को बँधना मिलें, छूटे कौन उपाय।

कर संगत निर्बन्ध की, पल में देय छुड़ाय॥

(24)

तत्वेता पूर्ण ज्ञानी गुरुदेव की शिष्यता मोक्ष - दायिका होती है

अन्धे को अन्धा क्या राह दिखला सकता है।

दोहा जानता बूझा नहीं, बूझि किया नहीं गौन।

अन्धे को अन्धा मिला, राह बतावै कौन॥

(25)

दुविधा ग्रस्त जीव को न तो माया ही मिलती है और न ही राम ही।

दोहा राम नाम कड़ुबा लगै, मीठा लागै दाम।

दुविधा में दोउं गये, माया मिली न राम॥

(26)

जहाँ संत और भगवान की पूजा नहीं होती वे घर श्मसान के समान हैं, उनमें रहने वाले भूत-प्रेत के समान हैं।

दोहा जेहि घर साधु न पूजिए, हरि की सेवा नांहि।

ते घर मरधट सारिखे, भूत वसहिं तिन मांहि॥

(27)

सच्ची शुद्धता मन का राग द्वेष रहित होना है, केवल स्नान से बाहरी शरीर ही शुद्ध होता है, आन्तरिक शुद्धता ही साधना के लिए आवश्यक है।

दोहा न्हाये धोये का भया जों मन मैल न जाय।

मीन सदा जलमें रहे, धोये बास न जाय॥

(28)

मन मुखी सारा संसार है गुरु मुखी कोई विरला ही है,

मन मुखी होकर रहना ही अद्योगति का कारण ही है।

दोहा मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।

जो मन पर असबार है, सो साधु कोई एक॥

(29)

प्रेम हरि का रूप है वह सर्वस्व अर्पण, अनन्य शरणागति से ही प्राप्त होता है।

दोहा प्रेम न खेती नीपजै, प्रेम ने हाट विकाय।

राजा परजा जेहि रुचै, सील देय लै जाय॥

(30)

दूसरों के गुणों में भी अवगुण खोजने वाले नीच होते हैं

पर दोषदर्शनवृत्ति उत्तम पुरुष का लक्षण नहीं

दोहा गुन में अवगुन खोजहिं, जो प्रकृति के नीच।

ज्यों जूही के बाग में शूकर खोजे कीच॥

(31)

श्रीराम एवं श्रीकृष्ण दोनों एक ही अखिल ब्रह्माण्ड नायक परस्पर ब्रह्म के दो रूप हैं–

दोहा नंद सुवन दशरथ कुंवर, उमै एक सरकार।

नारायण जो दो कहें, सो अविवेक विचार॥

राम कृष्ण दोउ एक हैं, रंग रूप वपु वेश।

उनके दृग गंभीर हैं, इनके चपल विशेष॥

(32)

कृष्ण नाम और कलियुग की एक ही राशि है, कृष्ण-कृष्ण जपने से कलियुग पास नहीं फटकता

दोहा कलयुग की अरु कृष्ण की, पड़ी एक ही रास।

कृष्ण-कृष्ण जपते रहो, कलि नहीं आवै पास॥

(33)

प्रेम पवन के प्रसंग से पापी जीव भी उत्तम लोकों को प्राप्त होकर

परमात्मा में लीन हो जाता है।

दोहा उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकाश।

तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास॥

(34)

"साधुता बड़ी कठिन साधना के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है, साधुता से गिरने वाला कहीं का नहीं रहता।

दोहा साधु कहावत कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर।

चढै तो पावे प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर॥

(35)

जिस प्रभु का हृदय में निवास है, उससे दुःख-सुख की कहने की क्या आवश्यकता है, वे सब कुछ जानन हार हैं।

दोहा जे रहीम तन मन दियौ, कियौ हिये विच मौन।

तासौं दुःख सुख कहन की रही बात अब कौन॥

(36)

मनुष्य को विपत्ति में रोना-घबराना नहीं चाहिये, सोचो जिसने माता के गर्भ में रक्षा की क्या वही भगवान अब सो गये हैं?

दोहा रन बन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरिये न रोय।

जेहि रक्षक जननी जठर, सो प्रभु गया कि सोय॥

(37)

जिस ब्रजराज के स्पर्श मात्र से चारों प्रकार की मुक्ति प्राप्त होती है, उसी ब्रज को रोजाना गोपियाँ झाड़ बुहार कर फैंक देती हैं वे तो कृष्ण की दीवानी है।

दोहा जा ब्रजरज की परस से मुकुति मिलत है चारि।

वा रजको नित गोपिका, डारत डगर बुहारि॥

(38)

परम ज्ञानी एवं परम मुर्ख दोनों को उपदेश देना ठीक नहीं।

दोहा ज्ञानी ते कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।

अन्धे आगे नाच कर, कला अकारथ जाय॥

(39)

तनरूपी तम्बूरे से जो आवाज निकल रही है, ये सब भगवान् की ही अमर कल्याणकारी आवाज है–

दोहा तनतम्बूरा तारम, अद्भुत है यह साज।

हरि के कर से बज रहा, हरि की है आवाज।

(40)

पुस्तकें पढ़ने से कोई पंडित नहीं बन जाता सच्चा पंडित सत्य, अहिंसा ज्ञान तप और नम्रता का आगार होता है।

दोहा सत्य अहिंसा ज्ञान तप, विनय शील जो होय।

ताको बुध पंडित कहें, पाछे न पंडित होय॥

(41)

जो मन के विकारों पर विजय प्राप्त कर ले सच्चा मर्द वही है।

दोहा मर्द न वो करते जिसे, मर्दन मनो विकार।

मर्द वही जिसने किये, मर्दन-मनो-विकार॥

(42)

जो अपने सेवक धर्म को कुशलतापूर्वक निर्वाह करता है उस सेवक को स्वामी से भी महान् कहा गया है।

दोहा स्वामी से सेवक बडौ, जो निज धरम सुजान।

रिणियाँ राजा राम भजे, धनी भये हनुमान॥

(43)

मनुष्य शरीर पाकर जिसने परोपकार नहीं किया उससे तो स्थावर योनि वृक्षादिक ही श्रेष्ठ हैं–

दोहा जो मानस तन पायकें, करैं न पर उपकार।

तासों वृक्षादिक भले, जो पोसे संसार॥

(44)

ज्ञान के साथ अगर अभिमान है तो वह ग्रहण करने योग्य नहीं पवित्र भोजन भण्डार को अपवित्र और अग्रहय बनाने को एक छोटी

सी मल की छींट ही पर्याप्त होती है, अभिमान भी मल की छींट ही है।

दोहा लाख ज्ञान उरमें वसा, यदी कछू अभिमान।
भोजन के भण्डार में, मल की छींट समान॥

(45)

जिसमें नम्रता होती है उसकी संसार पूजा करता है, अभिमानी से कोई प्रीति नहीं करता।

दोहा सवते लघुताई भली लघुता से सब होय।
जस दुनिया के चन्द्र को, शीश नवे सब कोय॥

(46)

अगर मन से आशा न गई तो कोरा आसन लगाने से कुछ भी नहीं होता। तेली का बैल दिन भर चलता है लेकिन पहुँचता कहीं नहीं

दोहा आसन मारे क्या भया, मुइ न मन की आस।
ज्यो तेली के बैल को, घर की कोस पचास॥

(47)

जिसने विषय रस का परित्याग कर दिया है और राम स्नेह में अपने मन को चिकना बना लिया है चाहे वह घर में रहता हो या घोर जगल में।

दोहा जे जन रूखे विषय-रस चिकने राम स्नेह।
ते प्यारे श्री राम को, कानन वसौ कि गेह॥

(48)

गुरुदेव की चार पल की सेवा ही अपार कल्याणकारी होती है।

दोहा हरि सेवा सोलह बरस, गुरु सेवा पल चारि।
तो भी नहीं बराबरी, संतन किया विचारी॥

(49)

प्रारबन्ध के भोग को ज्ञानी हँसी खुशी भोगते हैं और मूर्ख कठिन प्रारम्भ को रो पीट कर भोगते हैं।

दोहा देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।

ज्ञान भुगतै ज्ञान कर, मूरख भुगतै रोय॥

(50)

जैसे घी दूध में सर्वत्र व्याप्त होते हुये भी स्पष्ट दिखाई नहीं देता उसी प्रकार संसार में भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं। जिस प्रकार मन्थन करने पर घी प्राप्त होता है। उसी प्रकार संत भजनरूपी मन्थन कर प्रभु प्राप्त करते हैं।

दोहा घीव दूध में रमि रहा, व्यापक सबही की ठौर।

दादू बकता बहुत हैं, मथि काढैं ते और॥

(51)

मन लगाकर दृढ़ता से भजन करने वाले भक्त भगवान नारायण को अपने बस में कर लेते हैं।

दोहा रहिमन मनहि लगाय कें, देख लेओं किन कोय।

नर को बस करिवौ कहा, नारायण बस होय॥

(52)

मन तो दर्पण के समान है जैसा विचार होता है मन भी उसी के समान आकार ग्रहण कर लेता है, अगर मन से ब्रह्म विचार किया जाये तो यह स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है-

दोहा जो मन नारि की ओर निहारत, तो मन होत है नारि को रूपा।

जो मन काहू पै क्रोध करै, तब क्रोध भई है जाय तद्रूपा॥

जो मन माया ही माया रटै नित, तौ मन डूबत माया के कूपा।

सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत, तौ मन होत है ब्रह्म स्वरूप॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥ ॥ हरिः ॐ तत्सत्॥ ॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

❑❑❑

अध्याय-18

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

सत्यलोक प्रस्थान

"हुजूर अब ये वस्त्र जीर्ण हो गया है इसको बदल डालो और सत्यलोक को प्रस्थान करो।" इस बात को सुनकर बाबा ने कहा कि "हम सत्यलोक में ही बैठे हैं, और सत्यलोक से ही बोल रहे हैं।"

(संस्मरण संख्या - 20)

अगहन सुदी पंचमी सांय 5 बजे तदनुसार 16-12-1958 संम्वत् 2016 की उपर्युक्त वार्ता है श्री देवी राम तहसीलदार ने बाबा की कृशकाया को देखकर उनसे अपने कायारूपी वस्त्र को छोड़ने की बात कही। लेकिन हुजूर ने जो उन्हें जवाब दिया उससे यह स्पष्ट होता है कि वे इस मृत्युलोक में रहते ही न थे, उनका शरीर यहाँ दिखाई पड़ता था लेकिन वे हमेशा सत्यलोक में ही निवास करते थे। इस घटना के ठीक दूसरे दिन अर्थात् अगहन सुदी षष्टमी मंगलवार संम्वत् 2016 तदनुसार 16-12 1958 को प्रातः पाँच बजे उन्होंने अपने नश्वर शरीर को भी इस धरा धाम पर छोड़ दिया क्योंकि इस शरीर को एक न एक दिन सब को छोड़ना ही पड़ता है जैसे जीर्ण वस्त्र को त्यागकर मनुष्य नवीन वस्त्र पहन लेता है, ठीक उसी प्रकार जीवात्मा भी इस पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को ग्रहण कर लेती है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृहाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा

न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अर्थात् - जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होत है। आत्मा का ना तो जन्म होत है और ना आत्मा मरती ही है। यह शरीर ही जन्मने तथा मरने वाला है, जो जन्मता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है। जब राम और कृष्ण जैसे अवतारों ने अपना शरीर छोड़ने की लीला को तो फिर इस संसार में किसका शरीर अमर होगा। अतः प्रकृति के नियम को कैसे उल्लंघन किया जा सकता है

जातस्यहि ध्रुवो मृत्यु

ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

इस मृत्युलोक में जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित है यह अटल नियम है।

दोहा- *आया है सो जायगा राजा रंक-फकीर।*

एक सिंहासन चढ़ चला, एक बँधे जात जंजीर॥

मरने के पश्चात् इस लोक एवं परलोक में कर्मानुसार गति होती है। जो जैसा कर्म करता है उसे उसका परिणाम अवश्य भोगना होता है।'' अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा शुभम।''

श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज तो जीवन्मुक्त महान् आत्मा थे वे आज भी अपने प्रिय भक्तों के साथ हैं क्यों कि आत्मा अविनाशी है उसका किसी काल में नाश नहीं होता। आत्मा न जन्म होती है और न उसकी मृत्यु ही है, वह सदा सर्वदा एक रूप है–

न जायते म्रियते कदाचिन, नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, नहन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (गीता 2/20)

भगवान का कथन है कि ये आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो करके फिर होने वाला है क्योंकि यह अजन्मा नित्य शाश्वत और पुरातन है शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है।

भगवान के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि हमारे बीच से बाबा महाराज का देह ही पंच भूतों में लीन हुआ है, वे स्वयं आत्मा रूप से हमारे पास ही हैं। आज लघुकाशी के बीच भगवान के समान उसकी पूजा अर्चना यह स्पष्ट करने में सक्षम है कि उनकी तपस्या उनकी साधना झूठी एवं कोरा दिखावा मात्र न थी अब रोज हजारों मस्तक उनके मंन्दिर की देहरी पर झूकते हैं। यह उनके कर्म का परिणाम है। उनकी महिमा का बखात कर सकूँ ऐसी क्षमता मेरी कलम और मेरी तुच्छ बुद्धि में कहाँ। हाँ राष्ट्र कवि मथलीशरण गुप्त की कुछ काव्य पंक्तियाँ उनके अलौकिक व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए उद्धृत करना चाहूँगा–

उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था।

अति पुन्य मिलता था तथा, मिटता हृदय का ताप था।

उपदेश उनके शान्ति कारक थे, निवारक शोक के।

सब लोक उनका भक्त था वे थे हितैषी लोक के॥ (भारतभारती)

❀❀❀❀

लखते न अध की ओर थे वे, अध ने लखता था उन्हें।

वे धर्म को रखते सदा थे, धर्म रखता था उन्हें॥

वे कर्म से ही कर्म का थे, नाश करना जानते।

करते वही थे वे जिसे, कर्तव्य थे वे मानते॥

❀❀❀❀

वे सजग रहते थे सदा दुःख पूर्ण तृष्णा भांन्ति से।

जीवन बिताते थे सदा सन्तोषपूर्वक शान्ति से॥

❀❀❀❀

इस लोक में उस लोक से, वे अल्प सुख पाते न थे।

हंसते हुये आते न थे, रोते हुये जाते न थे॥

(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती से))

हुजूर के सत्यलोक प्रस्थान से सम्बन्धित विस्तृत ब्यौरा इस पुस्तक संस्मरण खण्ड के संस्मरण 20 में दिया गया है। अतः यहाँ पर उनके महा प्रस्थान सम्बन्धी संक्षित विवरण ही प्रस्तुत किया गया है। अधिक जानकारी के लिए इसी पुस्तक के संस्मरण संख्या 20 को देखा जा सकता है।

॥ हरि : शरणम् ॥

॥ ॐ श्री गुरु देवाय नमः ॥

मनोहर महिमा अष्टपदी

हुजूर बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहर दास जी के सत्यलोक प्रस्थान के पश्चात् हुए कवि सम्मेलनों एवं लोक संगीतों में उनकी महिमा का बखान किया गया हमारे वैर के ही निवासी स्व. पं. नत्थीलाल जी चौबे द्वारा रचित अष्टपदी निम्नांकित है–

॥ ॐ॥

दोहा *अगहन शुक्ला षष्टमी, सुदिन सुमंगलवार।*

दो हजार पन्द्रह विसे, पहुँचे स्वर्ग मझार॥

(1)

बड़े-बड़े संत आये, बहुत से महन्त आये,

सबने सिर नाये, आप अलख दरबार में।

जाने कौन लाता था, जाने कौन खाता था,

जाने कौन चुकाता, खाता जाकर बाजार में॥
लाखों ही पड़े रहे, लाखों ही अड़े रहे।
लाखों ही खड़े रहे, संग वीहड़ उजाड़ में
बाबा मनोहर दास, वैर की विभूति थी,
ऊँनी नहिं आई कभी उनके भण्डार में॥

(2)

काहू कूँ रिद्धि दई, काहू कूँ सिद्धि दई।
काहू कूँ प्रसिद्धि दई, दानी मतवाले थे॥
बहुतक निहाल किये बिगड़े बहाल किये,
बहुतों के अन्धेरे घर में कर दिये उजाले थे॥
मान मद दूर रहे, भक्ति में चूर रहे,
रख दिया जो नाम उसे भूलने न वाले थे॥
बाबा मनोहर दास कहाँ तक गुणगान करूं,
तुम में तो अनेकों गुण, वडे, बड़े ही निराले थे।

(3)

ब्रह्म वेद ज्ञानी थे, ईश्वर के ध्यानी थे।
नहीं अभिमानी थे, भक्ति में चूर थे॥
बाल ब्रह्मचारी थे, दीन दुःखहारी थे।
प्रेम के पुजारी बाबा, तृष्णा से दूर थे॥
काहू को काया दई काहू को माया दई।
पूछा जो बताया प्रश्न, हाजर-हुजूर थे॥
बाबा मनोहर दास कहाँ तक बखान करूँ
सर्व गुण दाता आप विद्या, भरपूर थे॥

(4)

ओम ओम जपते और धूनी सटां रमते थे,
अलख पुरुष मूर्ति का, जबर एक नारा था।

साधा था पूर्ण योग, त्यागे थे विषय भोग,
तुमने मोह-लोभादि, प्रबल शत्रुओं को मारा था।
योगी-यति जती-सती, काहू की न पहुंची मती,
अलवेले गुरु का छिपा ज्ञान न्यारा था।
बाबा मनोहर दास बस्ती कर सूनी गये,
संत मण्डली का यहाँ चमकता सितारा था।

(5)

आये थे जब से वैर बस्ती में आनंद भये,
आधि व्याधि संकट हटाये, सुख पाये थे।
पाये थे सेवकों ने, सदा मन चीते फल,
था न दूजा काम, सदा भगवत् गुण गाये थे॥
गाये थे गीत प्रेम रस के, आनंद भये,
अनेकों करिश्में सदा हँस-हँस दिखाये थे।
खाते थे प्रेम से गरीबों के सूखे-रोट,
बहुतों के हलुओं मोहन-भोग छोड़ आये थे॥

(6)

अलख-अलख कहते रहे, मानें न किसी की दाव,
साधा था पूरा योग, ब्रह्म वेद ज्ञानी थे।
ज्ञानी थे ऐसे पार पाया न किसी ने भी,
योगी-यति, जती-सती, हरि ब्रह्मज्ञानी थे॥
ध्यानी थे हरी के, मान-ममता से दूर रहें।
सबके शुभ चिन्तक भक्ति-शक्ति के दानी थे।
दानी थे दयाल थे, दीनों के दुःख हरन्-हार,
बाबा मनोहर दास सर्वगुण खानी थे॥

(7)

बाबा की सुन्दर समाधि सुखदाई बनी,

चन्दा देनदारों की भीड़ भई भारी है।
पास पुस्तकालय और औषधालय बना हुआ,
अनौखी डिजायन फुल वारी की निकारी है।
भागवत गीता रामायण के पाठ होते रहें,
बैठें रहें भक्त लोग भक्ति लिए भारी हैं।
नारायण दास जी की आस गुरुदेव पूजै,
सुबह-शाम आठौ पहर विनय यह हमारी है॥

(8)

पास में प्रताप गंगा भरी रहै वारहोंमास,
नहामें जन जिनके, सदा संकट हरे रहैं।
साधु संत यति-सती, आते हैं अनेकों यहाँ,
दर्शन गुरुदेव के करके हरे रहैं॥
कहीं धर्मशाला कहीं बनी पाठशाला,
यहाँ भक्त लोग मन में शुद्ध भावना भरे रहैं।
नारायण दास जी ने सर्व आनंद कीनौं,
जय हो गुरुदेव की, ध्यान पर धरे रहैं॥

दोहा *संत मनोहर दास कौ, अष्टक पढै जो नित्य।*
मनो कामना पूर्ण हो, रहे शान्त निज चित्त॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

❑❑❑

संस्मरण खण्ड

MEMOIRS

संस्मरण खण्ड के सम्बन्ध में निवेदन

यह संस्मरण खण्ड श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज के जीवन से जुड़ी हुई ऐसी सत्य घटनाओं का संकलन है, जिनसे हमें उनके जीवन चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले गोपनीय एवं अलौलिक रहस्यों की जानकारी होती है, जो अब तक कुछ ही महानुभावों के स्मृति पटल पर अंकित थीं। इन संस्मरणों के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होगा कि वह एक महान योगी एवं सिद्धभक्त थे, भूत भविष्य एवं वर्तमान, तीनों कालों का उनको पूर्ण ज्ञान था वे अनोखे भविष्य वक्ता थे उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक वचन सत्य होकर रहता था। उनमें मृत प्राणियों को जीवन देने रोगियों के असाध्य रोगों को दूर करने निःसंतानों को संतान-प्रदान करने दूसरे के मन की भावना को जान लेने एवं निर्धनों को अपनी कृपा दृष्टि से धनवान वना देने की अपूर्व शक्ति थी। इससे पूर्व जीवन-दर्शन खण्ड में जो कुछ भी बाबा की महिमा में लिखा गया है वह पूर्ण यथार्थ लेखन है, इसकी पुष्टि यह संस्मरण खण्ड कर सकेगा। पाठकों को यह खण्ड पढ़कर लगेगा कि जो कुछ जीवन-दर्शन खण्ड में कहा गया है उस में कुछ भी अतिश्योक्ति नहीं है। संस्मरण खण्ड में जो संस्मरण लिखे गये हैं उनको सुनाने वाले महानुभाव बाबा के समकालीन एवं उनकी नित्य सेवा में संलग्न रहने वाले वयोवृद्ध लोग हैं। हमने घण्टों उनके पास वैठकर संस्मरणों को सुना एवं लिपिबद्ध किया है। जैसा वर्णन उन्होंने हमें सुनाया प्रायः वैसा ही हमने लिखा है। बाबा के द्वारा कहे गये वचनों को उन्हीं के शब्दों, लिखने का प्रयास किया है। इस खण्ड में जिन संस्मरणों को लिखा जा रहा है उनके सुनाने वाले सज्जनों में श्री बृजलाल गुप्ता (विरजू जी) श्री जगदीश प्रसाद जी पुरोहित स्वः गंगा सहाय नाई, श्री नत्थी लाल ख्वास एवं श्री दौलत पहलवान (किड्डू) आदि प्रमुख हैं। मैं इन सभी सज्जनों का हृदय से आभारी हूँ कि जिन्होंने अपना समय देकर इन संस्मरणों को लिपिबद्ध कराया। इस कार्य में मेरा सहयोग करने वाले आनन्द मण्डल के साथियों विशेष रूप से महेन्द्र शर्मा मैनावास वाले को मैं धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि बिना सहयोग के यह संस्मरण खण्ड लेखन सम्भव नहीं होता।

विनित

केदार नाथ शर्मा (खूंट वाले)

लघुकाशी वैर जिला, भरतपुर (राजस्थान)

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहर दास जीवन-दर्शन

संस्मरण संख्या 1

जन्म भूमि की ओर

बाबा पुलिस सेवा को छोड़कर उदयपुर की तरफ जहाँ पर श्री गणेश दासजी महाराज की तपोस्थली थी पहुँचे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है बाबा ने उनसे विधिवत दीक्षा ली तथा बताये हुए तरीके से अपनी साधना की, आत्म साक्षात्कार किया। लगभग 12 वर्ष बाद जब ये पूर्ण सिद्धावस्था पर पहुंच गये थे पुनः अपनी जन्म स्थली लघु काशी वैर पधारे। यहाँ के निवासियों ने इनका बड़ा भारी सम्मान किया। अब ये आचार्य रूप लम्बे केश कुर्त्ता धोती पहने बगल में गीता की पुस्तक आपको सहस्त्र नाम एवं गीता लगभग कंठस्थ थे।

कबीर उपासना पद्धति तथा अन्य उपनिषदों का भी आपने विशेष स्वाध्याय किया। जब ये लौटकर आये थे तो कुछ लोगों ने इनकी शिकायत पुलिस, विभाग में की। यहाँ पर ड्यूटी से बिना सूचना किये बिना चार्ज संभलाये चले जाने के कारण इनके वारंट कट चुके थे। श्री पीतम चन्द्र जी तथा अन्य लोगों ने जो पुलिस सेवा में कार्यरत थे। इनकी सूचना पुलिस विभाग को दी। पुलिस विभाग अपनी कार्यवाही पर अमल करे उससे पहले ही नारायण टीडी के प्यारे लाल जैन, श्री गिरजि सिंह पुरोहित, उमराव जी पण्डा एवं शुक्ल जी आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने पुलिस विभाग में जाकर कहा कि अब वे साधु हो चुके हैं। अतः मानवता की दृष्टि से इन्हें दोषमुक्त कर दिया जाये। इन लोगों की प्रार्थना पर ध्यान देकर और बाबा की तपस्या एवं दिनचर्या से प्रभावित होकर इनका मामला रफा-दफा कर दिया।

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण संख्या 2

अन्धे को आँख

बयाना के निवासी श्री माँगी लाल चोबदार जी बाबा के साथ पुलिस विभाग में कार्य कर चुका था। बाबा से अक्सर कहा करता था कि पेन्शन मिलने के बाद मैं भी साधु हो जाऊंगा और भगवान का भजन करूंगा। पेन्शन होने के बाद उसने भगवान का भजन नहीं किया। साधु होने के बजाय गृहस्थ में और लिप्त हो गया। देवयोग से कुछ दिन पश्चात् वह अन्धा हो गया उसने बाबा की तपस्या एवं सिद्धियों के बारे में लोगों से सुन रखा था। एक दिन वह अपने बच्चों को बयाना से पैदल ही लेकर बाबा के दर्शनार्थ वैर आया ज्योंही बयाना दरवाजे में पैर रखा उसकी आँखें पूर्ववत देखने लगीं।

करत प्रवेश मिटे दुःख दावा।

जिमि जोगी परमारथ पावा॥

के अनुसार बाबा की तपोस्थली में प्रवेश करते ही उसकी आँखों में ज्योति आ गई और व सुखी हो गया। प्रताप गंगा के किनारे स्थित बाबा के दर्शन किये। वह अक्सर कई-कई दिन तक बाबा के पास ही पड़ा रहता था। उनकी सेवा में रहता था। ऐसा कहते हैं कि जब वह वापिस बयाना पहुँचता तो अंधा हो जाता और जब बाबा के दर्शनार्थ वैर आता तो उसे पुनः दिखाई देता। यह संस्मरण मुझे श्री वृजलाल गुप्ता (बिरजू) ने सुनाया जो यथार्थ है।

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण संख्या 3

अनौखे भविष्य वक्ता

एक दिन की बात है कि बाबा अपने धूना की छत्त पर बैठे थे। प्रातः काल का समय था। करीब नौ बजे थे। अचानक बाबा खड़े हो गये कहने लगे–''छौराओ। दोपहर पीछे, कुआं गिरेगा, कुएँ में तरैया डूबेगी कुआ में गिरकर जो मरता है उसकी अकाल मृत्यु होती है, हत्यारी पक्ष का काम हो गया और तू संभलना। ऐसा कहकर बाबा चुप हो गये उस समय धूना पर मेरे (बृज लाल) साथ परसादी छीपी और अनेकों व्यक्ति थे। सभी लोग अपने-अपने घरों को चले गये दोपहर पीछे जब पुनः लौटकर धूना की शाला में वैटे थे। बाबा उस समय शाला में ही विराजे हुऐ थे। हमारे पहुँचने पर खड़े हो गये और कहने लगे–''लाला तुम कहीं जाना मत मैं अभी आता हूँ बाजार से दही लेने जा रहा हूँ।

बाबा अक्सर कहा करते थे–

(1)

''दीत कूं पान, सोम कूं दर्पण।

मंगल धनियाँ कीजिये अर्पन॥

(2)

बुद्ध मिठाई बृहस्पति राई।

कहें शुक्र मोहि दही सुहाई॥

(3)

जो शनिवार को घृत पाऊँ।

काल मार लौट कर घर आऊँ॥

अर्थात् शुक्रवार के दिन दही खाना अच्छा रहता है। ऐसा सोचकर वे दही लेने आप ही चल दिये। हमें कहीं नहीं जाने का आदेश किया और चले गये। थोड़ी देर बाद एक व्यक्ति रोता चिल्लाता हुआ धूना की तरफ आया। तबेले वाले कुआं की तरफ इशारा करते हुए कहने लगा कुआं में गिर गई कोई बचाओ उसकी पत्नी किसी बात पर नाराज होकर तबेले वाले कुआ में कूद गई। हम वहाँ से भाग कर तबेले वाले कुआं पर पहुंचे तो देखा कुँए के पानी से बुलबुले उठ रहे थे। मैंने कुआं उतरने के लिए ज्योंही कमीज उतारना चाहा तो उसी समय बाबा के वचन जो लगभग दो घंटे पहले बोले थे मुझे याद आ गये "आज दोपहर पीछे कुआं गिरेगा कुएँ में तैरय्यां डूवेगी कुँआ में जो गिर कर मरता है उसकी अकाल मृत्यु होती है। हत्यारी पक्ष का काम हो गया तूं संभलना।" मैं फौरन संभल गया। कूदने का इरादा छोड़ दिया यद्यपि उसके लड़के ने मुझसे काफी आग्रह किया फिर भी मैं नहीं कूदा क्योंकि हन हुजूर के आज्ञा से पाबन्द थे। इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि बाबा भविष्य वक्ता थे। उन्हें तीनों कालों का स्पष्ट ज्ञान था। दो घंटे बाद क्या होना है। इसकी जानकारी बाबा जैसे त्रिकालदर्शियों को ही हो सकता है।

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 4

भाव भक्ति का भोग ही श्रेष्ठ होता है

बाबा अक्सर कहा करते थे कि–"हम भाव गति का खाये हैं। यदि कुभाव गति का खाये तो जिन्दे ही मर गये"

सही भी है संसार में वस्तु का महत्व नहीं हुआ करता है, भाव का महत्व होता है। वह कहा करते थे कि-"भाव से जो पाषाण को पूजे नारायण मिल जाये"

कैसी भी मूल्यवान वस्तु बिना भाव के महत्त्व नहीं रखती। वे कोई भी वस्तु ऐसी स्वीकार नहीं करते थे जो बिना भाव के बिना श्रद्धा के, मान बड़ाई के सहित लाई गयी हो। वृजलाल जी अपना संस्मरण सुनाते हुए कहते हैं कि दिन बाबा कैला हलवाई की दुकान के सामने विराजे हुए थे, अचानक मेरे मन में विचार आया कि बाबा को दूध पिलाया जाये। सबसे पहले मेरे दिमाग में एक पाव दूध ले जाने का संकल्प हुआ लेकिन लोकलाज की वजह से कि दुनियाँ क्या कहेगी पावभर दूध को लेकर चला है, मैं आधी मेर दूध कुल्लड़ में भरवाकर मलाई डलवा के बाबा के पास ले गया, बाबा ने कुल्लड़ को हाथ में पकड़ लिया। कुल्लड़ को आधा मापकर अपनी कटोरी में कर लिया, आधा दूध कुल्लड़ में रहने दिया और मुझसे बोले–"लै! ये तेरा है मैंने अपना भाग ले लिया, इसे तू पी जा" मैं देखता रह गया कि बाबा ने मेरी मन की बात को जान लिया था। वह जानते थे कि मेरा वास्तविक भाव एक पाव दूध का ही था।

इससे सिद्ध होता है कि बाबा महाराज घट-घट की बात जानते थे। बिना भाव का भोग उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उसे वे अपनी साधना में विघ्न समझते थे।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 5

मेला ठेला जाला जात बरात

एक बार आगरा के नूरी दरवाजे का विशम्भरदयाल कबाले नवीश जो बाबा का परम भक्त था। वह बाबा कि तन-मन-धन से सेवा किया करता था। जाड़ों में बाबा को ऊनी वस्त्र, गर्मियों में मलमल के कुर्ते, धोती जूते तथा अनेक प्रकार से, भाव भक्ति से बाबा कि सेवा किया करता था। उसके लड़के की आगरा में शादी थी। शादी में सम्मलित होने के लिए बाबा को लिवाने वैर आया। बाबा उसके ऊपर पूरे महरवान थे। शादी का प्रस्ताव आते ही स्वीकार कर लिया गया। बोले–"किड्डू हमारे विस्तर बस में रख दें, हम बारात करने आगरा जाते हैं।"

हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि बाबा कहीं विशेष रूप से आते-जाते न थे। वे अक्सर कहा करते थे–

"लाला! मेला ठेला जाता बारात

नाका घाटा चढाव पडाव"

इनसे बचना चाहिए–लेकिन आज स्वयं ही बारात के लिए तैयार हो गये। अपना विस्तर तक बस में रखवा दिया। आप दामोदर जी के मन्दिर से चलकर डेरानवाली कुइंया के पास एक पत्थर पर बैठ गये। इधर-उधर से लकड़ी इकट्ठी करने लगे, धूना शुरू हो गया। मोटर में विस्तर रख कर किड्डू नाई मेरे पास आया और बाबा के आगरे जाने का वृत्तांत मुझे सुनाया, पुराने बस स्टेण्ड से चलकर बाबा को बैठाने के लिए डेरानवाली कुइया के पास बस रुकी, पहले बस इसी मार्ग से चला करती थीं। बाबा से विश्भ्भर दयाल ने बस में बैठने का निवेदन किया। बाबा मनमौजी थे। उनका "ज्ञान ध्यान न्यारा था"। चलकर बस के सामने आये, जैसे एक सिपाही परेड करता है। कदम ताल करते हुए बस के सामने आकर सलूट किया और बस की परिक्रमा देकर, पुनः अपने धूने पर बड़ के पेड के नीचे ही जाकर बैठ गये। विशम्भर दयाल कबाले नवीश ने विशेष आग्रह किया लेकिन अब क्या होता है "लहर पलटा खा चुकी थी।" बाबा वहाँ नहीं गये। वास्तविकता यह थी कि बाबा की आगरा चलने की तैयारी को देखकर शिम्भूदयाल कबाले नवीश आगरे वाले के मने में ऐसा अहंकार आ गया था कि मैं बाबा का कितना भक्त हूँ कि बाबा अपनी मर्यादा को तोड़कर मेरे साथ बारात में चलने को

तैयार हो गये हैं। ऐसे वह किसी के साथ नहीं जा सकते। हमने देखा कि उसकी बातों से अहंकार झलक रहा है, बाबा घट-घट की जानने वाले थे विशम्भर दयाल के भाव को देखकर चलने को तैयार हुए थे और कुभाव (अभिमान) देखकर अपने विचार बदल लिया। किसी ने ठीक ही कहा है–

"संतन कहा सीकरी काम

आवत जात पन्हैया टूटै

विसर जात हरिनाम..।" इस घटना से सिद्ध होता है कि हुजूर के दरबार में भाव की पहचान थी और भगवान भी भाव को ग्रहण करते हैं।

"भावों ग्रहते जनार्दनः"

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 6

साम्प्रदायिक दंगों का पूर्वाभास

सन् 1947 में जब हमारा देश आजाद हुआ उसके परिणान स्वरूप देश का विभाजन हुआ। पाकिस्तान बन जाने के कारण हिन्दू तथा मुसलमानों को इधर से उधर आना-जाना पड़ा। देश में रक्त पात तथा खून खरावा हुआ। बाबा श्री मनोहरदासजी महाराज को साम्प्रदायिक दंगों का पूर्वाभास हो चुका था। वह अपनी मस्ती में कहा करते थे–

"खून की नहरें बहेंगी" ये उनकी भविष्य वाणी सत प्रतिशत सही रही। सन् 1958 में भारत तथा पाकिस्तान में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुऐ, लाखों आदमी कत्ल कर दिया गये।

उल्लेखनीय यह है कि आबादी पूर्व ही सन् 1947 में ही दावा ने अपने भक्तों से इन दंगों के बारे में पूर्व में ही आभास करा दिया था। जिसकी परिणिति 1948 में साम्प्रदायिक दंगों के रूप में दिखाई दी। इससे यह सिद्ध होता है कि बाबा को भूत भविष्य तथा वर्तमान का पूरा ज्ञान था। वे अनौखे भविष्य वक्ता थे भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास दे दिया करते थे।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 7

साधु अवज्ञा का फल

एक बार बाबा का आसन तहसीलदार साहब की हवेली के चौक में लगा हुआ था। उनके साथ दीप चन्द, चन्दन कटारा हवेली में साथ अर्दली में रहते थे। बाबा की रहनी-सहनी से तहसीलदार बहुत परेशान था क्योंकि बाबा के पास भक्तों का तांता लगा रहता था। रात-दिन धूना चलता रहता था। तहसीलदार अपने कर्मचारियों से बोला कि बाबा को बाहर निकला कर दरवाजे का किवाड़ बन्द कर दो।'' उनके सारे कर्मचारियों ने तहसीलदार साहब से कहा-''यह हमारे वश की बात नहीं है।'' हम बाबा से बाहर जाने की भी नहीं कह सकते। कुछ दिन तक ऐसा ही चलता रहा। एक दिन बाबा लघु शंका को बाहर निकले। तहसीलदार ने मौका पाकर दरवाजे के किवाड़ बन्द करवा दिये। बाहर से बाबा दरवाजे खटखटाने लगे कहने लगे अरे छोरा! रूप नारायण किवाड़ खोल'' लेकिन तहसीलदार जी कब खोलने वाले थे। उन्होंने किवाड़ नहीं खोले अन्त में बाबा हवेली के पास बगीची में जा बैठे। कहते हैं कि अगले दिन तहसीलदार साहव के स्थानान्तरण के आदेश आ गये।

साधु अवज्ञा तुरत भवानी।

कर कल्याण अखिल के हानि॥

तहसीलदार को ही हवेली छोड़कर जाना पड़ा। इससे सिद्ध होता है दूसरों को खाई खोदने वाले को स्वयं ही उसमें कूदना पड़ता है। तहसीलदार साहब को संत के किये हुए अपमान के परिणाम स्वरूप स्वयं को ही निकल कर जाना पड़ा! ये सब बाबा साहब की तपस्या के तेज का ही प्रभाव था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण संख्या 8

इधर हम उधर तुम.....

एक बार राजा श्री गजेन्द्र सिंह अपने फार्म (चरन दास का नगला) से अपने ट्रैक्टर पर बैठ कर वैर आ रहे थे। ट्रैक्टर जब बाबा मनोहर दास के धूना के पास आया तब बन्द हो गया। बाबा उस समय पैरों में गैटिस बांधे हुए पुलिस जैसी परेड कर रहे थे। बोले ''भाई सहगाब क्या हो गया।'' राजा गजेन्द्र सिंह ने कहा कि बाबा ट्रैक्टर बन्द हो गया। बाबा नीचे उतरे और ट्रैक्टर में बैठ गये और बोले ''अब चलाओ'' ट्रैक्टर स्टार्ट हो गया और चल कर किले के पास पहुंचा। जहाँ बाबा का मन्दिर बना हुआ है। उस समय खाली प्लाट पड़ा हुआ था। बाबा बोले–हरों को छोड़ दो और ट्रैक्टर को प्लाट में घुमवाया जब चक्कर पूरा हुआ तो बोले–''किले के

उस दरवाजे पर तुम रहो और इधर मैं रहूंगा। राजा गजेन्द्र सिंह ट्रैक्टर को लेकर चले गये। समय गुजर गया और बाबा सत्यलोक को सिधार गये। उस दिन मंगलवार अगहन सुदी छट्ट (छः) दिनांक : 16.12.1958 प्रातः 6.00 (ए.एम.) बजे। बाबा ब्रह्मलीन हो गये। राजा गजेन्द्र सिंह अपने फार्म पर थे, उन्हें रात्रि में स्वप्न हुआ कि तुम्हारे भाई गुजर गये हैं। उन्होंने सोचा भरतपुर में गोपाल गढ़ में उनके भाई रहते हैं शायद उनमें से गुजर गये हों। ऐसा सोचकर वहाँ से पैदल ही चल दिये। इधर लोगों ने उन्हों बुलाने को तारा की (जीप) कार भेजी, लेकिन वे वहाँ से पैदल चल चुके थे। राजा गजेन्द्र सिंह वैर आ गये। उन्हों बाबा के परम धाम सिधारने की सूचना मिली। बाबा के अन्तिम संस्कार के लिए स्थान जिसमें बाबा ने स्वयं ट्रैक्टर चलवाया था। उसी स्थान को चुना। राजा गजेन्द्र सिंह बोले यह स्थान बाबा ने पहले ही ले लिया था। वर्तमान में बाबा के मन्दिर के दक्षिण में राजा श्री गजेन्द्र सिंह जी का स्मारक बना हुआ है।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 9

दरोगा को चमत्कार

हाकिम सिंह थानेदार करौली का रहना वाला था। वह बाबा के प्रति भक्ति भाव रखता था। बाबा का धूना उस समय गिरधारी दास के मन्दिर (जहाँ पहले गर्ल्स स्कूल चला करता था, रामा पंडित के सामने) में लगा हुआ था और भक्तों का समुदाय बैठा हुआ था। प्रातः काल 10.00 बजे की घटना है। थानेदार हाकिम सिंह सिपाईयों के सात बाबा के पास पहुँचे। दण्डवत् प्रणाम किया और बाबा के पास बैठे भक्तों से थानेदार के गर्व, में व्यर्थ की पूछताछ करने लगे। उनमें से कुछ एक को पकड़ कर ले गया और थाने में ले जाकर बैठा दिया। वहाँ पर पुलिस वालों ने तलाशी लेकर पैसे छीन लिए और छोड़ दिया। फिर वे लौटकर बाबा के पास आये हालात सुनाये। उधर थानेदार हाकिम सिंह के पेट में जोर से दर्द चलने लगा। दर्द के मारे छटपटाने लगा। उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। उसने लालपुरनी की छोरी चन्दा को बाबा के यहाँ उन्हें वुलवाने के लिए भेजा। बाबा के पास आकर चन्दा बोली–''बाबा थानेदार साहव के पेट में दर्द चल रहा है और तुम्हें बुलाया है'' उस समय मैं (बृजलाल गुप्ता) बाबा की रोटी लेकर पहुंचा ही था। बाबा मुझ से बोले छोरा? ''धुना में से भबूत (विभूत) ले जा और सात नाम का मन्त्र जो तुम्हें बतलाया है, उसे सात बार दरोगा जी के पेट पर फेर देना दर्द सही हो जायेगा'' मैंने ऐसा ही किया। चन्दा के सात थानेदार जी के निवास पर गया वर्तमान में खादी भंडार की दुकान चलती है और (बाबा के आज्ञानुसार दरोगा जी के पेट पर सात नाम का मंत्र) ॐ अखेनाम, अभय नाम, अजर नाम, अमरनाम, सत्य नाम, समार्थ नाम,

ॐ नाम साह नाम, बोले कर विभूत लगा दी। दरोगा जी के पेट का दर्द शान्त हो गया। दरोगा जी ने चाय का आग्रह किया। लेकिन मैंने नहीं पी, मैं चला आया। हुजूर जानने में तो कुछ जानता नहीं परन्तु मुझे डाक्टर बना दिया।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 10

हाय का पैसा है, दुःख तकलीफ देता है.....

बाबा के बारे में प्रायः लोग कहा करते थे कि उनके पास लोग सट्टे का दडा लेने के लिए दूर-दूर से आया करते थे। सट्टे के बारे में बाबा के स्पष्ट विचार थे। वह कहा करते थे ''लाल यह हाय का पैसा है। दुःख तकलीफ देकर चला जाता है ऐसा काम नहीं करना चाहिये, परिश्रम की कमाई फलीभूत होती है।''

लोग बाबा की वाणी को अपने मन से फलाकर दडा लगा दिया करते थे। और अपनी भावनानुसार और कर्मानुसार फल प्राप्त करते थे। एक बार का प्रसंग है कि किले में खजाने पर एक हैड (हेड कांस्टेबल) रहता था। बाबा ने उसका नाम ''अमीरअली'' रखा हुआ था। वैसे वह जाट घराने से था। लम्बा चौड़ा जवान था। बाबा का उस पर बहुत प्यार था। वह बाबा के पास आया जाया करता था। बाबा के पास जो सेवा में सामग्री आती थी, उसमें से बिना पूछे ही इस्तेमाल करने लग जाया करता था। थोड़े दिन बाद वह मुझसे बोला कि ''बाबा को कभी खजाने पर लाओं। इनसे दडा (सट्टे का नम्बर) लेंगे। मैंने कहा यह गलत काम क्यों करते हो, उसने कहा मेरे एक हजार रुपये सट्टे में जा चुके है।'' अगर पैसे किसी तरह व वापिस आ जायें तो अच्छा रहे। मैं बोला, ''हुजूर की मर्जी, हुजूर जाने, मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता। मैं बाबा से नहीं कह सकता। बाबा उस समय महादेव जी के मन्दिर पर बैठे थे। (राम हलवाई की दुकान के सामने) बाबा अक्सर मेरे नाम से मुझे नहीं बुलाकर मेरे बड़े भाई ''मन्नू'' के नाम से बुलाते थे। बाबा की यह आदत थी कि प्रायः लोगों का नामकरण अपनी तरफ से कर दिया करते थे और चाहे कितने समय बाद वह व्यक्ति बाबा के पास जाये उसी नाम से पुकारा करते थे। मेरा भी नाम बाबा ने ''मन्नू'' रख लिया था। बाबा ने मुझे आवाज लगाई–''मन्नू इधर आओ''। मैं बाबा के पास पहुंचा। वे मुझसे बोले, ''आज गुरुजी वाली ढूंढने चलते हैं।'' अक्सर वह हड्डियों को गुरुजी वाली कहते थे। बाबा और हम दोनों चल दिये, मेरे हाथ में तम्बाकू की थैली और जलता हुआ उपला चिलम थमा दिया। आगे-आगे बाबा और पीछे से मैं चलता गया। बाबा किले का चक्कर लगाते हुए खैर (किले के पीछे की जगह) से गुजर रहे थे कि अचानक बीडी नं. 27 का कागज पड़ा हुआ देखा बाबा ने उसे उठा लिया मुझसे बोले–लाला! यह 72 नम्बर है इसे

जेब में रख ले। मैं बोला–हुजूर ये 72 नहीं 27 नम्बर है वे बोले ''तेरा ज्ञान व्यारा है।'' बाबा अपनी धुन में चलते रहे किले के दक्षिण दिशा में एक कुइया है उस पर बैठकर तम्बाकू बनवाई और पीने लगे। उस समय किले के आसपास का स्थान बड़ी-बड़ी झाड़ियों से घिरा हुआ था। नितान्त एकान्त और डरावना स्थान था। दिन में भी लोग जाने से डरते थे। यह घटना सायं 3.00 बजे की है। चिलम पीकर वहाँ से किले के दक्षिणी दरवाजे पर पहुंच गये। मैं अपने मन में सोचने लगा कि बाबा शायद हैड साहब की इच्छा पूरी करने जा रहे हैं क्योंकि मुझसे हैड ने बाबा से दड़ा दिलाने एवं खजाने पर बाबा को लाने की बात कही थी। बाबा मुझसे बोले ''चेले'' मैं बोला–''चेले'' बाबा आगे वढ़ गये, के दक्षिण दरवाजे के पास नीम चबूतरे पर बैठ गये। (आज जहाँ क्रापट स्कूल है) और बोले–''यह साँवलिया साँड वाले का चवूतरा है। इस पर हमने दो पेड़ नीम के लगाये हैं। हैड साहब ने बाबा के आने की बात सुनी और तुरन्त उधर आ गये और मुझसे बोले कि यार खूव, बाबा को लाये।'' मैं बोला–मैं कौन होता हूँ लाने वाला, हुजूर की अपनी मर्जी है बाबा को वह प्रार्थना करके खजाने पर ले गया। कुर्सी पर बैठा दिया। हैड मुझसे बोला कि, बाबा से कोई दडा लिखवा दो और मुझे एक कताम और एक कागज दे दिया मैंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया क्योंकि बाबा मुझसे कहा करते थे कि ''यह हाथ का पैसा। दुःख तकलीफ देकर जाता है। परिश्रम की कमाई रंग लाती है। हैड मुझसे बारम्बार सट्टे लिखाने के लिए आग्रह करने लगा। आखिर में मैंने कागज लेकर बाबा के हाथ में थमा दिया और बोला हुजूर कुछ लिख दीजिए। बाबा मुझसे बोले– ''अरे सेठ के लड़के! तू ये क्या कहता है, यह काम ठीक नहीं है।'' हैड ने बाबा से बहुत मिन्नत की, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बाबा ने कागज हाथ में ले लिया और आँख मींच कर अपने इष्ट विष्णु भगवान का ध्यान किया सहस्त्र नाम के श्लोकों को अपनी धुन में उच्चारण करने लगे वे प्रायः ऐसा ही किया करते थे। कागज में लिखना शुरु कर दिया। इसमें ''82/10'' अंक लिख दिया और बोले ''रिलिफ का कायदा अलग होता है।'' और कागज मुझे पकड़ा दिया और मैंने उसे हैड को दिया। वास्तविकता यह थी जो कागज मुझे बाबा ने खैर में दिया था। वह मेरी जेब में रखा हुआ था। नीम के पेड़ के नीचे उन्होंने जो बात कहीं थी–''यह सांवलिया सांड सात नम्बर। दो पेड़ = दो अंक = 72 अंक। अगले दिन जो अंक खुला था वह 72 ही था। लेकिन, हैड ने इस गणित को नहीं समझा क्योंकि वह ''रिलिफ'' शब्द का अर्थ नहीं जानता था। मेरे पूछने पर उर्दू जानने वाले लोगों ने बताया रिलिफ का अर्थ ''घटाना'' होता है। हैड ने 82 + 10 92 लगा दिया था।

मुझे लगाना नहीं था सो किसी को कुछ भी नहीं मिला क्योंकि बाबा की वाणी का अर्थ हैड नहीं समझ सका और हुजूर ने मुझसे सट्टा लगाने का हुक्म कर रखा था। वास्तविकता यह थी कि पहले एक दो साल मुझे भी सट्टे लगाने की आदत पड़ गई थी और मैं परेशान रहा करता था। रात दिन सट्टे की धुन में रहा

करता था, बाबा न एक दिन कहा कि ''लाला'' इस आदत को छोड़, तू मौज करेगा।'' मैंने उसी दिन से दडा लगाना छोड़ दिया।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 11

योगियों के जनरल....

मथुरा निवासी फौज में एक कर्नल थे। जिनकी ड्यूटी उस समय वर्मा (रंगून) में थी। वह वहाँ पर जंगलों में एक साधु के पास आया-जाया करते थे। वह साधु बहुत चमत्कारी था। कर्नल साहव उनकी बहुत सेवा करते थे एवं श्रद्धा रखते थे। एक दिन कर्नल साहव ने उनसे पूछा कि–''आपके मुकाबले यहाँ और साधु है''? वह महात्मा जी बोले–''जैसे तुम्हारे ऊपर फौज में जर्नल हैं, उसी प्रकार हमारे भी एक जर्नल हैं। वह राजस्थान में वयाना स्टेशन से पश्चिम की ओर वैर कस्बे में विराजते हैं। वे सिद्धों के सरताज हैं।''

कर्नल साहव छुट्टियों में अपने निवास मथुरा आये और वहाँ से चलकर रेलगाड़ी द्वारा बयाना स्टेशन पर उतर कर वैर का रास्ता पूछा। उस वक्त बयाना वैर के लिए एक कच्ची सड़क थी। जिस पर एक या दो मोटर और कुछ तांगे चला करते थे। कर्नल साहव मोटर में बैट गये और वैर के लिए रवाना हो गये। यह वैर की उनके जीवन में पहली यात्रा थी। इधर बाबा महाराज की उस समय भरतपुर दरवाजे बाहर स्थित पुरवनी वाली वगीची में धूनां लगा हुआ था। दोपहर को एक या 1.30 पर अचानक बाबा ने दौलत नाई (पहलवान) और मुझे (बृजलाल) को हुक्म दिया–''कि मोटर से लम्बा तगड़ा जवान, खाकी वर्दी में खाकी विस्तरबंद लिए हुए आ रहा है। उसे यहाँ लिवा लाओ।'' हम दोनों वहाँ से चलकर बस स्टेण्ड पर आये और ज्योंही वहाँ पहुँचे त्योंही बयाना से बस आकर रुकी। उस समय नहर के किनारे शिवालय, रामजीलाल अड्डे वाले की दुकान के पास (अब राम और शिब्बी की दुकान है) रुका करती थी। बस से बाबा के द्वारा बताया हुआ व्यक्ति जो मिलिट्री ओफिसर जान पड़ता था, उतरा और कंडक्टर से बिस्तर उतरवाने लगा।

दौलत पहलवान ने विस्तरवन्ध ले लिया और उससे कहा कि आपको बाबा ने याद किया है। हमारे साथ चलो। आगे आगे मैं और दौलत थे औप पीछे जवान था।

हम बाबा के यहाँ पुरवनी वाली बगीची पहुँचे और बाबा के दर्शन करके उसने बाबा के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। वह बाबा से बड़ा भारी प्रभावित हुआ। उसने बाबा की काफी सेवा की और आशीर्वाद पाकर वापिस लौट गया।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 12

मृत बछड़े को जीवित करना....

आगरा में पचकुइया पर एक कुम्हार रहता था। वह बाबा की सेवा करता था। एक बार बाबा विशम्भर दयाल कबाले नवीश (नूरी दरवाजा आगरा) के पास ठहरे हुए थे। यह भी बाबा के परम भक्त थे। अक्सर वैर आया करता था और बाबा की सब प्रकार की सेवा किया करता था। बाबा भी उसकी भक्ति से बहुत प्रभावित थे और इस कारण आगरा भी कभी-कभी उसके पास चले जाया करते थे। एक दिन प्रातः काल चार बजे वहाँ से चलकर पचकुइया स्थित उस कुम्हार के घर आये और बोले–''चाय बनाओ। कुम्हार बोला हुजूर ''चाय किसकी बनाऊं, मेरी भैंस का पड्डा मरा पड़ा है। सुबह होने दो, बाजार से दूध लाकर चाय बनाऊंगा।'' बाबा बोला – '' अरे मटा। क्यों झूठ बोलता है? पड्डा भूखा है, उसको दूध क्यों नहीं पिलाता है।'' ''कुम्हार ने कहा'' हुजूर यह वास्तव में मर गया है।'' बाबा बोले-इसको खड़ा करके भैंस के थनों में लगा यह भूखा है।'' बाबा के अधिक आग्रह करने पर इस कुम्हार ने मृत पड्डे को उसके थनों के लगाया। एक अनौखा चमत्कार हुआ, वह पड्डा भैंस का दूध पीने लगा। कुम्हार ने दूध निकला कर चाय बनायी और हुजूर की सेवा की।

उल्लेखनीय है कि कुम्हार के मरणोपरान्त उसके बच्चे भी बाबा में श्रद्धा रखते थे। बाबा के परम शिष्य कुन्दन दास की सेवा में भेंट लाया करते थे। एक बार कुन्दन दास बाबा को हाथ की घड़ी भेंट की। कुन्दन दास ने उससे दूसरी घड़ी और ले ली। कुन्दन दास ने बहुत दिन तक अपने दोनों हाथों में वे घड़ियां बाँधी हुई, अनेक लोगों ने देखी थीं।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 13

कन्या की शादी हेतु मदद....

कठूमर गाँव का एक जैन अजींनवीश था। वह बाबा के पास आया जाया करता था। बाबा भी उस पर महरबान थे। बाबा उसको अपने साथ थाली में खाना खिला लिया करते थे। वह बाबा के पास बार-बार आता-जाता देखकर मैंने उस अजींनवीश से पूछा कि–''तूने बाबा का क्या चमत्कार देखा है, जो तू बार-बार आता है। वह मुझसे बोले कि मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है और मेरे एक विवाह

योग्य कन्या है, जिसकी शादी मुझे करनी है मेरे पास पैसों का अभाव है। मुझे बाबा से कुछ दिला दो, जिससे मैं अपनी कन्या की शादी कर सकूं। मुझे सिर्फ आठ हजार रुपये की जरूरत है, आप बाबा से कहकर कोई अंक दिला दो। मैंने कहा "बाबा तुम पर मेहरबान हैं तुम स्वयं ही प्रार्थना करो, उसने जब बार-बार आग्रह किया तो मैंने भी बाबा महाराज से उसे कुछ देने का निवेदन किया। बाबा ने दो अंकों (36, 63) की ओर इशारा किया लेकिन यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं था मैंने कहा हुजूर इसे सही-सही आदेश किजिये। बाबा ने उसे 36 का अंक देकर कहा कि– "किसी को बताना मत, कहना तुम" मैंने उस अजींनवीश से कहा कि बाबा की आज्ञा का उल्लंघन मत करना नहीं तो मुझे बहुत बड़ी हानि हो जायेगी। वह वहाँ से चला गया। अपनी लड़की की शादी करके बाबा के दरबार में उपस्थित हुआ भेंट के लिए बहुत सामग्री और एक बहुत बड़ी गेंदे के फूलों की माला थी जो गले में पहनने पर जमीन तक लटकती थी। बाबा को सामग्री भेंट करने के बाद माला पहनाने लगा। अचानक बाबा खड़े हो गये और बोले–"अरे क्या करता है? इस माला को बृजलाल को पहनाओ।" बाबा ने मेरे गले में माला पहनाने के लिए बहुत जोर दिया, मैं दूर हटता रहा। लेकिन वह नहीं माने और वह माला मेरे गले में पहनवा दी। मैं वास्तविक समझ गया, उसे अंक देने का आग्रह मैंने ही विशेष रूप से किया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 14

मेरा घर बसाने वाले बाबा ही थे

मेरी शादी लगभग 32 वर्ष की उम्र तक नहीं हो पाई थी। वैसे प्रायः उन दिनों के समाज में बाल-विवाह प्रचलित थे। छोटी उम्र में ही शादीयाँ हो जाया करती थीं। लेकिन मेरी शादी 32 वर्ष की उम्र तक भी न हो सकी थी। इसका कारण मेरी आवारागर्दी में साधु महात्माओं में बैठना ही था।

एक दिन की बात है बाबा धूना उस समय थाने के चबूतरा पर (जहाँ अब शिवालय है। थाने के समने जो पीपल के पेड़ लगे हुए हैं वह बाबा श्री मनोहर दास के कर कमलों द्वारा ही प्रत्योरोपित किये गये थे) बाबा का धुना उस समय वहीं लगा हुआ था। थाने में थानेदार नारायण सिंह जी मुडिया पुरा (किरावली, उत्तरप्रदेश) वाले जो बाद में चल कर "नारायणदास" नाम से बाबा के शिष्य हुए थे। रात्रि के करीब नौ बजे की बात है बाबा का धुना चला हुआ था। आसपास बाजार वाले बैठे हुए थे। मैं और मेरा भाई मन्नू लाल हलवाई दुकान बंद करके अपने घर को जा रहे थे। रास्ते मे मेरे भाई मन्नू लाल ने अपनी लालटिन नीचे

रखकर प्रणाम किया और मैंने बाबा के चरण स्पर्श किये मुझे वहाँ उपस्थित देखकर मन्नू और जगन कोठारी एवं अन्य व्यक्तियों ने बाबा से निवेदन किया कि हुजूर, मन्नू की बहु मर चुकी है और घर में कोई रोटी बनाने वाला भी नहीं है। इस लड़के (बृजू) की शादी होनी चाहिए। बाबा ने भी बात गौर से सुनी और मेरी तरफ देखा। थानेदार साहब को आवाज लगाई–दरबार इधर आओ।'' थानेदार साहब तुरन्त नीचे आये और बोले–हुजूर, हुक्म कीजिए। बाबा बोले–''पान मंगाओ।'' पं. फत्ते एवं परसादी पान वालों से पान मंगवाये गये, उनमें से बाबा ने दो पान मुझे दिये, थोड़ी देर वैठकर वहाँ से चल दिये। रास्ते में मेरे भाई ने मुझेसे पूछा कि कितने पान दिये हैं मैंने कहा–दो पान दिये हैं। उसे सन्तोप हुआ एक दो माह बाद मथुरा के अच्छे घराने से मेरी शादी सम्पन्न हो गयी। ऐसा बाबा के आशीर्वाद से हुआ।

संस्मरण 15

साधु भगवान गिरी को चमत्कार.....

वैर के उत्तरप्रदेश दिशा में भरतपुर दरवाजे बाहर पुरबनी वाली बगीची थी (वर्तमान में आज जहाँ रा.प्रा.विद्यालय नवीन स्चित है) वहाँ पर बाबा भगवान गिरी नाम के साधु रहा करते थे। वे अक्सर अपने यहाँ कथा कीर्तन आदि कार्यक्रम करवाया करते थे उन्होंने बीसों बार भागवत की और अनेक धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कराये थे। छोटे-छोटे बच्चों को भोजन कराना एवं अनेक प्रकार के दान दक्षिणा कार्यक्रम वहाँ चलते रहते थे। लोगों में उनके प्रति काफी श्रद्धा थी। लोग दूर-दूर से उनके पास आया करते थे। उन्हें अनेकों प्रकार की जड़ी-बूटियाँ का ज्ञान था। विशेष रूप से ''अडीठ'' के इलाज के लिए प्रसिद्ध थे। उन्हें भूत-प्रेत, अलाय-बलाय आदि को दूर करने के मंत्र भी आते थे। इन सभी करणों से उनकी अधिक प्रसिद्धि हो गयी थी। वह जब बाबा मनोहर दास जी के पास आया करते थे तो बाबा उनका बहुत सम्मान किया करते थे। यहाँ तक कि उनके सम्मान में अपना आसन भी छोड़ दिया करते थे। बाबा अपने हाथ से सुलफे की चिलम बनाकर उन्हें दिया करते थे। इस प्रकार बाबा विशेष रूप से उन्हें सम्मान देते थे बाबा का प्रायः यह स्वभाव था कि वे सन्तों का बहुत सम्मान करते थे। यह उनकी महानता थी।

''सबही मानप्रद, आप अमानी'' तया, सावधान मानद मदहीना।

धीर धरम गति परम प्रर्वाना॥

के अनुसार महान संतों का यह स्वभाव होता है कि वे मानद अर्थात् सबको मान देने वाले आप मान न चाहने वाले (अमानी) होते हैं। बाबा ने भी उस सन्त का विशेष सम्मान किया। साधु भगवान गिरी इस सम्मान को सहन नहीं कर सका और उसके अन्तः करण में बढ़प्पन के अहंकार का उदय हो गया। वह अपने आप को बाबा से श्रेष्ठ मानने लगा। वह बाबा से तू तडाक की भाषा में बातें किया करता

था। एक बार बाबा कुछ भक्तों को लेकर उस साधु भगवान गिरी के यहाँ पहुँचे। बाबा को इस तरह भीड़ के साथ आया हुआ देखकर भगवान गिरी प्रसन्न नहीं हुआ और बोला–''अरे! तू पूरी बरात की बरात लेकर यहाँ आ जाया करता है।'' बाबा ने उससे कहा–कि ''हाँ साधु दुखिया लोग हैं आ जाया करते हैं।'' बाबा वहां विराज गये। रात्रि को विश्राम वहीं हुआ। साधु भगवान गिरी साधु भगवान गिरी बाबा से बोला–''साधु कुछ रोटी-बोटी खायेगा?'' बाबा बोले–''इच्छा है साधु तेरी।'' वह बाबा को एक मोटा सा टिक्कट बनाकर लाया। उस पर सब्जी रखी हुई थी। बाबा ने अपने हाथ में लेकर उसे पा लिया और रात्रि को अपने धूने पर विश्राम किया। यहाँ के रहने वाले भक्त गण अपने-अपने घरों को चले आये। बाहर से आने वाले श्रद्धालुओं ने बाबा के पास इधर-उधर ही आसन लगाकर विश्राम किया। साधु भगवान गिरी अपनी कुटिया में चला गया और सो गया। रात्रि के लगभग दो बजे साधु भगवान गिरी लघु शंका के लिए कुटिया से बाहर आये उसने देखा, बाबा अपने धूने पर पड़े हुए हैं, उनके हाथ, पैर सिर तथा धड़ अलग-अलग पड़े हुए हैं। ऐसा देखकर साधु भगवान गिरी एक दम डर गये। सोचने लगे कि ''कोई सट्टे बाज, बाबा को मार गया है और अब मुझे पुलिस हत्या के आरोप में पकड़ेगी।'' साधु बहुत भयभीत हो गया। उसे शेष रात्रि नींद नहीं आयी। लगभग चार बजे बाबा ने भगवान गिरी को आवाज लगाई कि ''साधु सोता ही रहेगा क्या? चिलम तम्बाकू कहाँ है।'' आवाज सुनकर साधु भगवान गिरी तुरन्त बाहर आ गया और बाबा के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। उसका अभिमान पूर्ण हो चुका था। वह अब बाबा श्री मनोहरदासजी के प्रभाव को जान गया था। इसके बाद वह जब भी बाबा के धूना पर जाता था। बाबा के चरणों में बैठा करता था और उनकी सेवा किया करता था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 16

शीशे का कमण्डल

एक बार एक फिरोजाबाद का कोई सेठ था। वह बाबा का भक्त था, वह बाबा के पास एक शीशे का कमण्डल भेंट देने लिए लाया था। अनेकों भक्त लोग धूने पर बैटे हुए थे। उनमें से एक बृज लाल भी था। कमण्डल इतना सुन्दर था कि मुझे बहुत अच्छा लगा। बाबा का प्रायः यह स्वभाव था कि कहीं से कोई वस्तु भेंट में आते थी तो बाबा उसे उठाकर चाहें जिसे दे दिया करते थे। मैं मन में सोचने लगा कि कमण्डल कितना सुन्दर है। अभी बाबा इसे किसी को दे देंगे और वह उसे व्यर्थ ही तोड़-फोड़ देगा। इसकी हिफाजत नहीं कर सेकगा। अगर यह कमण्डल बाबा मुझे दे दें, तो मैं इसे हिफाजत के साथ रखूं।

जब हम वहाँ से चलने लगे तो बाबा मुझ से बोले "छोरा। इसे ले जा, जहाँ तू सोता है उस कमरे की खूंटी पर हिफाजत से रखना"। मैंने समझ लिया कि बाबा अन्तर्यामी हैं। मेरे मन का भाव जानकर उन्होंने वह कमण्डल मुझे दे दिया।

उल्लेखनीय कि आज भी मेरे पास उनकी धरोहर रूप में सुरक्षित है। यह बत लगभग सन् 1953 की है। समय के प्रभाव से इस शीशे के कमण्डल का ऊपरी हत्था टूट गया है, बाकि सुरक्षित है।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 17

बाघम्बर की भेंट

एक बार कोई भक्त बाबा के लिए एक बहुत सुन्दर बाघम्बर और लकड़ी की आशा भेंट स्वरूप दे गया था। बाबा उस समय पुरबनी वाली बगीची में विराजे हुए थे। पास में अनेकों भक्तों का समुदाय था। बाबा ने वह बाघम्बर और वह आशा वहाँ पर बैठे हुए करौली निवासी डोंगा नाथ पटवा को दे दिया।

उल्लेखनीय है कि डोंगा नाथ पटवा बाबा का भक्त था। आगे चलंकर वह साधु हो गया। कहते हैं कि करौली में उसने बहुत ख्याति प्राप्त की जयपुर तक उसके चमत्कारों की धूम थी। वह समय-समय पर वैर आया करता और बाबा की सेवा किया करता था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 18

मटा! अभी क्या देखा हैं

भुसावर निवासी प्रभुदयाल पाण्डेय बाबा की सेवा में आया जाया करते थे। एक बार उनकी लड़की मकान से गिर कर मर गयी। वह बहुत दुःखी हुए और वैर आकर बाबा से अपना दुःख निवेदन किया। बाबा बोले–"अभी क्या देखा है" कुछ दिन बाद उसका पुत्र भी मर गया। उसके सिर्फ एक पुत्री और एक पुत्र ही था। उन दोनों की मृत्यु के कारण उसको बड़ा भारी दुःख हुआ, वह बाबा के दरबार में पड़ा रहता था। उसे दुःखी देखकर बाबा ने आशीर्वाद दिया। बाबा बोले–"क्यों दुःखी होता है चिन्ता मत कर जोड़ा का जोड़ा ही आ रहा है "कुछ समय पश्चात उसके दो पुत्र हुए।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 19

परहित में देह त्यागना

एक बार की बात है बाबा का धूना बयाना दरवाजे बाहर एक विशाल वट वृक्ष के नीचे शेढ के मढ के पास लगा हुआ था। उन दिनों पशुओं में रोग चल रहा था, रात-दिन पशु मरते जा रहे थे। बाबा ने स्थिति की गम्भीरता को देखा और कहा–''हमारे लोटे लेकर आओ।''

उल्लेखनीय है कि विशम्भर दयाल कबाले नवीश आगरे वाले ने बारह लोटे सिलवर के भेजे थे। ये लोटे भोला धाकड उठाकर ले गया था। उसके यहाँ पांच लोटे मिले, जो बाबा के पास लाये गये। बाबा ने उन पांचों लोटों को जल से भरवाया। एक लोटे का जल अपने ऊपर डाल लिया। दूसरा लोटा बड़ के पेड के ऊपर डलवा दिया तीसरा, पीपल पर और चौथा लोटा सेठ के ऊपर तथा पाचवां लोटा अपने शिष्य नारायण दास कोतवाल पर डलवा दिया। इस प्रकार बस्ती पर आयी हुयी बीमारी शान्त हो गयी लेकिन कुछ समय पश्चात वह बड़ तथा पीपल के पेड़ सूख गये। शीतला का रोग भी शान्त हो गया और कुछ समय पश्चात अपना शरीर छोड़ दिया। एक दिन मैंने बाबा से कहा–कि हुजूर आप इस पेड़ के नीचे विराजे हुए थे वह सूख गया। बाबा बोले–''अभी पेड़ सूखा नहीं है, हरा है तू देखकर आ।'' मैं जब उसे देखने गया तो उसमें एक डाली हरी बनी हुई थी बाकी पूरा देख कर आ।'' मैं अब उसे देखने गया कि उसमें एक डाली हरी बनी हुयी थी बाकी पूरा पेड़ सूखा हुआ था। बाबा से आकर मैंने सारी स्थिति वर्णन किया और बोले–''पेड हमारा लगा हुआ है, तू उसे काट-काट कर धूना पर ले आना। कुछ समय पश्चात् बाबा ने अपना शरीर छोड़ा। भण्डारे में लकड़ी की आवश्यकता पड़ी। साधुओं की जमातें इकट्ठी हुईं। सर्दी का समय था। लकड़ी की बहुत आवश्यकता थी, मुझे हुजूर के वचन याद आये। नारायण दास जी को बाबा के पश्चात् सर्व सम्मति से बाबा का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। श्री नारायण दास जी की आज्ञा के अनुसार मैं बड के पेड़ से लकड़ी लेने गया। जब हम बड़ की लकड़ी काट रहे थे। और दो गाड़ियों में लकड़ियों को लाद लिया तो द्वारिका प्रसाद जी नागायच ने हमको ऐसा करने से रोका और कहा–''इन्हें ले आइये अब मत आना।'' उन लकड़ियों की गाड़ियों को समाधि स्थान पर ले आये। भण्डारे का काम हुआ। साधुओं के लिए लकड़ी काम आयी। एक दो दिन पश्चात् ही द्वारिका प्रसाद नगाचय को कुछ स्वप्न हुआ। वह धूने पर आकर नारायण दासजी को उस बड़ की शेष लकड़ियों को ले जाने की कहा गये।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 20

हम सत्य लोक में ही बैठे हैं।

[सत्यलोक प्रस्थान अगहन सुदी षष्टमी मंगलवार सम्वत् 2016,
सन् 16 दिसम्बर, 1958]

एक बार की घटना है कि बाबा राम की दुकान के समने शिवालय के चबूतरे पर विराजे हुए थे। उसी समय दो बड़े तेजस्वी महात्मा जिनमें एक काले रंग का काले कपड़े पहने हुए था तथा दूसरा गोरे रंगा का था, जिसने पीले वस्त्र पहन रखे थे। दोनों बाबा के समने आकर खड़े हो गये। उनमें से एक बोले–"कि तुम अभी तक गये नहीं तुम चोर हो, तुमने वायदा खिलाफी की है।" बाबा उनकी, बात सुनकर चुप रहे और अपना सिर नीचा कर लिया। वे दोनों साधु ऐसा कहकर चले गये। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि वे काल भैरव थे। कुछ का अनुमान है कि वे धर्मराज के भेजे दूत थे। जो बाबा को सत्यलोक जाने का इशारा कर गये थे।

कुछ समय पश्चात् बाबा ने अन्न जल त्याग दिया। कम से कम 15 दिन तक उन्हेंने अन्न जल गांजा, सुलफा सभी चीजों का त्याग कर दिया और वे अखण्ड प्रणव'' का जाप करने लगे। वह अक्सर दामोदरजी महाराज वाले कुँए का जल मंगवाया करते थे। उस कुँए के जल को पसंद करते थे और श्रेष्ट बतलाया करते थे। जल की बाल्टी मंगाकर रखा लिया करते थे लेकिन उसे पीते न थे। ये क्रम लगभग पन्द्रह दिन तक चलता रहा था। बाबा के देह त्याग के दिन पूर्व सायं श्री देवीराम तहसीलदार भुसावर वाला बाबा के पास आये और बोले–"ये वस्त्र जीर्ण हो गया है इसको बदल डालो और सत्यलोक को प्रस्थान करो।" बाबा ने उससे कहा–"हम सत्य लोक में ही बैठे हैं और सत्यलोक से ही बोल रहे हैं।"

दूसरे दिन अगहन सुदी षष्ठमी प्रातः 5.00 बजे मैं चुंगी की ड्यूटी हेतु प्रातः काल की बस से जांच हेतु वहाँ से गुजर रहा था। बाबा उस समय गोवर्धन कोठारी पुत्र श्री अन्तुलाल, जगनु कोठारी की टीन में चारपाई पर लेटे हुए थे। पास ही धूना चल रहा था। मैं वहाँ से गुजर रहा था और बाबा को रुककर प्रणाम किया। इतने में बाबा ने आवाज लगाई "मन्नू तू आ गया क्या?" मैंने कहा-"हाँ हुजूर।" बाबा बोले-"इधर आ मेरे अंगूठे को देख, मुझे कुछ शुभा (शक) सा लगता है कहीं टट्टी, पेशाब का चिह्न तो नहीं है, छीट तो नहीं है, मैंने टार्च लगाकर देखा कुछ नहीं था। सिर्फ एक पानी की सी बूंद बाबा के अंगूठे पर लगी हुई थी। बाबा ने कहा–"इसे धो डालो" मैंने जल लेकर उसे कई बार धोया, बाबा ने अपने दोनों हाथ कोहनी तक धूलवाये और कहा–"इसे साफी से पौंछ दे। मेरे पास उस वक्त साफी नहीं थी

तो मैंने अपनी कमीज से ही बाबा के दोनों हाथों को पौंछ दिया। यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि बाबा ने मुझे एक माह पहले यह हुक्म दिया था कि लाला। साफी रखा कर ''लेकिन आज भी मेरे पास साफी नहीं थी। इसके बाद बाबा ने कहा–कि मन्नु मेरी चद्दर निकालो। मैंने बाबा के सिरहाने से बाबा की प्रिय चादर जो भगवे रंग की एवं सूती थी। यह चादर बाबा को बहुत अच्छी लगती थी। उसे वे हमेशा अपने पास रखते थे। इस चादर को एक दशनामी साधु ने भेंट किया था। उसके पास कई चद्दरें थी, लेकिन बाबा ने इसी रंग की भगवे रंग की सूती चादर को लेकर अपने पास रख लिया था। मैंने उस चादर को बाबा के सिरहाने से निकाल कर दे दिया। बाबा ने उसे अपने ऊपर ओढ लिया और मुझसे बोले कि ''मन्नु जरा मुझे ऊपर सरका, मैंने बाबा के शरीर को सिरहाने की ओर सरका दिया। इसके बाद बाबा पुनः बोले–"कि जरा और सरका, मैंने बाबा के शरीर को सिरहाने की ओर सरका दिया। इसके बाद बाबा पुनः बोले कि जरा और सरका" मैंने आज्ञा का पालन किया। तीसरी बार और ज्यादा सरकाने की गुंजाइश नहीं थी। ऐसा करने से आधा शरीर जमीन में लटक जाता, मैंने झल्ला कर कहा ''हुजूर अब तो आप नीचे गिर जाओगे।'' पास ही जांगिड़ ब्राह्मण, जिसको बाबा पण्डित कहते हैं और प्रायः बाहर से बाबा की सेवा में आया जाया करता था। वह पास ही बैठा हुआ था। बाबा ने अपने दोनों पैर लम्बे कर दिये और अपना सिर सिराने की ओर नीचे की ओर लटकाया, मैंने उस जांगिड़ ब्राह्मण से कहा–''पीछे की ओर बाबा के सिर के नीचे हाथों का सहारा लगा'' कुछ समय उपरान्त बाबा ने अपने-प्राणों को ब्रह्मरन्द्र में चढ़ा दिया और शांत हो गये। अब बाबा सत्यलोक को प्रस्थान कर चुके थे।

उल्लेखनीय है कि बाबा हमेशा प्रणव का जाप (ॐ) किया करते थे और ब्रह्मलीन रहा करते थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमेशा सत्य लोक में ही निवास करते थे। वे वास्तव में जीवन मुक्त थे। उन्हें इस बाहरी संसार का बहुत कम आभास रहता था। वे इसमें रहते हुए भी नहीं रहते थे। जैसे कोई पक्षी पर्वत के शिखर से उतर कर मैदान में आ जाता है और मैदान से उड़कर बहुत उँचे पर्वत शिखर पर जा बैठता है। ठीक उसी प्रकार उन्हेंने अपने प्राणों को खींच कर सत्यलोक को प्रस्थान किया।

बाबा के देह त्याग के पश्चात् मैंने देखा कि बाबा की चारपाई के नीचे से एक सफेद कुत्ता निकल कर बाहर रास्ते में आ गया और दूसरी तरफ से काला कुत्ता आया उन दोनों कुत्तों में बहुत जोर की लड़ाई हुई। इस लीला का रहस्य मालूम नहीं! क्या घटना थी?

मैंने जाकर नारायण दास कोतवाल को ऊपर, धूला पर जाकर जगाया और उसे महाप्रस्थान की सूचना सुनाई उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वहाँ से चलकर बाबा के पास आये और उन्हें बड़ा भारी दुःख हुआ। प्रातः शव यात्रा हेतु सभी तैयारियाँ

हुई। लोगों ने काफी पैसा लगभग 1800/- रु. बाबा के अन्तिम संस्कार हेतु सेवा में भेंट किये।

डॉ. रांधेय राघव ने जब बाबा की देह त्याग का समाचार सुना तो वे एक फूलों की डलिया भर कर बाबा के पार्थिव शरीर पर अर्पण किया। राजा गजेन्द्र सिंह को एक स्वप्न जिसमें यह कहा गया–''कि तुम्हारे भाई चले गये हैं।'' (गुजर गये हैं) उनके भाई गोपालगढ़ भरतपुर में रहते थे उन्होंने सोचा उनमें से कोई गुजर गया होगा। लेकिन वैर आकर पता चला कि बाबा नहीं रहे। वे सब कुछ समझ गये बाबा अक्सर राजा गजेन्द्र सिंह जी को भाई कहा करते थे। रात्रि के स्वप्न का मतलव समझ गये। बाबा की मृत्यु का समाचार सुनकर आस-पास के गाँवों से भारी मात्रा में जन समुदाय उमड़ पड़ा। एक बहुत सुन्दर विमान तैयार कराया गया। जिसे राजा गजेन्द्र सिंह जी के ट्रेक्टर में लगाया गया। बाबा को उसमें विराजमान कर दिया गया। आगे-आगे बैंड-बाजे हरि कीर्तन की पार्टियाँ तथा झालर घंटे, शंखध्वनि करते हुए भक्तों का समुदाय चला जा रहा था। लघुकाशी के महान सन्त की यह अन्तिम यात्रा थी। जिसे बहुत भक्ति भाव से निकली जा रही थी। जनता की आंखों से अश्रु बह रहे थे। उस समय बस्ती में ऐसा कोई भी नहीं था जो अपने घरों सें निकलकर बाबा के दर्शनार्थ न आये हों। पूरी बस्ती में बाबा की शव यात्रा निकाली गयी। बयाना, भुसावर, भरतपुर जहाँ जिसने सुना, सब चल कर बाबा के अन्तिम दर्शनार्थ वैर आये। जैसा कि पूर्व प्रसंगों, के संस्मरणों में बाताया जा चुका है कि राजा गजेन्द्र सिंह जी से ट्रेक्टर चलवा कर, घुमवाकर किले की उत्तरी पश्चिमी बुर्ज के पास वाला भूखण्ड बाबा ने ले लिया था। सभी बस्ती वालों ने भी उसी स्थान को अन्तिम संस्कार के लिए पसन्द किया। बस्ती के लोगों ने राजा गजेन्द्र सिंह से इस भूखण्ड को बाबा के अन्तिम संस्कार के लिए देने का निवेदन किया वे बोले–''कि यह जमीन तो बाबा ने मुझ से पहले ही ले ली थी। सब कुछ बाबा का ही है। जितनी जमीन चाहो ले लो मैं और मेरा सर्वस्व उन्हीं का है।''

यह दिन अगहन सुदी छट्ट (छः) मंगलवार दिनांक 16.12.1958 (सम्वत् 2016) या। दिन के लगभग तीन बजे बाबा को अन्तिम संस्कार श्री नारायण दास जी द्वारा किया गया। जिन्हें अपना पूर्व में ही अपना शिष्य बनाकर उन्हें अपना धूना सोंप दिया था। अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। बाबा बृजलाला उस समय दिल्ली में थे। उन्हें अपने गुरु देव के महाप्रस्थान की सूचना स्वप्न में हुई। वे वहाँ से चल दिये। लगभग चार बजे जब बाबा का अन्तिम संस्कार हो रहा था। वे आकर सम्मलित हुए अपने गुरु के वियोग से बहुत दुःखी हुये। श्री कुन्दन दास जी उस समय बयाना कुण्डे के पास रहते थे। उसने सुना तो वह भी चलकर वैर आ गये। इस प्रकार बाबा का अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ, बाबा को चादर ओढ़ा रखी थी। लोग प्रसाद रूप में अपने बच्चों के ताबीज हेतु ले गये। इसके बाद संस्कार स्थल पर रामायण कीर्तन एवं भागवत के कार्यक्रम हुए। बहुत बड़ा भण्डारा किया गया।

ब्राह्मण तथा साधु और सभी बस्ती वाले आस-पास के क्षेत्रों की जनता सबने बाबा का प्रसाद पाया। प्रसाद में खीर पूवा तथा आलू का झोल बनाया गया। गाड़ियों में भर-भर के प्रसाद गली मोहल्ले में, प्रत्येक घर में वितरित किया गया। वैसा भण्डारा अभी तक बस्ती में किसी भी साधु का देखने को नहीं मिला, बड़ा आलौकिक नजारा था। अनेक प्रकार के साधु संत जिसमें कोई लोहे की आडबन्द लंगोटी लगाये हुए, कोई अघोरी था। अनेक प्रकार के वैष्णव एवं संन्यासी साधुओं की जमातें बाबा के भण्डारे में सम्मलित हुई। बाबा के "फूलों" को बाबा कुन्दन दास और बृजलाला बाबा के साथ में प. द्वारिका प्रसाद जी (सुनारी वाले) एवं उनकी माता भी साथ गयी थी। इलाहबाद त्रिवेणी में कुन्दनदास ने बाबा के अस्थि कलश को विसर्जित किया। कुन्दन दास बाबा के संस्मरण सुना रहे थे कि "जब मैंने गुरुदेव के अस्थि कलश को त्रिवेणी में विसर्जित किया तो मुझे गुरु के साक्षात दर्शन हुए (गंगा जल में) और वह कलश बहता हुआ सीधा बहुत दूर तक दिखाई दिया।

इस प्रकार गुरुदेव की महा प्रस्थान लीला का यह अध्याय पूरा हुआ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 21

छोरा! मूर्ति छोड़ना नहीं है.....

एक व्यक्ति जो ग्राम बहज (डीग) निवासी था, बैंक सेवा में था। बाबा के पास आया करता था। बाबा उसे अक्सर दरोगा जी कहा करते थे। वह बाबा से कहता "मैं बैंक में नौकर हूँ, दरोगा नहीं हूं।" बाबा ने कहा–"हाँ मटा, तेरा ज्ञान न्यारा है।" कुछ समय पश्चात् वह कोई परीक्षा पास कर पुलिस में दरोगा बन गया। उसकी सेवा जयपुर में थी। बाबा के सत्यलोक गमन के पश्चात् वह वैर आकर गुरु दरबार में नारायण दास एवं कुन्दन दास की सेवा किया करता था। वर्तमान मन्दिर निर्माणधीन था। उसमें मूर्ति की स्थापना के लिए नारायण दास जी ने इस दरोगा से विचार विमर्श किया एवं उसे 500/- मूर्ति बनवाने के लिए नारायण दास जी जे दिये। मूर्ति जयपुर में वनवाई गयी। इस सम्बन्ध में कुन्दन दास ने अपना एक संस्मरण मुझे सुनाया। कुन्दन दास और बृजु सेठ (वक्तू) के दोनों जयपुर गये और उस दरोगा से सम्पर्क किया। मूर्ति तैयार हो चुकी थी लेकिन उसमें कुछ कमियाँ थी। एक तो गले में रुदाक्ष की माला बनाई हुई थी। दूसरे आकृति कुछ नीचे झुकी हुई लगती थी। चेडरे की बनावट भी उनके मूल स्वरूप से कुछ भिन्नता लिए हुए थी। कुन्दन दास को वह मूर्ति पसन्द न आयी और मन में दूसरी मूर्ति बनवाने की बात सोचने लगे। रात्रि में वहीं विस्राम किया। रात को सो रहे थे तो कुन्दन दास ने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में गुरुदेव ने उनको दर्शन देकर

आदेश दिया–''छोरा! मूर्ति को छोड़ना नहीं हैं।'' उस रात बृजलाल बक्तू का जो साथ ही सो रहा था उसे भी स्वप्न हुआ की बच्चा छत से गिर गया है, चिन्ता की कोई बात नहीं। अपने-अपने स्वप्न की बातें एक दूसरे को सुनाई। मूर्ति को ले जाने का निश्चिय किया गया। मूर्तिकार से रुदाक्ष की माला बना दी गयी और मूर्ति को वैर लाकर मन्दिर में स्थापित करवा दिया गया। श्री बृजलाल वक्तू ने जो स्वप्न देखा था उसकी जानकारी यथार्थ निकली, बच्चा गिर गया था लेकिन खतरे से बाहर था। मूर्ति की लागत 700/- रु. थी जिसमें 200/- रु. उस दरोगा ने दिये थे।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि कुछ ट्रस्ट के सदस्यों एवं महन्त श्री जयरामदास जी महाराज के मन में वर्तमान मूर्ति को हटाकर बाबा की नयी मूर्ति बनवा के मन्दिर में स्थापना करने का विचार आया। लेकिन हमारे विरोध करने पर और मूर्ति की इस चमत्कारपूर्ण घटना को जो कुन्दनदास ने स्वयं हमें सुनाई थी। लोगों को मूर्ति न बदलने के लिए दबाव डाला गया। हमारे विचार पर लोगों ने सहमति प्रदान की और जिस मूर्ति को श्रद्धा भक्ति के साथ मन्दिर के संस्थापक श्री श्री 1008 श्री नारायण दास जी महाराज (दरबार साहब) की सहमति से जयपुर से वनवाकर लाये थे और स्वयं बाबा साहब ने स्वप्न देकर इसी मूर्ति को ले जाकर मन्दिर में स्थापना करने का हुक्म दिया था। वही मूर्ति वर्तमन में स्थापित है। आज मन्दिर का वैभव दिन दूना-रात चौगनी बढ़ता चला जा रहा है और दशों दिशांओं में बाबा के नाम की जय जयकार गूंज रही है।

वह इसी मूर्ति का चमत्कार है।

अलख पुरुष की आरसी, संतों का ही देह।

लखना चाहै अलख को, इन ही में लख लेय॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 22

छोरा! कुआँ में नहीं गिर जाय

अपने संस्मरण सुनाते हुए श्री बृजलाल गुप्ता ने बताया कि मेरी पत्नी के लगातार दो लड़कियाँ जन्मी तथा मेरे छोटे भाई सोनी के दो लड़के थे। समाज की कुप्रथा के अनुसार लड़की पैदा होने के कारण मेरी पत्नी की ज्यादा इज्जत नहीं थी और छोटे भाई सोनी को घरवाले अधिक महत्त्व देते थे। मेरी पत्नी को इस बात का बड़ा दुःख रहता था। वह मुझसे बोली कि–''लड़कों से घर में इज्जत होती है'' एक दिन की बात है मौहल्ले की कुछ औरतें बावड़ी वाले हनुमान पर जा रही थी। उधर से लौटते समय भरतपुर दरवाजे बाहर पुरवनी वाली बगीची में बाबा मनोहरदास

का आरान लगा हुआ था। उन सभी औरतों के साथ मेरी पत्नी भी दोनों लड़कियों को साथ लेकर बाबा के दर्शनार्थ वहाँ पहुंची। सभी औरतें बाबा के चरण छूकर चली गयीं। उन दोनों ने लड़कों जैसी शर्ट पहन रखी थी। उनमें से एक लड़की कुएं पर चढ़ गयी। बाबा बोले–"छोरा, कुँआ पर चढ़ गया है, कुए में नहीं गिर जायें"। मैंने कहा हुजूर छोरा नहीं छोरी है। बाबा बोले–"यह दूसरा" मैंने कहा यह भी लड़की है। बाबा कहने लगे–"जा मेरे मटा" ऐसा कहकर बाबा चुप लगा गये, मैं समझ गया कि हुजूर का आशीर्वाद मिल चुका है। कुछ समय पश्चात् मेरी पत्नी को एक पुत्र हुआ जिसका नाम अब सतीश है। इस प्रकार गुरुदेव सभी की मन की कामनाओं को सहज में ही पूरा कर दिया करते थे। जो भी उनके दरवार में जिस इच्छा से आता और सच्चे हृदय से बाबा से निवेदन करता, बाबा उसकी मनोकामनाएं पूरी करते। किसी को धन, किसी को पुत्र, किसी को काया निर्मल करना, किसी को मुकदमें में विजय, यहाँ तक कि मरे हुए को भी जीवनदान देने की शक्ति हुजूर में देखी गयी। वे किसी से कुछ चाहते न थे। वे सच्चे अर्थों में देवता थे। अनेक प्रकार की वस्तुएँ देकर भक्तों का कल्याण करना उनका ध्येय था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 23

अलख पुरुष की आरसी

जैसा की संसार के अन्दर साधु सन्तों की वेश-भुषायें, साम्प्रदायकि चिह्न, माला, तिलक आदि देखे जाते हैं। हुजूर महाराज में इस तरह का बाहरी दिखावा नहीं था। वे देखने में एक सामान्य इन्सान की तरह दिखाई देते थे। साधारण धोती कुर्त्ता एवं जाकिट, सिर पर लम्बे बाल, ऊपर काली टोपी पैरों मे जूते, कन्धे पर सॉफी, कभी-कभी वह अपनी पिण्डलियों में पुलिस के सिपाही की तरह गैटिस लपेट लिया करते थे। हाथ में दण्ड धारण करते थे। एक हाथ में चिलम जिसमें गांजा या सुलफा भरा होता था, लिए रहते थे। अपने मुंह से प्रायः "अलख" पुरुष मूर्ति "शाह गरीब निदाज तथा ॐ सोहंच शिव ॐ सोहं" जैसे शब्दों का अपनी मस्ती में उच्चारण करते रहा करते थे। उनके हृदय में ज्ञान का अथाह सागर हिलोरे लेता था। वे सच्चे मायने में परम संत थे। "अलख पुरुष" के रूप में साक्षात नर रूप में श्री हरि ही थे। किसी ने कहा है–"अलख पुरुष की आरसी, संतन का ही देह।

लखना चाहें अलख को, इनमें ही लख लेप॥

अर्थात् ईश्वर निर्गुण निराकार है उसको साकार रूप में अगर देखना है तो संतों के रूप में देखा जा सकता है। बाबा का व्यक्तित्व बहुत ही अलौकिक था। वे हमेशा किसी अज्ञात तत्व में डूबे रहते थे। ईश्वर के नाम जप को वे सभी साधनों

और सिद्धियों का मूल बताया करते थे। ईश्वर के नाम को न भूलना, अखण्ड उसका चिन्तन करते रहना, उनका स्वभाव था। वो कहा करते थे। कि –''याद है तो आबाद है, भूल गया तो बर्बाद है।''

''गुरु गुरु जप रे, यही तेरा तप रे'' गुरु नाम सार है और सब बेकार है।''

ध्यान मूलं गुरोमूर्तिः पूजा मूलं गुरु पदम्।

मंत्र मूलं गुर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरु कृपा॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 24

बड़ी बहू का छोरा

एक बार एक नव युवक सन्त गोरे-भूरे, रंग का, नयी उम्र वाला योग्य गुरु की तलाश में इधर-उधर भटक रहा था। जहाँ भी सुनता अनेक संतों और साधुओं के पास जाया-आया करता था। एक बार कैलादेवी झील में वह आया हुआ था। वहाँ पर उसने वैर में स्थित सिद्ध संत बाबा मनोहर दास बाबा के बारे में सुना। वह झील के बाड़े से चलकर वैर आया। यह बात लगभग सन् 1949 या 50 की है। उसने अपने मन में यह निश्चित कर रखा था कि–जिस महात्मा से मैं अन्तः करण से प्रभावित हूंगा उसी को अपना गुरु बनाऊँगा।'' बाबा का आसन उस समय गिरधारीदास के मन्दिर में लगा हुआ था। धूना चेत रहा था। भक्तों का समुदाय बैठा हुआ था। वह साधु बाबा के दर्शनों के लिए वहाँ पहुंचा। बाबा बोला–''अरे! बड़ी बहु का छोरा, तू कहाँ भूला भटका फिरता है''– बाबा उससे बड़े प्रसन्न होकर मिले। वह साधु उस समय फलहारी था। अन्न का सेवन नहीं किया करता था। बाबा ने एक दिन उसके लिए उड़द की दाल और एक रोटी भिजवायी। उसने लेने से इन्कार किया और मन में बोला–अरे! ये कैसे सिद्ध हैं कि मैं अन्न नहीं खाता हूँ फिर भी मुझे दाल रोटी भेज दी, लोगों ने उसे समझाया कि ये महान सन्त का प्रसाद है इसका त्याग मत करो। तुम्हारा कल्याण होगा। इसने उनको लेकर बड़े प्रेम से पा लिया। बाबा उसको बहुत प्रेम करते थे। यहाँ तक कि अपने साथ भोजन भी करा लिया करते थे। वह साधु भी बाबा से बहुत प्रभावित था क्योंकि बाबा ने शुरु में ही अपनी सर्वज्ञता का भान करा दिया था। बाबा ने उसे बड़ी बहु का छोरा कहा, जिसका रहस्य उसने यह बताया कि घरवाले उसकी माँ को बड़ी बहु के नाम से ही कहा करते थे। इस शब्द को सुनकर ही उस साधु की आँखें खुल गयी और उसने बाबा को अपना गुरुदेव स्वीकार किया। इस तरह वह काफी समय तक बाबा के पास रहा। बाबा ने उसे गृहस्थी होने का हुक्म दिया और गृहस्थाश्रम में रहते हुए

नेक नियति से परिश्रम करते हुए प्रभु की आराधना करते रहने का हुक्म दिया। वह अपने उत्तर प्रदेश, मेरठ जिले का रहने वाला था। इसका नाम डॉ. राम दुलारे वर्मा था। जिसे लोग "सोनी साहब" के नाम से पुकारते थे। उन्होंने शादी की। उनके एक पुत्री उत्पन्न हुई तथा घर से वैराग्य ले लिया। वह अपने गुरु दरबार में आया-जाया करता था।

एक बार हुजूर अपनी मस्ती में विराजे हुए थे। मुझे (बृजलाल) बोले- "कागज और कलम ला" मैं उस समय चुंगी क्लर्क था। कागज और पैन मेरे पास ही थे। हुजूर ने कुछ छन्द जिसमें साधना का रहस्य भरा हुआ था और साधुओं के लिए बहुत उपयोगी निर्देश थे। मुझे लिखाये और कहा कि इन्हें इसे दे दो। मेरी हस्तलिपि से वह कॉपी जिसमें लगभग 10 या 12 छन्द लिखे हुए थे। मैंने सोनी साहब को दे दिये। वह उसे लेकर अपने गाँव चला गया। इसके पश्चात् लगभग 20 वर्ष बाद पुनः वैर आया। उसका रूप एक नेता जैसा था। सफेद टोपी, सफेद खद्दर का कुर्त्ता घुटनों से नीचे तक, पाजामा पहने हुए, सबसे पहले वह मन्दिर में बाबा की समाधि पर गया और फिर बाबा कुन्दन दास के पास जो उस समय मन्दिर के सामने वांयी ओर स्थित जस्सा की धर्मशाला में अपने तखत पर विश्राम किये हुए थे। वह बाबा कुन्दन दास के पास जाकर बैठ गया। बाबा बोले-"कहाँ का नेता है" वह बोले पहचान लो कहाँ का नेता है। कुन्दन दास जी बोले-"आवाज से सोनी से लगते हैं।" वह बोला-"गुरुभाई ठीक पहचाना" वह कुन्दन दास को बहुत सम्मान देता था और भाई साहब कहकर उच्चारण किया करता था। वहाँ से चलकर मेरी दुकान पर आकर खड़ा हो गया। मुझसे बोला-"पहचानते हो मुझे" यद्यपि गुरु दरबार मे मेरे साथ खूब रहा था लेकिन समय के प्रभाव से और वेश-भूषा के बदल जाने से मैं उसे पहचान न सका। उसने अपने बैग से एक पुरानी कॉपी जिसमें मेरे हस्त लिखित छन्द लिखे थे। मेरे हाथ में थमायी। मैं तुरन्त अपना हस्त लेखन पहचान गया और पुरानी घटना मेरे दिमाग में याद हो आयी। अब मैंने उन्हें पहचान लिया था। इसके बाद वह पुनः वैर आया और धूना पर स्थित आस्रम में निवास किया।

शाला के ऊपर नया बरामदा और झीना तथा पानी की टंकी जनता का सहयोग लेकर उसने बनवायी थी। नवयुवक वर्ग को बाबा के समय के संस्मरण वह सुनाया करता था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 25

कोढ़ी को काया प्रदान करना

ग्राम जघीना निवासी हरी सिंह पहलवान, जिसके सम्पूर्ण शरीर में कोढ़ था। अपने दुःख से दुःखी होकर बाबा की शरण में आया वह अपनी वीमार काया से बड़ा ही दुःखी था क्योंकि उसके घावों से दुर्गन्ध आती रहती थी। लोग उससे घृणा करते थे। अपनी दशा उसे असहनीय थी। वह आत्म हत्या करने पर भी उतारू था। वह बाबा की तपोस्थली (धूना) के सामने वाली धर्मशाला दरामदे में पड़ा रहता था। बाबा के लिए जो भोजन प्रसाद आया करता, उसे हुजूर उसके लिए भेज दिया करते। वह लगभग 6 माह तक बाबा के दरबार के सामने पड़ा रहा और अन्त में बाबा ने अपनी कृपा दृष्टि से उसे पूर्ण स्वस्थ कर दिया। लगभग 10 या 12 वर्ष बाद वह पुनः वैर आया। लम्बा पूरा बलिष्ठ शरीर, पर चन्दन का लेप, भगवा वस्त्र धारी एक महात्मा जब मेरी (स्व. गंगा सहाय नाई) और पैर छूने के लिए आगे बढ़ा तो मैंने उसे टोका, महाराज आप महात्मा होकर हमारे पैर क्यों छूते हो, हमारे ऊपर पाप चढाते हैं, लेकिन वह नहीं माना वहाँ उपस्थित सभी लोगों के चरण छूने लगा लोगों के मना करने पर वह बोला इस लघु काशी वैर का रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति मेरे लिए पूज्य है, यहाँ की तो मिट्टी कंकड़ भी मेरे लिए पूजनीय हैं, क्योंकि यह हुजूर महाराज श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहर दास जी की जन्मभूमि और तपोभूमि है। बाबा महाराज ने मेरी रोगी काया को कंचन बना दिया, उनकी कृपा से मैं पुनः समाज में सम्मानपूर्वक रह रहा हूँ। वह महात्माँ वही हरी सिंह पहलवान था जो बाबा के सत्यलोक प्रस्थान के कुछ वर्षों बाद वैर आया था। यह संस्मरण गंगासहाय ख्वास ने सुनाया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 26

दिव्य दृष्टि प्रदान करना..

एक बार एक शान्त एवं गंभीर स्वभाव वाला व्यक्ति बाबा के दरबार में आया। वह बाबा के समीप ही बैठा रहता, उनके आदेशानुसार सेवा करता रहता, हुजूर कुछ खाने को देते तो खा लेता नहीं तो पड़ा रहता, बाबा के आदेश से कभी पेड़ में पानी देता रहता तो कभी धूने के समीप सफाई आदि कार्य में लगा रहता। उसे दिव्य ज्ञान की चाह थी और योग्य गुरुदेव की तलाश करता हुआ लघुकाशी वैर तक आया था उसने हुजूर बाबा मनोहरदास का नाम सुना था। अतः वह उनसे

दिव्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से यहाँ उनकी सेवा में आया था। कहते हैं कि वह लगभग 2 महीने तक बाबा के धूने पर सेवा करता रहा। एक दिन लोगों ने देखा कि वह (शाला) में मृतवत पड़ा है, उसका शरीर मलमूत्र से सना हुआ, बड़ी ही घृणास्पद स्थिति में पड़ा हुआ था।

बाबा महाराज अपने धूने के पूर्वी द्वार के चबूतरे पर शान्त मुद्रा में चिलम हाथ में थामे हुये अपने ध्यान में मस्त विराजे हुये थे। तभी किसी व्यक्ति ने उनकी शान्ति भंग की और कहा–"बाबा! आपकी शाला में एक व्यक्ति मरा पड़ा है।" बाबा बोले अरे! कैसे मर गया साले जाने कहाँ-कहाँ से आकर यहाँ मरते हैं। फेंको इसे यहाँ से" इतने में मैं वहाँ पर पहुँच गया। बाबा ने मुझसे नगरपालिका से हरिजन कर्मचारी बुलाकर उसे घूरे पर फिकवाने के आदेश दिया। मैं उनकी आज्ञा पालन करने हेतु दुर्गा परसादी हरिजन को लेकर वहाँ पहुंचा तो हुजूर ने कहा–"फेंक दो साले को घूरे पर"। हम उसे बड़ी मुश्किल से उठा पाये क्योंकि वह गन्दगी में सना पड़ा था। जब हम उसे घूरे पर फैंकने जा रहे थे तो पास में ही दूकान करने वाले भोलीराम धाकड़ ने हमसे गिड़गिड़ा कर कहा कि इसे घूरे पर मत फैंको कुत्ते खा जायेंगे इसे तू धर्मशाला के बरामदे में रख दो।" उसके कहने से हमने ऐसा ही किया। बाबा के धूने के सामने वाली धर्मशाला में जिसमें अब डॉ. रांग्येराघव पुस्तकालय है डाल दिया। दूसरे दिन हमने देखा कि वह व्यक्ति पूर्ण स्वरूप एवं चेतन अवस्था में बाबा के सामने खड़ा होकर कहते लगा कि "मैं राम हूँ! मैं ही कृष्ण हूँ मैं शिव हूँ मैं, मनोहर दास हूँ।"

बाबा के हाथ में एक नीम का डण्डा था, उसके ऐसा कहते पर वाव ने बड़े ही जोर से उसकी पीठ में एक डंडा मारा, वह दूर भाग गया और कुछ देर वाद पुनः बाबा के साामने पूर्ववत दोहराने लगा "मैं ही राम, मैं ही कृष्ण, मैं ही शिव तथा मैं ही मनोहरदास हूँ।" बाबा ने उसकी पीठ में पुनः जोरदार डंडा मारा और वह फिर भाग गया इस प्रकार तीन बार उसे डंडे लगाये गये। बाबा ने इसके ज्ञान चक्षु खोल दिये थे। कुछ समय पश्चात् ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति जमुना किनारे आगरा कचहरी घाट के पास ही "कुल-कुल पाण्डेय" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह संस्मरण मुझे श्री बृजलाल गुप्ता (विरजू) ने सुनाया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 27

तेरा ध्यान न्यारा है...

बाबा मनोहर दास जी महाराज को भूत भविष्य और वर्तमान की पूर्ण जानकारी थी। वे अपने ज्ञान से जीवों के आन्तरिक संकल्प विकल्प को तथा पूर्व में सोची गई

बात को भी जान लेते थे। अनेकों भक्तों और प्रेमियों के संस्मरण इस बात के प्रमाण हैं। मुझे एक बार सीता कुण्ड पर भागवत के आयोजन में पधारे एक बुजुर्ग महात्माँ श्री भीष्म बाबा ने अपना एक पुराना संस्मरण सुनाया। बोले–"मैं एक बार अपने कुछ साथियों के साथ एक कुस्ती के दंगल में लड़ने के लिए वैर में गया साथियों ने कहा कि-यहाँ पर एक महान संत मनोहरदास जी रहते हैं, चलो उनके दर्शन करके आएँ। सबका एक मत हो गया और दर्शनार्थ चल दिये रास्ते में मैंने अपने साथियों से कहा कि बाबा सरभंग मत के हैं इसलिए मैं तो उनसे प्रसाद नहीं लूंगा। इस प्रकार की बातें करते-करते हम बाबा के आश्रम पर नहर के किनारे बड़ के पेड़ के नीचे आ गये, जहाँ बाबा अपनी मौज में विराजे हुए थे। हमने बाबा को प्रणाम किया, बाबा ने कुछ पहलवानों की पीठ विशेष रुप से तीन-तीन बार जोर से थपथपाई और अपने पास बिठाया, उनके पास एक कुल्लड़ रखा था। अपने हाथ से उसमें से पेड़ा निकाल कर सबको प्रसाद दिया लेकिन मुझे छोड़ दिया, मेरी ओर सिर हिलाते हुए कहा कि भाई तेरा ज्ञान न्यारा है" अपने एक सेवक को सम्बोधित करते हुए बोले "छोरा, जा रामजीलाल की दुकान से इनको अलग से प्रसाद ला दे क्योंकि यह वैष्णव पट्ठा है।" मैंने तुरन्त बाबा के चरण पकड़ लिए और हाथ जोड़ कर बोले–"हुजूर मैं भी इसी प्रसाद को ले लूंगा। ऐसा अनुभव हुआ कि रास्ते में हमारी जो बातें हो रहीं थी बाबा ने अपने आश्रम पर बैठे-बैठे ही सुन ली। उस दिन मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि बाबा पहुँचे हुए सिद्ध पुरुष हैं, जिन पहलवानों की पीठ विशेष रुप से ठोकी थी, दंगल में उनकी विजय हुई। इतना ही नहीं वे दूसरे दंगलों में विजयी रहे। महान् संत का आशीर्वाद जिसको मिला फिर भला वह कहीं रुक सकता है?

उपर्युक्त विवरण संस्मरण से यह सिद्ध होता है कि बाबा से कुछ छुपा नहीं था तथा जिसके हृदय में जो भाव छुपा होता था, उसकी उन्हें स्पष्ट जानकारी हो जाती थी उनका व्यवहार भावानुसार ही होता था। वे कहा करते थे–

साईं से साँचे रहो, संतों से सद्भाव।

दुनिया से ऐसे रहो, जैसा जाका भाव।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गी. 4/11)

अर्थात् जो मुझे भजता है, मैं भी उसे ठीक उसी प्रकार से ही भजता हूँ। बाबा का व्यवहार यद्यपि सबके साथ सामन था न कोई उनका मित्र था और न ही शत्रु, जिस प्रकार गंगा को पवित्र धारा में सभी जीव स्नान कर अपने तन मन को पवित्र किया करते हैं, ठीक उसी प्रकार बाबा के दरबार में सभी लोग आते थे और जिसका जैसा भाव होता उसी प्रकार अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति किया करते थे।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 28

अन्तर्यामी..... सोन हलुआ

"बाबा के दरबार में हर रोज दूर-दूर से लोग बाबा के दर्शनार्थ आया करते थे। एक दिन एक भक्त दिल्ली से आया। वह बाबा की भेंट स्वरूप एक बड़ी थैली में सोन हलुआ भरकर लाया। मैं (गंगा सहाया नाई) और कुछ अन्य लोग बाबा के पास बैठे थे। हलवा देखकर मेरे मन में उसे पाने की इच्छा उदय हुई। बाबा अपने ध्यान में मग्न विराजे हुए थे। कुछ देर तक अपनी धुन में बैठे रहे। धीरे से खड़े हुए और सोन हलवा की थैली को अपने हाथ में उठाकर बोले–"गंगा सहाया। चल ऊपर मेरी "शुद्धि वना दे" ऐसा कहकर मुझे ऊपर की कोठरी में ले गये। मैंने "शुद्धि (हजामत) वना दी। इसके बाद सोन हलवा का वह पूरा थैला मुझे देते हुए कहा–"ले इसे छुपा के ले जाना, नहीं तो नीचे कोई तोपैंते खुला लेगा" ऐसा कह कर वह पूरा थैला मुझे पकड़ा दिया। इसमें कम से कम दो किलो से अधिक हलवा रहा होगा।"

यह संस्मरण मुझे गंगा सहाय नाई ने एक दिन अखाड़े पर सुनाया इससे इस बात की जानकारी मिलती है कि वे अन्तर्यामी थे। हलवा में गंगा सहाय की नियत थी। बाबा ने उसके मन को जानकर पूरा ही उसे दे डाला। वे स्वयं कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते थे। भेंट में आई हुई वस्तु को या तो उपस्थिति सभी लोगों में बाँट देते या किसी एक को ही इसे उठा ले जाने का आदेश कर देते थे। उनकी लीला अपार थी उनकी विचारधारा किस समय क्या हो, कोई जान नहीं सकता। वे हमेशा "गुरु गुरु" आलख पुरुष मूर्ति" की रट लगाया करते थे। कभी-कभी उनका व्यवहार एक सामान्य जन का सा होता तो उनकी आँखें किसी रहस्यमई अज्ञात तत्व में डूबी नजर आती थी। उनका व्यक्तित्व एक ऐसा दस्तावेज था कि जिसे पढ़ना और समझना किसी के बस की बात नहीं थी। उनके जीवन काल में, वैर नगरी में अनेकों विचित्र संतों महात्माओं के दर्शन हुआ करते जो स्वयं बाबा के दर्शनों के लिए और अपनी भाषा में उन्हें आध्यात्म के गूढतम रहस्यों को समझा दिया करते थे। बाबा स्वयं चलते फिरते वेदांत थे। पुराण-शास्त्रों में जो आध्यात्म की जटिल बातें लिखी हैं, उन्हें वे सीधी और सरल बोधगम्य भाषा में अपने भक्तों को समझा दिया करते थे।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 29

प्रारब्ध का भोग अटल होता है. . .

"एक बार बाबा तहसीलदार की बगीची (जो वर्तमान में पटवार पर बन

चुकी है) में चारपाई पर लेटे हुए थे। सुबह मैंने आकर बाबा को नमस्कार की और भोजन के लिए निवेदन किया लेकिन बाबा ने मना कर दिया। वे चारपाई में पड़े हुए थे जोर से बुखार आ रहा था। मैं अपने घर गया और भोजन लेकर पुनः आग्रह किया लेकिन हुजूर पड़े-पड़े कराह रहे थे। जब अधिक आग्रह किया गया तो वे उठकर बैठे हो गये तथा खाट से खड़े होकर पास की एक पटिया (पत्थर) पर बैठ गये। मैंने देखा अभी यह बुखार में कराह रहे थे और अब कुछ नजर नहीं आता? बोले "छोरा नहीं माने तो ला कुछ खाय लेता हूँ।" मैं बोला–"बाबा आप बड़ी मक्कड़ी बनाते हो, अभी तो तुम बुखार का बहाना बना रहे थे और अब आपको कुछ नहीं है।" बाबा चिलम का कश खींचते हुए बोले-"मेरे मटा–तू झूठ माने देख मोय तिजारी चढ़ रही है।" अब मैंने उसे चारपाई पर रख दिया है। मैंने प्रत्यक्ष देंखा कि चारपाई हिल रही थी। मैंने बाबा से कहा-"कि आपने इसे चारपाई पर क्यों उतार दिया है इसे आप इस पीपल के पेड़ से लटका दो ताकि यह तुम्हें फिर परेशान नहीं करे।" बाबा बोले–"मेरे मटा! यह मेरे प्रारब्ध का भोग है, इसे मुझे ही भोगना है। अगर अभी भी मैं इसे अपनी तपस्या के बल से दूर कर दूं तो यह अवसर पाकर पुनः लौटेगा। प्रारब्ध भोग अटल होता है उसे भोग कर ही समाप्त करना पड़ता है। बाबा ने कुछ भोजन किया और पुनः अपनी चारपाई में लेट गये। अब पुनः उन्होंने तिजारी को अपनी शरीर में ले लिया और पीड़ा से कराहने लगे।

(यह संस्मरण मुझे श्री जगदीश जी पुरोहित ने बाबा के धूने पर सुनाया था।)

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 30

मेरे मटा! तेरौ ज्ञान ध्यान न्यारा है

घटना लगभग सं. 1948 ई. की है। बाबा भरतपुर के अनाह गेट की ओर से नुमाईस देखकर आ रहे थे। उनके साथ हरीशंकर तहसीलदार रतन सिंह तथा कुछ और लोग थे। बाबा अपनी धुन में मस्त होकर चल रहे थे रास्ते में पुलिस चौकी पड़ती थी। आप वहीं कुछ देर रुके चौंकी पर एक धोबी जाती का सिपाही था। उससे चिलम मांगकर पीने लगे। गढ़ और चौकी के बीच में पूर्व की ओर रास्ता था, मेरी चौकी पर ड्यूटी थी। बाबा को धोबी के साथ चिलम पीता देख, मैं नहीं बोला। इसके बाद वे वहाँ से चलकर मेरी तरफ आए। मैंने उठकर प्रणाम किया। आप बोले– "छोरा बड़ा घमण्ड आ गया है। मैं बोला–बाबा मैं जब यहाँ हूँ तो फिर आप सीधे यहीं क्यों नहीं आए, धोबी के पास चिलम पीने की क्या आवश्यकता थी।" बाबा ने हमेशा की तरह अपना वाक्य दोहराया "मेरे मटा-तेरा ज्ञान ध्यान-न्यारा है। इसके

बाद हुजूर पास चबूतरे पर जिस पर कोई सफाई नहीं थी। बैठ गये। मैंने चबूतरे की सफाई कराई और आसन बिछवाया, चाय बनवाई गई। सब को चाय वितरित की लेकिन खुद बाबा ने नहीं पी। मैंने देखा की हुजूर ने सारी चाय वहाँ उपस्थित भक्तजनों में वितरित कर दी है लेकिन खुद ने नहीं ली। दोबारा चाय बनाई गयी और फिर वहीं वितरण प्रक्रिया शुरु की कभी इसे दे कभी उसे दे, लेकिन खुद नहीं ले रहे थे। मैंने नाराजगी के साथ आग्रहपूर्वक कहा-आप भी तो पियो लेकिन कोई ध्यान नहीं जब विशेष आग्रह किया तो बोले ''ला तू नहीं मानेगा।'' इसके बाद साथ के लोगों से बोले'' आज तो छोरा के यहीं ठहरेंगे।'' और लोगों को विदा करके खुद मेरे पास ठहर गये। अपनी धुन में बैठे-बैठे चिलम पीने रहे। भोजन के बारे में पूछा तो बोले'' भूख नहीं है।'' मैंने भोजन तैयार कराया, थाल में रखके उनके सामने लाकर भोजन का निवेदन किया। बाबा ने कहा-भूख नहीं ''थाल को उठाकर रख दिया मुंशी नन्हे सिंह जी भी उन दिनों वहीं थे। दरोगा रघुनाथ प्रसाद जो सायर में पटवारी थे श्री नन्हे सिंह के साथ वहाँ आ गये। बाबा ने भोजन का थाल उनको दे दिया। दोनों भोजन करके वहाँ से चले गये। मेरे पास एक इटामड़े ग्राम का ब्राह्मण का लड़का रहता था वह भोजन बना दिया करता था। उसकी इच्छा नुमाइस देखने की थी। रात को 10 या 11 बजे का समय हो गया। बाबा से मैंने कहा हुजूर अब तो भूख लगी होगी भोजन तैयार करा दूं। लेकिन आप बोले ''नहीं'' मैं भूखा नहीं हूँ। यह नुमायश देखने को जा रहा है इसे जाने दे।'' मैंने कहा ठीक है। इसे जाने देता हूँ। ऊपर चलो मैं बना देता हूँ। लेकिन कोई जबाब नहीं। मैंने विशेष आग्रह किया लेकिन भोजन नहीं किया। बाजार से 1 किलो दूध लाया, बड़े भारी आग्रह से कुछ भोग लगाया फिर जाने की जिद करने लगे, उस समय रात्रि के 12-1 बजे का होगा। मैं बोला-''इस समय कहाँ जाओगे। ''तहसीलदार हरीशंकर के यहाँ जाकर सोऊँगा और कहकर चले। मैं भी पीछे-पीछे चला लेकिन बाबा बोले ''छोरा तू जा, मेरे पीछे क्यों आता है।'' जब मैं नहीं लौटा तो गली में से एक पत्थर उठाया और मुझे धमकाया। कभी हाथ के डण्डे से मारने के लिए हीलाना। मैंने सोचा कि बाबा की इच्छा नहीं तो इनको अकेला जाने दूं। मैंने पीठ मोड़ी ही थी और लौटकर चलने लगा, एक बार पुनः मैंने पलट कर देखा, लेकिन रोड पर कोई नहीं अचानक अर्न्तध्यान हो गये।

(यह संस्मरण मुझे श्री जगदीश जी पुरोहित ने एक बाबा के धूने पर सुनाया था।)

बाबा भाव के भूखे थे उनकी दृष्टि में वस्तु और व्यक्ति किसी का महत्त्व नहीं था भाव के बिना वस्तु की कोई कीमत नहीं। वे मेहनत से कमाई गई सूखी रोटी को भगवान का महा प्रसाद मानते थे और अन्याय से कमाएँ गये धन को हाथ का पैसा ''मानकर उसके द्वारा बनाये गये भोजन को अनिष्टकारी मान कर उसका त्याग करते थे। ऐसे धन के उपयोग से साधना में विघ्न उपस्थित हो जाता है।

मानव का पतन हो जाता है। उनकी दृष्टि पारदर्शी थी उन्हें सब कुछ रहस्य का ज्ञान उसी प्रकार हो जाता था जैसे शीशे के अन्दर रखी गई वस्तु को आसानी से जाना जा सकता है। उनकी दृष्टि मानव के हृदयस्थ प्रेम पर रहती थी। जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय का उनके यहाँ कोई महत्त्व न था। भाव की प्रधानता से वे धोबी की चिलम बड़ी रुचि के साथ माँग-माँग कर पीते और विशेष आग्रह करने पर भी ब्राह्मण के यहाँ भोजन नहीं करते थे। उनका ज्ञान ध्यान न्यारा और अनौखा था। कहते हैं कि एक बार राजा जी के यहाँ से भंगिन झाड़कर आ रही थीं। उसकी डलिया में रोटी रखीं थी रास्ते में बाबा ने उससे डलिया उतरवा के उसमें से एक रोटी लेकर खाने लगे इसी प्रकार एक बार आप धूने पर विराजमान थे, एक माली जाति की लड़की अपने बाग पर रोटी लेकर जा रही थी, आप बोले-बेटी एक रोटी ला उसकी पोटली से एक रोटी लेकर हाथ पर रख के बड़े प्रेम से पाने लगे। कहने का तात्पर्य है कि उनकी दुनिया जाति, विरादरी तथा सम्प्रदाय से रहिते थी। उन्हें मेहनतकश इन्सान से लगाव था। वे अक्सर कहते थे "मटा भाद गति का भोजन आनंददायक होता है।"

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 31

जा मेरे मटा, तू आमन में ही आयेगा.....।

एक बार मेरी नियुक्ति उन दिनों हलैना विद्यालय में थी। उस समय हमारे प्रधानाध्यापक जो श्री नत्थी लाल जी नगायच थे। मेरा उनका किसी बात को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया था। वह प्रायः मुझसे रुष्ट रहते थे। उन्होंने जिला शिक्षा अधिकारी को शिकायत कर दी। मेरा स्थानान्तरण रूपवास विद्यालय में करा दिया। उल्लेखनीय कि आवागमन के साधनों के आभाव के कारण रूपवास को उस समय हम लोग "कालापानी कहा करते थे। वहाँ स्थानान्तरण करके एक तरह से मुझे दण्डित किया गया था। आने-जाने में मुझे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। यह बात आषाढ मास सन् 1941 की ही। मैं अपने गाँव वैर आया हुआ था और फिर यहाँ से अपनी ड्यूटी पर रूपवास जाने के लिए बयाना जाने वाली बस में बैठने की तैयारी में था। इतने में बाबा मनोहरदास जी महाराज घूमते हुए उधर से आ निकले। मुझसे बोले-"देवीदास।" चार आने पैसे देना" मैंने अपनी जेबों को तलाशा। जेबों में खुल्ली चव्वन्नी न थी अधिक बाबा लेते न थे इतने में ही बस चल दी और चलते-चलते मैंने बाबा से कहा–कि एक माह बाद सावन में आ रहा हूँ आपको सावन में पैसे दूंगा। "बाबा ने कहा–"चल हट तू आमन में ही आयेगा।" बाबा की अटपटी वाणी का अर्थ मेरे पहुंच से बाहर था। लगभग 15 दिन बाद मेरा स्थानान्तरण भुसावर के विद्यालय में हो गया। उस समय बाबा की वाणी का अर्थ

मेरी समझ में आया क्योंकि भुसावर हमारी तहसील में आमें के लिए ही प्रसिद्ध है "तू" आमन में ही आयेगा "का अर्थ मुझे स्पष्ट हो गया था। बाबा ने मुझे उस दिन भुसावर स्थानान्तरण का आशीर्वाद दिया था।

इससे सिद्ध होता है कि वादा की वाणी सिद्ध थी। वह एक वचन सिद्ध महात्मा थे। अपनी वाणी से जो कुछ कह दिया करते वह प्रायः अटल सत्य होता था वैसा ही होकर रहता था। वह एक अनौखे भविष्य वक्ता थे। यह संस्मरण मुझे श्री केशव देव जी ने सुनाया, जो उन्हें चाचाजी स्व. श्री नत्थीलाल जी चौबे ने सुनाया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 32

तेरी बस का ज्ञान ध्यान कुछ और है. . . .।

बात लगभग 1951 की है मैं उस समय जब महारानी श्री जाया कॉलेज भरतपुर में पढ़ता था। एक दिन रेल द्वारा अपने गाँव वैर आ रहा था। सायं को वयाना से वैर आने वाली बस में बैठा उस बस का ड्राइवर प्रभाती का था। अचानक कहीं से (तहसील की तरफ से) बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज अपनी मस्ती में घूमते हुए पंचायत समिति चौराहे की तरफ चले आये। जहाँ से बस वैर आने की तैयारी कर रही थी। उल्लेखनीय उस समय बयाना से वैर कम ही बसें चला करती थीं। यह अन्तिम बस थी। रात्रि के लगभग 9 बज चुके थे। बाबा को वहाँ आया हुआ देख ड्राइवर प्रभाती मौले के ने बाबा से निवेदन किया कि हुजूर बस में बैठिये, अभी चलता हूँ। बस उस समय सवारियों से खचाखच भरी हुई थी। और वह और सवारियों को चढाने का प्रयास कर रहा था। बाबा ने बस को देखा और बोला कि "तेरी गाड़ी का ज्ञान ध्यान कुछ और है" ऐसा कहकर बाबा अपनी मस्ती में झूमते हुए उस अंधेरी रात्रि में वैर की तरफ चल पड़े। यह दृश्य मेरे अतिरिक्त और भी लोगों ने देखा कि उस अन्धकार में कुछ दूर तक सिगरेट की चमक दिखाई पड़ी और फिर अदृश्य हो गयी। लगभग 10 मिनट बाद हमारी वह बस वैर के लिए रवाना हो गयी लेकिन रास्ते में हमें कहीं भी बाबा के दर्शन नहीं हुए।

लगभग एक घण्टे बाद रात्रि के दस बजे गाड़ी वैर आकर बस स्टैण्ड पर रुकी तो बाबा को लोगों ने अपनी तपोस्थली (धूना पर) के पूर्वी द्वार पर जहाँ अब लोगों ने दुकानें बनवादी है। उसी स्थान पर बाबा के तपोस्थली का पूर्वी द्वार था और आगे कच्चा चबूतरा। बाबा को अपने निर्धारित आसन में, हाथ में चिलम लिए हुए अलख पुरुष मूर्ति "का घोष करते हुए सुना। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने देखा कि "अभी-अभी बाबा बयाना दिखाई दिये थे और इतनी

जल्दी वैर जा पहुंचे।'' इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि बाबा में आलैकिक शक्तियाँ थीं और उनके गुरु का ज्ञान न्यारा था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 33

जा तुझे चौरासी से पार किया।

बाबा के बारे में एक सही संस्मरण मुझे चाचाजी स्व. श्री नत्थीलाल जी ने सुनाया था। मैं एक बार हाई स्कूल की परीक्षा देने मथुरा गया था। इलाहबाद बोर्ड से उस समय परीक्षायें हुआ करती थीं। हमारी परीक्षा के सेन्टर मथुरा चौरासी पर था। परीक्षा देकर हम वैर आ गये। एक दिन जब मैं बाबा के धूना की तरफ से घूम रहा था। बाबा को मैंने प्रणाम किया और उन्होंने मुझसे कहा–''देवीदास! चल हट, तुझे चौरासी से पार किया।'' उल्लेखनीय है कि बाबा प्रायः लोगों का नामकरण अपनी ओर से कर दिया करते। जब भी वह व्यक्ति बाबा के पास पहुंचता उसे उसी नाम से सम्बोधित करते थे। चाहे वहाँ वह, कितने ही समय में पहुंचा हो। मुझे बाबा अक्सर देवीदास नाम से सम्बोधित किया करते थे। बाबा की उस वाणी का अर्थ उस समय समझ में नहीं आया। मैं सोचने लगा कि क्या बाबा ने मुझे 84 लाख योनयों से छुड़ा दिया था। इसका कोई और अर्थ है। मेरा माथा ठनका कि ''बाबा ने 84 का अंक लगाने के लिए तो प्रेरित नहीं किया खैर वो अन्तरर्यामी थे। मेरे स्वभाव से और मुझसे अच्छी तरह परिचित थे। इसलिए दडा लगाने की प्रेरणा क्यों करने लगे। इन्ही विचारों की उधेड़-बुन में घर आ गया। दूसरे दिन हमारी इन्टरमीडिएट की परीक्षा का रिजल्ट आया और उसमें सफल रहा। मैंने अपने एडमीशन कोई को देखा कि कहीं मेरा रोल नम्बर गलत तो नहीं देख लिया लेकिन उसमें स्पष्ट लिखा हुआ था। चौरासी खम्बा, नामांक 84। इसको देखकर मुझे बाबा के बोले हुए वचन ''देवीदास! जा तुझे 84 पास किया।'' का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो गया। इन वाक्यों से बाबा ने मुझे परीक्षा में उत्तीर्ण होने का आशीर्वाद दिया था। इससे सिद्ध होता है कि बाबा एक अनौखे भविष्य वक्ता थे। भूत, भविष्य, वर्तमान में जो भी कुछ घटित होने वाला है, उसका पूर्वाभास उन्हें हो जाया करता था।

प्रत्यक्ष दर्शियों एवं समकालीन लोगों द्वारा सुनाये संस्मरणों द्वारा भी यह बात स्पष्ट होती है।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 34

कहाँ डोलता है मेरे मटा .....?

यह प्रसंग लगभग सन् 1947 का है। बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज उस दिन बयाना के बाजार में "गिर्राज मोटल्ली" (वैद्य) की दुकान पर बैठे हुये थे। मैं और मेरे साथ में कुछ साथी लड़के और भी थे। हम बाजार से गुजर रहे थे तो हमने देखा बाबा उक्त दुकान पर बैठे थे। हमने अपने पिताजी से वैर वाले बाबा मनोहरदास के बारे में सुन अवश्य रखा था। लोगों के बताने पर हमें ज्ञात हुआ कि ये ही बाबा मनोहरदास जी हैं। पहले तो मुझे कुछ दिखाई न दिया, क्योंकि धोती कमीज, जाकिट, जूते पैरों में सिपाहियों जैसी जैकिट्स गले में साफी सिर पर काली टोपी हाथ में बैंत तथा एक हाथ में लम्बी सी चिलम लगी हुई थी। दुकान पर अपनी मस्ती में बैठे हुए थे। एक सामान्य नागरिक जैसी वेश-भूषा में आप विराजे हुये थे। मुझे सम्बोधित करके बोले पर अरे परसादी। कहाँ डोलता है मेरे मटा"! मैं कुछ समझ नहीं क्यों कि मेरा नाम तो बाबूलाल है। खैर मैंने नजदीक जाकर चरण छुए, और कहा कि मेरे नाम परसादी नहीं बाबूलाल लै। बाबा बोले–"हाँ मेरे मटा! तेरा ज्ञान न्यारा है ले"। ऐसा कहकर मुझे एक मुट्ठी मूंगफली दी। यह बाबा से मेरी प्रथम मुलाकत थी।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 35

चिन्ता नहीं करना .....

लगभग दो वर्ष बाद आषण नोवीं भडरिया की एक घटना है, हमारे बयाना से एक बारात वैर गई उसमें मैं तथा मेरा भाई अन्य साथी गये हुए थे। बारात वैर की फुलवारी में ठहरी थी। हमने विचार किया कि चलो बाबा के दर्शन कर आते हैं। हम कुछ लोग जिनमें मेरा बड़ा भाई भी था। बाबा धुने पर परताप गंगा के किनारे पहुंचे बाबा उस समय अपने धुने पर विराजे हुये थे। मुझे देखकर बोले परसादी, आ हाँ मुझे पता था कि तू बारात में आएगा।" हम उन्हें ढोक देकर बैठ गए। थोड़ी देर बाद बाबा बोले– परसादी जरा मेरे पैरों को दवाना उन्होंने एक पैर आगे बढ़ा दिया मैं दवाने लगा लगभग आधे घण्टे तक मैं पैर दवाता रहा लेकिन उन्होंने मना नहीं किया, फिर हाथ आगे बढ़ा दिया इस तरह मुझे लगातार हाथ पैर दवाते काफी समय व्यतीत हो गया तया मन में ऊब भी गयी, मन ही मन सोचने लगा कि कहीं बारात की चढाई शुरू नहीं हो गई हो यहाँ से चलना चाहिए। बाबा ने मेरी मनोवृत्ति

को जान लिया था। बोले–"मेरे मटा, अभी चढाई में बहुत देर है, चले जाना।" कुछ देर हम वहाँ रुक कर चलने लगे तो आप बोले परसादी! रात को भगदड़ मचेगी कोई चिन्ता की बात नहीं कुछ नहीं होगा डरना नहीं। हम सोचने लगे कि भगदड़ कहाँ मचेगी कुछ समझ में नहीं आया। रात को सारी बारात सोई हुई थी कि अचानक भाग दौड़ तथा कोलाहल की आवाजें सुना दी लोगों ने कहा कि हुल्लड़ शुरू हो गया, मार-काट मच रही है रात्रि का लगभग एक बजा होगा सारे बाराती इधर-उधर भाग गये कुछ छुप गये। मैंने मेरे भाई को जगाया कि सारे लोग भाग चुके है चलो कहीं हम भी चलें कुछ अनिष्ट नहीं हो गाये हम वहाँ से जाने का विचार कर ही रहे थे कि बेटी वालों की ओर से लोग आ गये और कहा कि कुछ नहीं है कुछ लोगों ने झूठी अफवाह उड़ा दी है। आप आराम से सो जाओ।" इससे यह सिद्ध होता है कि बाबा को भविष्य की जानकारी पूर्व में ही हो जाया करती थी।

(उपर्युक्त दोनों स्मरण मुझे श्री बाबूलाल ब्राह्मण निवासी मावडा गली, बयाना ने सुनाए)

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 36

देख यह हमारा दरबार है

हुजूर प्रायः मुझे अपनी हजामत बनवाने हेतु बुलाया करते थे और उन्होंने मेरा नाम "सौली ख्वास" रख दिया था मुझे इसी नाम से पुकारा करते थे। एक दिन का प्रसंग है हुजूर बाबा मुझसे बोले "सौली ख्वास चल" आप धूने से उतर कर चलने लगे मैं उनके पीछे हो लिया अचानक रुके और बोले मटा, तू गुरुन का ख्वास है आगे आगे चल"। मैं हुजूर के हुकम से आगे चलने लगा किले की सीड़ियों के सामने पहुंचे तो आप रुक गए और बोले–सौली ख्वास देख यह हमारा दरवाजा है। मैं बोला हुजूर यह तो किले का दरवाजा है और किला राजा प्रताप सिंह का है।" बाबा बोले–"हे, मेरे मटा वह नहीं यह।" ऐसा कहकर दो पत्थर उठाकर दो ओर रखे जहाँ वर्तमान में बाबा का बाहरी मुख्य द्वार बना हुआ है उस समय में वहाँ कुछ नहीं था जंगली झाड़ियां खड़ी हुई थी, उन पत्थरों को रख कर बोले कि यह हमारा दरवाजा है। फिर मुझे अन्दर की ओर झाड़ झंकाड़ों में ले गये और बोले–"सौली ख्वास जरा नाप तोल कर।" मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि हुजूर क्या लीला रच रहे हैं उन्होंने चार पत्थर चार कौनों में रखवाये और कहा मेरे मटा तू गुरुन का ख्वास है मेरे हाथ से हमारे मकान का मुहूर्त ठीक रहेगा।" मैंने मजाक के स्वर में कहा कि न पूजा की सामग्री न गुड़ बटवाया और मकान का मुहूर्त ठीक रहेगा।" मैंने मजाक के स्वर में कहा कि न पूजा की सामग्री न गुड़

बटवाया और मकान का मुहूर्त हो रहा है। उल्लेखनीय है कि अब जहाँ मंदिर बना है, जंगली झाड़ियों से भरा हुआ क्षेत्र था। बोले इधर हमारा मकान तथा उधर हमारे चौकीदार राजा गजेन्द्र सिंह रहेंगे।'' मैंने कहा अब चलो बन गया आपका मकान कुछ दिन दक्षिणा भी है या वैसे ही मुहूर्त हो रहा है। मुझसे बोले–''मटा! तू आनंद करेगा इस प्रकार बाबा ने अपने जीवन काल में ही वर्तमान मंदिर बनने के संकेत दे दिये थे, अतः व भविष्यवक्ता थे।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 37

सेठानी के पुत्र प्रदान करना

आगरा की एक सेठानी थी अपने पति को साथ लेकर बाबा के धुने पर आई उस समय में भी बाबा के पास ही मौजूद था। वह देखने में बहुत सुन्दर थी लेकिन उसके पुत्र नहीं था। वह पुत्र की कामना लेकर बाबा की शरण में आई थी। बाबा ने दूर से ही उसे देखा और पीठ मोड़कर बैठ गये मुझसे बोले–सौली ख्वास! इसको वहीं बैठा दे, इधर नहीं आने देना, वह औरत धूनें की दो सीढियां चढ़ चुकी थी, मैंने उसे आगे बढ़ने से रोका, बाबा ने हाथ के इशारे से कहा'' बैठ जा'' वह स्त्री हाथ जोड़कर तीसरी सीढ़ी पर ही बैठ गई। बाबा बोले–यहाँ क्या रखा है– क्यों भटकती है। वह औरत कुछ नहीं बोली हाथ जोड़े माथा टिकाये बैठी रही। अचानक हुजूर के हृदय में उसके प्रति दया भाव उमड़ आया। बोले सौली ख्वास जामुन के पेड़ से उसे खोल। मैंने देखा कि एक बहुत जीर्णशीर्ण लंगोट जो गंन्दगी से काला पड़ चुका था, मैं उसे खोलकर लाया बाबा ने उसे धुलवाया और उसका पानी उस औरत को ढककर देने के लिए मुझसे कहा। मैं लोटे में लेकर उसे देने गया पहले तो वह कुछ झिझकी लेकिन मैंने उसे ईशारा कर दिया कि तेरा कल्याण होगा वह उसे पी गई। नौ दस मास बाद वह अपने पुत्र को लेकर हुजूर के दरबार में उपस्थित हुई। उल्लेखनीय है कि बाबा के सत्यलोक प्रस्थान के बाद तक वह कुछ ना कुछ सेवा यहाँ भिजवाती रहीं इस प्रकार उनके पास जो भी जिस कामना को लेकर आया आपने उसे खाली नहीं जाने दिया, वह सच्चे अर्थों में दाता थे।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 38

(कुभाव गति के भोग को फिकवा देना)

सारी दुनियाँ की बलाय यहां लाया गया है

एक बार भरतपुर दरवाजा बाहर पुरबनी वाली बगीची पर साधु भगवान

गिरी के यहाँ अन्नकूट का आयोजन किया गया सवा मन बाजारा कढी चावल आदि भोग तैयार किया गया। बाबा भगवान गिरी ने कहा कि बाबा मनोहर दास को भी पहुँचाओ। पं. प्रभुदयाल भुसावरिया बोला मैं ले जाता हूँ वह दो मूर्तियों का भोजन लेकर बाबा को देने गया बाबा उस समय धुने के पास छोटे लाल कोठारी की दूकान पर बैठे थे, जब प्रभुदयाल वह भोग लेकर वहाँ पहुँचा तो बाबा बड़े क्रोधित हुये बोले साले सारी दुनिया को अलाय-बलाय का उतारा करके मेरे पास लाया है फैकदे इसको।'' और उसके हाथ से लेकर उस भोग को फैंक दिया और न जाने क्या-क्या कहते रहे। पं. प्रभुदयाल ने जाकर सारा वृतांत सुनाया कि बाबा बहुत नाराज हुये हैं। इसके बाद मैं नहा धोकर पूर्ण शुद्धता के साथ पाँच छः आदमियों का भोग लेकर बाबा के धुने पर गया उस समय बाबा बहुत प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुये थे मुझे देखकर बोले–''सौली ख्वास बड़ी मस्तानी चाल से चलता है। मैंने नमरकार ढोक दी और प्रसाद की परात हुजूर के सामने रख दी बोले'' पकौड़ी तो अच्छी बानी हैं। मैंने परात से कपड़ा हटाकर बाबा को पकौड़ियाँ दिखाई। हाँ हुजूर पकौड़ी लेकर आया हूँ। उल्लेखनीय है कि जब मैं प्रसाद लेकर चला था तो कढ़ी से पकौड़ियाँ विशेष रूप से निकाल कर बाबा के लिए लाया था क्यों कि मुझे मालूम था कि हुजूर को पकौड़ियाँ विशेष प्रिय हैं। आप बोले–''ऊपर रख दे : चल, तू ख्वास और मैं ब्राह्मण दोनों भोजन करें।'' मैं बोला–हुजूर आप पाएँ, मैं तो वहीं जाकर प्रसाद ले लूंगा हाँ भाई, तुम गुरुजी के साथ ही प्रसाद लोगे मैं चलने लगा तो आप बोले अरे इतना बना लिया है कौन खाएगा इसको। हमने देखा कि उस दिन सबा मन बाजरे का प्रसाद इतना हो गया कि शाम तक बंट नही पाया , हमने तथा पं. रामस्वरूप जी मिश्र ने उसे सबह कोलीपाड़े में बाँटा था। यह संस्मरण मुझे श्री नत्थी लाला खवास जो लगभग 70 वर्ष के हैं सुनाया। इससे यह सिद्ध होता है कि वे भाव-भक्ति एवं शुद्ध हृदय द्वारा लाया गया प्रसाद ही स्वीकार करते थे।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 39

नत्थी ख्वास को पुत्र प्रदान करना.....।

''एक दिन की बात है बाबा हमारे यहीं विराजे हुए थे एक कागज पर हमारी जमीन का नक्शा खींचते हुए बोले–''यह हिस्सा तेरे मतलब का नहीं धर्म क्षेत्र है।'' दूसरी तरफ के हिस्सों को देखकर बोले–''मटा, यह घेर खाली रहेगा।'' मैं बोला हुजूर आप ही देख लो।'' बाबा कुछ सोचने लगे। उल्लेखनीय है कि मेरे उस समय केवल लड़कियाँ ही थी, लड़का एक भी नहीं था। बाबा ने मुझसे कहा''–तेरी वहू को बुला–''मैंने ऐसा ही किया जब वह आई उसने दूर से बाबा को ढोक, दी बाबा ने उसे एक ओर बैठा दिया, थोड़ी देर बाद कहा'' वहीं उधर बैठो, फिर बोले

उधर नहीं इधर ऐसा कहकर उन्होंने उसे थोड़ी देर में तीन चार जगह बैठोने का इशारा कर दिया, मैं बोला–''बाबा क्या सांग कर रहे हो।'' तो आपने कहा ठहर मेरे मटा तेरा ज्ञान ध्यान न्यारा है।'' ऐसा कहकर अपनी जेब से चार बेर निकाले, अपने हाथ में रखकर देखते रहे और कुछ गुनगुनाते रहे'' ॐ अभैनाय अखैनाम अजर नाम. .....। मुझ से बोले–सौली ख्वास ले'' मुझे चार बेर दिये और उनमें से एक फिर उठा लियो'' देख, यह ठीक नहीं, ये तीनों ठीक है।''

आगे चलकर मेरी पत्नी को चार पुत्र प्राप्त हुये लेकिन एक की अकाल मृत्यु हो गई। इस प्रकार बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज ने मुझे ''आनन्द करेगा'' आशीर्वाद दिया मेरे उन्हीं की कृपा से अब सर्वानन्द हैं।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 40

कानों की खिंचाई .....''खूनी की नंदियाँ बह जाएगी''

बात सन् 1947 की है कुछ मुसलमानों को जो कभी हिन्दू थे, पुनः हिन्दू धर्म में लिया जाने का विचार हुआ, मुझे तहसीलदार साहब ने नाई लाने के लिए कहा मैं मुण्डन कराने हेतु करीव 25 नाई लेकर प्रताप गंगा के पास आया मुसलमानों का मुण्डन किया गया, उन्हें जनेऊ धारण कराया गया, जब मैं लौटकर घर जा रहा था तो बाबा अपने धूने के पूर्वी द्वार पर चवूतरे पर बैठे चिलम पी रहे थे मुझे आवाज देकर बुलाया सौली ख्वास यहाँ आ।'' मैं पहुँचा चरणों मैं ढोक दी लेकिन बाबा ने मेरे दौनों कान बड़ी जोर से पकड़ लिए और पूरी ताकत के साथ उनको मरोड़ा लगाया बोले–''तू गुरुन का ख्वास हैं किसके हुकुम से गया था, ''भिष्ठा और अन्न का अन्तर नहीं जानता, सौलै! खूनों की नदियाँ वह जाएगी।'' मैंने कहा हुजूर मैं तो नाईयों को ले गया था मैंने मुण्डन नहीं किया था। बाबा ने मेरे कानों को ऐसा मरोड़ा कि मेरी आखों में आँसू निकल पड़े कुछ समय बाद वास्तव में हमारे क्षेत्र में साम्प्रदायिक दंगें हुये मार-काट खून-खराबा हुआ।''

यह संस्मरण मुझे 70 वर्षीय श्री नत्थी लाल ख्वास ने सुनाया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ गुरु परमात्मने नमः

संस्मरण 41

''लो मैंने तुम्हें अटल कर दिया''

एक बार मेरे पिता श्री किशन लाल ख्वास उनके साथ पं. फत्ते लाल नगायच (पान वाले) तथा अन्य कुछ लोग थे गोवर्धन की परिक्रमा के लिए जा रहे थे। बाबा

उस समय चिमन वाली कुईया के पास बड़ के पेड़ के नीचे बैठे थे। बाबा को ढोक देकर जब वे चलने लगे तो बाबा ने कहा–''काका जी तुम नहीं जाओगे अगर तुम जाओगे तो मैं भी यहाँ नहीं ठहरुंगा'' बाबा ने बहुत जिदकर के उन्हें यही रोक लिया, दूसरे लोग भी नहीं गये। उन्हें साथ लेकर बाबा प्रताप गंगा की सीढ़ियों पर ले गये और पानी के छीटे देकर सात नाम का मंत्र बोला ॐ अखै नाम अभै नाम. .....। लो तुम्हें मैंने अटल कर दिया अब कोई खतरा नहीं, कुछ समय बाद बहुत जोर का तूफान आया तथा जोरों की वर्षा हुई सैकड़ों की तादाद में पेड़ उखड़ गये। बाबा ने लोगों को इस प्राकृतिक विपदा से बचाकर रक्षा की। उल्लेखनीय है कि मेरे पिता को अपने जीवन में कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा। एक दिन वे हज़ामत बनाकर आये और मुझसे चाय पीने के लिए मंगाई चाय में गंगा जल एवं तुलसी डालने के लिए कहा मैंने ऐसा ही किया। उसे पीकर सो गये और अपने प्राणों को त्याग दिया। यह सब कुछ बाबा का ही आशीर्वाद था।

(यह संस्मरण श्री नत्थी लाल ख्वास ने मुझे सुनाया।)

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

❑❑❑

उत्तराधिकारी खण्ड

ॐ गुरु परमात्मने नमः

बाबा के उत्तराधिकारी

श्री श्री 1008 बाबा नारायण दास जी महाराज मन्दिर के संस्थापक-और बाबा के उत्तराधिकारी

श्री नारायणसिंह (इन्दौलिया) उत्तर प्रदेश किरावली के पास मुडियापुरा गाँव के निवासी थे। भरतपुर कोतवाली में कोतवाल थे। वैर के थाने पर थानेदार बनकर आये। बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज में उनकी अपार श्रद्धा थी। वह अक्सर बाबा के धुने पर आया-जाया करते थे। बाबा भी थाने पर जाकर अपना धुना लगाया करते थे। बाबा दरोगा नारायणसिंह जी जो अक्सर दरबार कहकर पुकारा करते थे। एक बार रात्रि को लगभग एक बजे नारायण सिंह जी गस्त के लिए निकले बाबा उस समय धुने के पूर्वी द्वार पर चबूतरे पर सिंहासन से बैठे हुए थे। नारायण सिंह ने बाबा को दण्डवत कर और आगे बढ़ने लगे। बाबा उनसे बोले दरबार कहाँ जाते हो? बैठे वे बोले–"बाबा अभी आता हूँ गस्त लगानी है। बाबा ने पुनः आग्रह किया लेकिन वे नहीं माने और गस्त के लिए आगे बढ गये। किले के नीचे रास्ते में उन्होंने देखा कि बाबा मनोहर दास पड़े हुए हैं उनका सिर हाथ, पैर, धड़, अलग-अलग पड़ा हुआ है। दरोगा नारायण सिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि अभी-अभी वह बाबा को अपने धुने के चबूतरे पर बैठा छोड़कर आये थे। वे तुरन्त लौटे और बाबा को उसी स्थान पर पूर्व बैठे हुए पाया। दरोगा नारायण सिंह ने बाबा के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। वे बाबा के आलौकिक चमत्कार से बड़े भारी प्रभावित हुए। उसी दिन अपनी पुलिस की वर्दी उतार कर बाबा के चरणों में रख दी और उनके शिष्य हो गये। बाबा ने उन्हें सात नाम की दीक्षा प्रदान की अब वे नारायण सिंह से नारायण दास हो गये थे। उल्लेखनीय है कि श्री नारायण दास जी ने बाबा की बहुत सेवा की, बाबा का अन्तिम संस्कार भी नारायण दास जी के द्वारा किया गया। बाबा ने अपने समय में ही उन्हें अपनी तपोस्थली (धुना) का उत्तराधिकारी बना दिया था। बाबा के ब्रह्म लीन होने के पश्चात् उनके समाधि स्थल पर एक भव्य मन्दिर के निर्माण की योजना, एक औषधालय तथा एक पुस्तकालय की योजना राजा श्री गजेन्द्र सिंह जी के साथ मिलकर उन्होंने बनाई और उसके नक्शे बनवाये गये। वर्तमान में जो मन्दिर बाबा मनोहर दास जी महाराज का बना हुआ है तथा वर्तमान में जहाँ आयुर्वेदिक औषधालय चला हुआ है। उसका निर्माण उन्हें के बनाये नक्शे पर किया गया है। उन्होंने अपने हाथ से इस मन्दिर की नींव रखी। मजबूत कंकरीट की नीवें भरवाई गयीं। मन्दिर दासे से ऊपर पहुँच गया। समाधि को पक्का बनवा दिया गया। मन्दिर के नक्शे के अनुसार समाधि की तीन परिक्रमाएँ थीं। एक अन्दर जगमोहन में समाधि के चारों ओर दूसरी समाधि से बाहर वर्तमान परिक्रमा तथा तीसरी मन्दिर से बाहर जहाँ पर लोहे का फाटक लगा हुआ है। वहाँ होकर

जाती थी। अब ये तीसरी परिक्रमा प्रायः बन्द हो चुकी है। इस प्रकार मन्दिर निर्माण का प्रारम्भिक और महत्त्वपूर्ण कार्य श्री नारायणदास जी द्वारा सम्पन्न कराया गया। वे प्रातः सायंः समाधि की पूजा बड़े भक्ति भाव से शंख झालर की ध्वनि के साथ किया करते। अनेकों लोगों का समुदाय तथा छोटे-छोटे बच्चे गुरु देव की सायं कालीन प्रार्थना में सम्मिलित हुआ करते थे। बाबा मनोहर दास की जयकारों से बस्ती का प्रत्येक कौना गूंजता रहता था। बड़ी ही भक्ति मयी परिवेश था। हम भी प्रायः उस प्रार्थना में नित्य नियम से सम्मिलित होते और बाबा की प्रार्थना इस प्रकार किया करते थे।

गुरु वन्दना

ॐ गुरु देव ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप

आनन्द दाता कल्याणकारी, अग्नि में ज्योति में, प्रकाश में, अजर अमर अविनाशी घट-घट के वासी

निराकार निर्विकार, सर्वाधार, अर्न्तयामी, अलख निरंजन, भव भय भंजन,

संकट मोचन वनवारी। देवेश्वर, योगेश्वर, प्राणेश्वर, परमेश्वर, ईश्वर।

ॐ गुरुदेव ब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप,

आनन्द घन भगवान् नमो नमः॥

॥ श्री गुरु देव नमः ॥

इस प्रकार अनेक वर्षों तक अपने गुरुदेव की पूजा प्रार्थना मन्दिर व्यवस्था का कार्य श्री नारायण दास जी द्वारा किया गया। उनका स्थाई निवास बाबा की तपोस्थली (धुना) पर ही था। अपने संस्मरण में सुनाया करते थे कि एक बार रात्रि के समय गुरुदेव अपने धुना पर विराजमान थे। पास में मैं (नारायण दास) बैठा हुआ था तो मैंने देखा कि गुरुदेव के चार मुख दिखाई दिये। मुझे साक्षात ब्रह्मा रूप में दर्शन दिये। इसके अलावा एक बार लगभग रात्रि 9 बजे सीते दरवाजे बाहर बावड़ी में मुझे ले गये। मैं समझ न सका कि गुरुदेव इस समय कहाँ जा रहे हैं। मैं पीछे-पीछे चलता रहा। अंधेरी रात थी। नर्जन जंगल था। अचानक गुरुदेव रुके और आकाश की ओर इशारा किया बोले–"दरबार देखो" क्या दिखाई देता है। मुझे पहले आकाश मे तेज रोशनी दिखाई दी। मेरी आँखें मिच गयीं लेकिन पुनः खोलने पर आकाश में सिंह पर सबार अष्ट भुजा की देवी का दर्शन हुआ। थोड़ी देर बाद वह रूप अर्न्तध्यान हो गया। इस प्रकार की आलौकिक घटनाएँ गुरुदेव ने अन्य लोगों को भी समय-समय पर दिखलाई थी। उल्लेखनीय है कि कुछ समय पश्चात् श्री नारायण दास जी को आंखों से कम दिखाई देने लगा। पूजा सेवा में भी परेशानी का अनुभव होने लगा। किरावली से उनके बच्चे यहाँ आकर उन्हें गाँव चलने के लिए

आग्रह करने लगे। लेकिन उन्होंने यहीं रहकर गुरु दरबार में पड़े रहने का मन्तव्य जाहिर किया। अधिक आग्रह करने पर और अपनी वृद्धावस्था ध्यान में रखते हुए वे उनके साथ अपनी जन्म भूमि मूडियापुरा, (किरावली, उत्तरप्रदेश) चले गये और उनकी वहीं जीवन लीला समाप्त हो गयी।

श्री श्री 1008 बाबा कुन्दन दास जी महाराज

कस्बा बयाना के पास स्थित महलौनी ग्राम में एक सम्भ्रान्त गुर्जर परिवार में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम भगवत सिंह रखा गया। बाल्यकाल से ही ये शुद्ध सात्विक वृति के थे। खान-पान आचार-विचार आदि में सात्विकी वृति थी। इनकी शिक्षा अधिक नहीं हो पायी। कक्षा 1 या 2 के पश्चात् इन्होंने अपना अध्ययन बन्द कर दिया। इनके घर में अनेकों ऊंट घोड़े घोड़ियाँ एवं भैंस गाय अनेक प्रकार की पशु सम्पत्ति तथा धन धान्य सम्पन्न परिवार था। वे बताया करते थे कि हम घोड़ियों को सोने के जेवर से सुसज्जित करके मेले-ठेले, जात, बरात में जाया करते थे। इसी से सिद्ध होता है कि वह एक सम्पन्न परिवार में जन्मे थे। उनका शरीर बलिष्ट था। ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे। बहुत आग्रह करने पर भी इन्होंने शादी नहीं की। नेताजी सुभाष चन्द बोस के आह्वान पर ये अन्य गुर्जर नव युनवकों के साथ आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो गये और अपनी मातृ भूमि भारत माता की सेवा में उसे पराधीनता की वेडियों से मुक्त कराने तथा अंग्रेजों की इस देश की भूमि छोड़ने को विवश कर दिया। फौज में भी इनका रहन-सहन खान-पान शुद्ध सात्विक रहा। अपने फौजी संस्मरणों में बाबा कुन्दन दास ने मुझे बताया कि "लंगर में भोजन न करने के कारण मेरा एक सिख कर्नल से झगड़ा हुआ, जिसमें मैंने उसे बहुत बुरी तरह से पीटा। बात यह थी कि वह फौजी नियमानुसार मुझे लंगर में भोजन करने के लिए बाध्य करता था और मैं लंगर मे ष्याज लहसुन एवं मांस पकाये जाने की वजह से भोजन करने में असमर्थ था अधिकारी से झगड़ने की वजह से मेरा कोर्ट मार्शल किया गया और अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई। लेकिन मेरी प्रार्थना पर विचार करके और मेरी वृत्ति को ध्यान में रखकर मुझे स्वयं भोजन बनाकर पाने की अनुमति प्राप्त हो गयी। इस प्रकार इन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी अपनी धर्मनिष्ठा को नहीं छोड़ा। कुछ समय पश्चात् जब आजाद हिन्द फौज का विघटन हुआ तो वह जन्मभूमि वापिस आ गये।

गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी से मिलन प्रसंग

एक बार श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदास जी महाराज का आसन किशोर दास की बगीजी में तहसील के पास बयाना में लगा हुआ था। भक्तों का समुदाय बाबा के आस-पास विराजा हुआ था। उसी समय एक ऊंट पर बैठकर अपने अन्य साथियों के साथ भगवत सिंह नाम का यह नव युवक उस रास्ते से गुजर रहा था। बाबा की नजर उस पर पड़ी। बाबा ने उसे उसके पिता एवं पितामह का नाम

उच्चारण करते हुए अपने पास बुलाया। वह तुरन्त ऊंट से कूद पड़ा और अपने साथियों के साथ नीचे बगीजी में जहीं बाबा मुढे पर विराजे हुए थे उन्हें दण्डवत प्रणाम किया बाबा बोले–"छोरा! कहाँ भूला भटका फिरता है। आ मुझे गुरु मंत्र देंगे। ऐसा कहकर उसे पास बिठा लिया। बाजार से कुछ सामग्री मंगाई गई। मिठाइयों के साथ बाबा के आग्रह से दही की पकोड़ियाँ भी मंगवाई गयी। उल्लेखनीय है बाबा साहब को पकोड़ियाँ बहुत पसन्द थीं। भगतसिंह को बाबा ने सात नाम का मंत्र सुनाया और उनके साथियों से कह दिया है कि जाओ कह देना कि अब हमारा हो गया है। अब भगवत सिंह कुन्दन दास हो गया। यह नाम गुरु महाराज को दिया हुआ था। बाबा की सेवा में वह तन-मन-धन से लग गया बाबा के बताये हुए रास्ते से उन्होंने साधना प्रारम्भ की। सन् 1947 में साम्प्रदायिक देंगे हुए। वह सुनाया करते थे कि हुजूर के हुक्म से मैंने इन दंगों में दीन-हीन निरापराध लोगों की रक्षा करने एवं उनको सताने वाले लोगों की अपनी शक्ति सामर्थ से दण्ड दिया। कुन्दन दास के बारे में लोग कहा करते हैं कि इन साम्प्रदायकि दंगों में उसने शास्त्रों से सुसज्जित होकर सक्रिय रूप से भाग लिया। इसमें इनके हाथ से दस-बीस आतंककारियों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े।

परम वैष्णव रूप–अन्त में कुन्दनदास ने अपने गुरुदेव की बहुत सेवा की समय-समय पर वे अपने गाँव से घी दूध एवं अन्य भेटें लाया करते थे।

एक दिन का प्रसंग है कि कुन्दन दास अपने गुरुदेव के लिए एक कुल्लड़ में दूध लाये। लेकिन बाबा साहब ने उसे लेने से इन्कार कर दिया और उसे अनेक प्रकार के कठोर शब्द कहे, जिनका यहाँ उल्लेख करना उचित नहीं होगा। कुन्दन दास को सुनाये। यहाँ तक कि अपने पास रखे डण्डे से 2 डण्डे उसकी पीठ पर मारे, तीसरा मारने लगे तो वह दूर हट गया। इस प्रकार बाबा श्री मनोहरदास जी ने अनेक प्रकार से उसे प्रताड़ित किया। बातों से अपमानित किया और अनेक प्रकार से उसे दण्डित किया। यह उसके धैर्य की परीक्षा थी। गुरु देव के इस प्रकार के कठोर व्यवहार से तंग आकर एक दिन वह अपना बिस्तर बांध कर जाने लगा और मन ही मन सोचने लगा कि "किसी साम्प्रदाय में जाता तो कुछ सीखने को मिलता कुछ ज्ञान होता। ऐसा कहकर वह चलने लगा। वहाँ उपस्थित श्री परसादी लाल छीपी ने उससे कहा कि शाला में होकर निकल कर जाओ क्योंकि बाबा अक्सर लोगों को इसी मार्ग से जाने को कहा करते थे।

उल्लेखनीय है कि शाला का दरवाजा कुछ नीचे था जिसमें लोगों को झुककर निकलना पड़ता था। कभी-कभी सीधे निकलने वालों व्यक्ति के सिर में चोट भी लग जाया करती थी। इससे ऐसा लगता है कि हुजूर प्रत्येक व्यक्ति को सिर नीचे करके चलने अर्थात् जीवन में नम्रता धारण करके संसारिक व्यवहार में प्रस्तुत होने का मानो उपदेश दिया करते थे। वह कहा करते थे।

दोहा– *नानक नन्ना हो चलो जैसी नन्ही दूब।*
और घास सब जरै जेठ में हरी रहत है दूब॥

अर्थात् ये हमें सभी प्रकार का त्याग कर नम्रता के साथ रहना सिखाते थे। जब कुन्दन दास उस रास्ते से गुजरने लगा तो शाला के पूर्वी द्वार पर अब लोगों ने उसे बन्द करवा कर दुकान बनवा दी है। आप बाहर चबूतरे पर बाबा विराजे हुए थे। वह चरण स्पर्श करके ज्योंही जाने लगा तो बाबा बोले–"मैंने तुझे वह ज्ञान दे दिया है जो तुझे चार सम्प्रदाय में भी नहीं मिलता कुन्दन दास के ज्ञान चक्षु खुल चुके थे उसे ज्ञात हुआ कि हुजूर की कठोरता में मेरा परम हित ही था। अब वह तप कर वास्तविक कुन्दन बन चुके थे। श्री नारायण जी के पश्चात् मन्दिर समाधि स्थल की देख रेख एवं विकास का कार्य बड़ी निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ कुन्दन दास जी महाराज ने किया। वे सच्चे दिल से प्रातः सायं बड़े भक्ति से अपने गुरुदेव की झालर शंखों से धूप दीप नैवेद्य आदि अर्पण करके विधिवत पूजा अर्चना किया करते थे।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि बाबा श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदासजी महाराज का अव्यात्मिक दर्शन अद्वैत वेदान्त से प्रभावित थे और उन पर भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता था उनकी दृष्टि में "सर्व खल्व इदं ब्रह्म" अर्थात् ईश्वर समस्त जड़ चेतन में समान रूप से व्याप्त हैं, वह घट-घट का वासी है। अतः मन्दिर मस्जिद घट-मठ इत्यादि को वे विशेष महत्त्व न देते थे। उनका अलख पुरुष अविनाशी प्रत्येक स्थान में व्याप्त ईश्वर था। वर्तमान मन्दिर की ओर इशारा करते हुए वह अपने धूने पर बैठे-बैठे कहा करते थे, यह संसार मुर्दे की पूजा करने वाला है।" कुन्दन दास से इस ओर इशारा करते हुए कहते थे कि नहर के ऊपर पीपल का पेड़ जो वर्तमान में मन्दिर के उत्तर दिशा में स्थित है, उसे काल चक्र बतलाया करते और कहा करते कि यहाँ मगर रहता है, बचकर रहना तुझे खा जाएगा तथा मन्दिर के सामने पूर्व दिशा की ओर धर्मशाला के सामने जो पीपल का पेड़ है उसे वे देवता भाव गति का विष्णु बतलाया करते। कुन्दन दास ने अपने गुरुदेव की वाणी के रहस्य को अच्छी प्रकार समझ लिया था। मन्दिर निर्माण में उसेसे जो पैसा लगाया वह पूर्ण भावगीत का था। जो भी श्रद्धापूर्वक दान देता उसे पूर्ण सत्य निष्ठा से मन्दिर के विकास में लगाया। एक पैसा भी अपने निजी उपयोग में लेना वह अपनी गुरु निष्ठा के विरुद्ध समझते थे।

बोल, कड़ाकड़ सीताराम-बाबा कुन्दन दास जी महाराज को हमने परमत्यागी रूप में देखा था, मात्र एक लंगोट आडबन्द हाथ में चिमटा, मोटा हस्टपुष्ट शरीर, दाढ़ी जटायुक्त मस्ती में "बोल कड़ाकड़ सीताराम" की घोष करते हुए गली मौहल्लों में घूमा करते तथा पीछे-पीछे छोटे-छोटे बच्चे कौतूहलवश लगे उनके साथ-साथ पुनरुच्चारण "बोल कड़ाकड़ सीताराम" करते रहते। इस तरह मैंने एक मस्त फकीर की तरह से रहनी-सहनी युक्त कुन्दन दास का महात्यागी रूप भी देखा था।

"बन्दगी से प्यार एवं भूखे को खिलाना– एक दिन बाबा कुन्दन दास से मैंने पूछा कि बाबा, आपको गुरुजी ने क्या शिक्षा दी, कोई महत्त्वपूर्ण बात जो बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज ने आपको बतलाई हो, हमें भी सुनाओ।" इस प्रश्न के उत्तर में बाबा कुन्दन दास ने मुझे बतलाया कि "गुरु महाराज" ने मुझे दो बात बतलाई एक तो बन्दगी (भजन ध्यान) से प्यार रखना, दूसरी बात जिस पर वे बहुत जोर देते थे कि भजन ध्यान के साथ-साथ भूखी आत्मा को भोजन खिलाना।" मैंने कुन्दन दास जी महाराज की दिनचर्या को नजदीक से देखा था, मैंने ही क्या अधिकांश लोग उनकी दिनचर्या से परिचित थे। रात्रि को कुछ समय ही विश्राम करते जब लगभग 10 बजे सायं सारी वस्ती के लोग सो जाया करते तो आप अपने तख्त पर बैठे-बैठे भगवान का भजन करते लगभग प्रातः 3 या 3.30 पर आप अपना आसन छोड़ नित्य क्रिया से निवृत होकर जल की बाल्टी भरकर मंदिर में प्रवेश कर जाते सफाई करके गुरुजी को स्नान कराते तथा धूप दीप नैवेद्य चढ़ाकर पूजा करते शंख ध्वनि झालर घण्टे की ध्वनि से मंदिर परिसर के साथ छोटी काशी वैर का कौना-कौना गूंज उठता, शंख एवं झालर की ध्वनि सुनकर हमारे जैसे लोग अपने-अपने विस्तरों को छोड़कर अपने-अपने नित्यक्रिया कर्मों में लगते। कुछ श्रद्धालु नित्य नियम से इस पूजा में सम्मिलित होते–बड़े प्रेम से विविध स्तुतियाँ गुरु वन्दना बोली जाती लगभग 8 घण्टे तक पूजा अर्चना का कार्यक्रम होता। कुन्दन दास बाबा पूजा में प्रथम इसी गुरु वन्दना को बोलते जो स्वयं हुजूर बोला करते थे।

गुरु वन्दना

ॐ गुरु देव ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप

आनन्द दाता कल्याणकारी, अग्नि में ज्योति में, प्रकाश में, अजर अमर अविनाशी
घट-घट के वासी

निराकार निर्विकार, सर्वाधार, अर्न्तयामी, अलख निरंजन, भव भय भंजन,

संकट मोचन वनवारी। देवेश्वर, योगेश्वर, प्राणेश्वर, परमेश्वर, ईश्वर।

ॐ गुरुदेव ब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप,

आनन्द घन भगवान् नमो नमः॥

॥ श्री गुरु देव नमः ॥

इसी प्रार्थना को, बाबा नारायणदास जी महाराज (दरबार) जो कुन्दनदास जी के बड़े गुरुभाई थे और जो कुन्दनदास जी से पूर्व बाबा के मन्दिर में पूजार्चना

कार्य किया करते थे, भी बोला करते थे। पूजा पाठ के पश्चात् कुन्दनदास जी महाराज पुनः अपने आसन पर जो कि वर्तमान में मन्दिर उत्तर में स्थित पीपल के पेड़ के नीचे धर्मशाला में एक तख्त पर था आ बैठते, गाँजे की चिलम तैयार होती, भोग लगता –

"हुजूर लागै दम्

पहले गुरु पीछे हम॥

सुवह की सुर्खी खबर लावै, धुर की,।

"दमदार बेड़ा पार"

"ऐसी आवे हरि गुन गावै,

हाथी के हौदा पै, श्री कृष्ण नजर आवै।"

"याद रख, याद है तो, आबाद है,

भूल गया तौ, बरबाद है"

"गुरुनाम सच्चा, याद रख बच्चा,"

"धर्र रगड़ उसी को जो नहिं मानें किसी को।"

आदि चिलम स्त्रोत के उच्चारण बाद कुन्दन दास जी महाराज की चिलम लगती, इसके बाद कोई भगत चेतता, चाय, दूध या दही की लस्सी का भोग लगाता, लगभग दस ग्यारह बजे तक अपने आसन पर हुजूर के ध्यान में विराजे रहते, भगत जगत दर्शनार्थियों का आना-जाना लगा रहता है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि बाबा कुन्दनदास भजन बन्दगी प्रायः रात्रि के शान्त वातावरण में ही किया करते थे, दिन में वह अपने भजन बन्दगी का दिखावा नहीं करते थे क्यों कि यह उनके गुरुदेव की गुप्त हिदायत थी। बाबा महाराज न तो स्वयं अपने साधना भजन का प्रदर्शन करते थे और उनके अनुयायियों ने भी उनके इस निर्देश का अक्षरसः पालन किया। लोगों को ऐसे आचरण में नजर आते कि जाने ये "कोरे रोटी राम ही हैं।" लेकिन हमारी बस्ती के अधिकांश लोग जानते थे कि कुन्दन दास महात्मा को उनके गुरुदेव ने वास्तव में कुन्दन की बना दिया था। वे "सच्चे गुरु के लाल" थे। दोपहर, लगभग 12 बजे आप एक बड़ा थैला लेकर हाथ में एक डण्डा तथा लम्बा कुर्ता अचला पहने बस्ती में निकलते किसी दिन, एक मौहल्ले में किसी दिन दूसरे मौहल्ले में जाते, दरवाजे पर जाकर बैठ जाते और जोर से आवाज देते–"लाऔरी, छोरिऔ" बाबा की वाणी बड़ी तेजस्वी एवं कड़क थी, एक घर पर, आवाज लगती और प्रायः दो चार घरों में जानकारी हो जाती कि बाबा कुन्दनदास पधार चुके हैं, प्रत्येक घर के बच्चे स्त्रियाँ दो-दो, चार-चार रोटियाँ लेकर आते आप उनसे लेकर थैले में डालते जाते, इस प्रकार जब पूरा थैला रोटियाँ से भर जाता तो आप पुनः

अपने स्थान पर पहुँच जाते, रोटियों को बन्दरों कुत्तों को खिला दिया करते। इसके बाद आप स्वयं अपने हाथ से गुरुदेव के भोग हेतु टिक्कर बनाते तब स्वयं प्रसाद पाते यह उनके जीवन-चर्या का नित्य क्रम था। भजन एवं भूखे प्राणियों को भोजन कराना क्योंकि हुजूर बाबा प्रायः यह पद सुनाते थे–

दीन ताई दया और नम्रताई दुनिया बीच,

बन्दगी से प्यार राखि, भूखे को खिलाएगा।

चार बीसी चार से, बचेगा तू मेरे-यार,

साधुओं की संगत से, तू बड़ा सुख पायेगा॥

अतः अपने गुरु देव के वचन पालनार्थ, कुन्दन दास जी महाराज रोजाना मधुकरी हेतु विभिन्न गली, मौहल्लों में जाते। जब आप हमारे घर आते तो अन्दर प्रवेश कर जाने की एक सीढ़ी पर बैठ जाते ''छोरियों, लाओ'' आवाज को सुनकर मैं स्वयं अपने कमरे से बाहर निकलता तो बाबा के रूप के अनौखे दर्शन होते, पसोने से तर चेहरा, विशाल लालिमा लिए नेत्र ''बाबा सीताराम'' जवाब मिलता ''सीताराम'' फिर उन्होंने कैवेण्डर सिगरेट भेंट करता'' बड़े प्रेम से सिगरेट जलाते। उल्लेखनीय है कि हमारे हुजूर बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज भी गांजे सुल्फे, के साथ कैवेण्डर की सिगरेटें ही प्रयोग में लेते थे, वैसा ही उनके चेले जी कुन्दन दासजी किया करते थे। मैं अपने पास कैवेण्डर की सिगरेट का पैकिट रखा करता क्योंकि वही एक मात्र उनके स्वागत की सामग्री थी। उनके दरवाजे पर आते ही हम पैकिट लेकर तथा माचिस लेकर निकलते नमस्कार सीताराम के बाद पहला वचन यही होता ''ला छोरा, सिगरेट पिला'' चाहे गर्मी हो, जाड़ा हो, वर्षा हो उनकी इस दिनचर्या में कोई फर्क नहीं पड़ता कुत्तों, वन्दरों, एवं भूखे इन्सानों को भोजन कराने में उन्हें अपनी बन्दगी से भी ज्यादा आनन्द महसूस होता था। एक सच्चे संत में जो लक्षण होने चाहिये वे सब कुन्दन दास जी महाराज में मौजूद थे। उनकी व्यक्तित्व की विशेषताओं को लिखने लगूं तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। विस्तार भय से उनके जीवन वृत को संक्षेप में ही लिखा है

शौचाशोच एवं पवित्रता–कुन्दनदास बाबा प्रायः स्वयं पकी (स्वयं प्रसाद तैयार करने वाले) महात्मा थे दूसरे के हाथों से बनाया भोग वे अपने गुरुदेव को बहुत कम अर्पण करते थे। एक बार अस्तल वाले हनुमान पर एक भण्डारा था। आप वैसे तो भण्डारों में कम ही आते-जाते थे लेकिन बाबा श्री जयरामदासजी के यहाँ अधिक प्रेमवश पहुँच जाया करते थे। आप पहुँच, हनुमान जी को दण्डवत प्रणाम करके, परिक्रमा देने लगे, परिक्रमा मार्ग में ही भण्डारा तैयार हो रहा था, वहाँ एक सन्यासी खड़ा था, उसे देखकर बाबा कुन्दन दास भड़क गये, परिक्रमा देकर बिना कुछ बताए वहाँ से वापिस चल दिये, जब लोगों को मालुम पड़ा तो बाबा जयरामदास पीछे

दोड़े, बोले–क्यों महाराज, वापिस कैसे चल दिये? क्या नाराजी है?''भण्डारा बना रहा है सो मेरे मतलब का नहीं'' ''अरे महाराज, वो तो वैसे ही वहाँ खड़ा है, उसने हाथ नहीं लगाया, आप वापिस चलो ऐसी क्या नाराजी है?'' लेकिन कुन्दनदास कहाँ मानने वाले थे, वापिस अपने स्थान पर आ गये। इससे यह सिद्ध होता है कि वे भण्डारे में प्रत्येक व्यक्ति के हाथ लगाने के विरुद्ध थे। अपने गुरुदेव के मन्दिर के भीतर एवं सिंह द्वार के भीतर के सारे प्रांगण में किसी को पेशाब नहीं करने देता तो उसी से उस मिट्टी को खुरचवा कर बाहर फिकवाते। नहीं मानता तो डण्डे से झुराई करने में तनिक भी नहीं झिझकते चाहे वह व्यक्ति कितने ही ऊँचे पद पर क्यों न हो। कई बार थानेदार, तहसीलदार जैसे अधिकारी भी उनकी चपेट में आ गये थे। सिंह द्वार से लेकर किले की उत्तरी पश्चिमी बुर्ज तक उनके गुरु की जागीर थी, इसे अपवित्र करने वाले की खैर नहीं।''

बस्ती से बाबा के भोग हेतु आई सामग्री को वे प्रायः वितरित कर देते थे, क्योंकि रास्ते चले भोग को वह प्रायः ठीक नहीं मानते थे। अपने कमण्डल के किसी को हाथ नहीं लगाने देते। अपनी चिलम को वे किसी दूसरे को नहीं फेरते थे। उनकी चिलम चाँदी की बनी हुई थी, जिसे भरकर अकेले ही पिया करते थे, इस प्रकार शोचाशोच का उन्हें विशेष ध्यान रहता था।

मंदिर निर्माण कार्य-जो पैसा हुजूर के नाम से उन्हें मिलता था, कहीं बाहर से आता, उसे सत्यनिष्ठा से मंदिर निर्माण कार्य में लगाते थे उन्होंने कभी भी सार्वजनिक रूप से मंदिर निर्माण हेतु चंदा एकत्रित नहीं किया। श्रद्धा-भक्ति से जो भी पैसा प्राप्त होता गया उसी को मंदिर निर्माण में लगाते गये। मंदिर के निर्माण में कुन्दन दास बाबा को योगदान उल्लेखनीय रहा था। जो भी धन आता उसका एक-एक पैसा मंदिर के निर्माण में लगता। अपने खर्चे के लिए वे भगत जगत को अलग से चेताया करते थे और स्वयं भी लोग उनके लिए दूध, चाय, कपड़े आदि की सेवा कर दिया करते थे। मंदिर निर्माण हेतु एवं बाबा के भोग-पूजा हेतु कुछ लोगों ने एक निश्चित रकम प्रति माह देने का संकल्प कर रखा था तथा चार दुकानों के किराये से कुछ आय हो जाती। इस प्रकार कम आमदनी से ही धीरे-धीरे मंदिर का पूर्ण निर्माण कराया गया तथा आगे के हिस्से को दुमंजिला बनवाय था। इसके अतिरिक्त मंदिर के सामने दुकानों का निर्माण कार्य तथा तपोस्थली का जीर्णोधार धूने को पक्का कराना तथा शाला के पूर्वी द्वार के स्थान पर एक दुकान निर्माण कार्य भी बाबा श्री कुन्दनदास जी महाराज ने कराये थे। उनके साथ सहयोगी के रूप में सेठ ब्रजलाल जी (विरजूभाई) का नाम भी उल्लेखनीय है। ये प्रायः उनके कैशियर रहा करते मंदिर के लिए सामग्री जुटाना तथा मजदूरों की व्यवस्था आदि के कार्यों को किया करते थे। इस प्रकार वही लगन एवं परिश्रम से बाबा कुन्दन दास जी महाराज ने अपने गुरुदेव की स्मृति में उनकी समाधि पर मंदिर एवं मूर्ति स्थापना का कार्य जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कि मंदिर निर्माण योजना

श्री बाबा नारायण दास जी एवं राजाजी श्री गजेन्द्रसिंह जी के द्वारा बनी तथा मजबूत कंकरीट से नीवों को भरवाकर दासे तक का कार्य उन्हीं के मार्गदर्शन में हुआ। लेकिन शेष एवं महत्त्वपूर्ण कार्य बाबा कुन्दनदास जी महाराज ने ही कराया।

गुरु द्वारे का जोगी–एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हुजूर के अन्य शिष्य उनके सत्यलोक सिधारने के पश्चात् तप हेतु अन्यत्र चले गये और अपने शरीरों को भी लघुकाशी वैर से बाहर ही त्यागा लेकिन कुन्दनदास जी महाराज ने अन्तिम दम तक अपने गुरुदेव के द्वारे को नहीं छोड़ा वे दोनों समय की पूजा स्वयं ही किया करते थे। लेकिन जब उनका शरीर जीर्ण हो गया चलने-फिरने में असमर्थ हो गये तो, पूजा का कार्य दूसरे हाथों में गया इसका उन्हें बड़ा दुःख रहता। वे प्रायः श्री बल्लभ ''दाँतरा'' से पूजा करवा दिया करते थे। इस तरह उनका जरा-जीर्ण शरीर कुछ दिन तक चलता रहा।

मन्दिर का ट्रस्ट बनवाना-कुन्दनदास की जरा-जीर्ण काया देखकर हम कुछ लोगों ने विचार किया कि इनका शरीर पूरा होने के पश्चात् मंदिर की व्यवस्था का क्या होगा। क्योंकि कुन्दन दास ने विधिवत् कोई शिष्य नहीं बनाया। इस सम्बन्ध में हम उनसे कहा करते कि बाबा कोई शिष्य बना लो, जिससे आपके पश्चात् मंदिर की व्यवस्था एवं पूजा-अर्चना में व्यवधान नहीं आये। लेकिव वे कहा करते कि ''लाला, सव माल मारने वाले है, कोई जँचता तो है नहीं किसे शिष्य बनाऊँ। उनकी इच्छा थी कि ''कोई ब्राह्मण का लड़का होय तो उसे शिष्य बना लूं'' लेकिन ऐसा कोई समर्पित ब्राह्मण बालक नहीं मिला और ना ही उन्होंने कोई शिष्य बनाया। एक दिन मैंने तथा श्री दुर्गा चौधरी, रजनीकांत पटवारी। (बच्चू भाई) तथा अन्य लोगों ने कुन्दन दास बाबा को मंदिर का ट्रस्ट बनवाने के लिए प्रार्थना की, जिसे पहले तो उन्होंने नकार दिया ''क्या होता है ट्रस्ट? हमारे गुरुदेव का मंदिर तो ऐसे ही ठीक है।'' लेकिन बहुत समझाने के बाद कि आपके पश्चात् मंदिर देवस्थान विभाग में चला जायेगा तथा इसकी पूजा सरकारी पूजारी के हाथ चली जायेगी, मंदिर का विकास रुक जायेगा, इत्यादि बातों की गम्भीरता उन्हें समझाई तो एक दिन उन्होंने स्वयं ही कहा कि ''छोराओ! बनवाय देओ, कैसौ ट्रस्ट होय। उनकी अनुमति से कार्य आगे बढाया गया, इस कार्य में स्व. श्री दुर्गा प्रसाद जी चौधरी एवं स्व. रजनी कांत पटवारी (बच्चू भाई) आदि का सक्रिया योगदान रहा।'' बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज जन हितकारी ट्रस्ट के निर्माण की योजना तैयार की गई। भरतपुर जाकर आवश्यक जानकारी ली गई। बाबा श्री कुन्दन दास जी महाराज से पूछा गया कि आप किस व्यक्ति को इस ट्रस्ट का सदस्य रखना चाहते हो, उन्होंने जिन-जिन व्यक्तियों के नाम का प्रस्ताव रखा उन्हें सूचना देकर मंदिर में बैठक की गई। ट्रस्ट निर्माण योजना की क्रियान्वति हेतु जो प्रथम बैठक रखी गई उसकी अध्यक्षता स्वयं बाबा श्री श्री 1008 कुन्दनदासजी महाराज ने की। ट्रस्ट का संविधान तैयार किया गया ''श्री मनोहर जन हितकारी ट्रस्ट'' के लिए संविधान निर्माता स्व.

श्री दुर्गा प्रसाद जी चौधरी थे जिन्होंने बाबा कुन्दन दास से परामर्श लेकर तथा उपस्थित सदरयों से विचार-विमर्श करके वर्तमान ट्रस्ट के संविधान को तैयार किया तथा उनकी एक प्रति, मंदिर प्रोपर्टी के नक्शे आदि आवश्यक कागजात तैयार करके देव स्थान विभाग को भिजवाये इस प्रकार बाबा कुन्दन दास जी महाराज ने अपने जीवन में ही मंदिर की सुचारु व्यवस्था एवं भावी विकास हेतु मंदिर का एक ट्रस्ट बनवा दिया। ट्रस्ट की अधिक जानकारी आगे के परिशिष्टों में दी जावेगी।

इस प्रकार बाबा कुन्दन दास अपने गुरु द्वारे का अन्तिम योगी था।

महा प्रस्थान–जब हम बाबा कुन्दनदास के पास जाते और और उससे पूछते कि गुरुदेव कुछ सुनाओ तो वे करते कि हमारे गुरुदेव एक पद बोला करते थे–

''मन मस्त भया अब को बोले।

घट ही में गंगा, घट ही में जमुना,

ताल तलैया मेरे को डोले॥

मन मस्त भया अब को बौले॥

कमती होय तौ लाऊँ तराजू

पूरौ होय तो, को तोले,

मन मस्त भया अब को बौले॥

इस प्रकार मस्ती में अपने गुरुदेव के चरणों में ध्यान लगाकर एक दिन आप भी ''आप'' में समा गये। हम प्रायः बाबा कुन्दनदासजी की जरा-जीर्ण अवस्था में उनके पास उनके हालचाल जानने के लिए तथा कोई आवश्यक सेवा बताने के लिए पहुँचा करते थे क्योंकि इनसे उठा-बैठ नहीं जाता था। एक दिन हम सभी साथियों ने मिलकर उनके स्थान को साफ किया उन्हें स्नान कराया तथा कपड़े बदलवाये आप भी बड़े ही आनन्द में थे। यह बात दिन के 12 या 1 बजे की रही होगी। हम उन्हें नहला धुला के अपने घरों पर चले गये। सायंकाल को हम आनंद मण्डल के सदस्यगण उन दिनों प्रायः अस्तल वाले हनुमान पर जाया करते थे। उस दिन सायं को जब हम अस्तल पर थे तो एक बस रुकी उसमें से हमें एक व्यक्ति ने सूचित किया कि बाबा कुन्दन दास जी महाराज ने अपना शरीर छोड़ दिया। हमें वहाँ आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि दोपहर को आप बिलकुल ठीक थे ऐसा कैसे हो सकता है। हम सभी तुरन्त बाबा के मन्दिर पर गये देखा तो भगत जनों द्वारा उनकी अन्तिम शव यात्रा के लिए डोला सजाया जा रहा था।

बाबा के शिष्य बाबा बृजलाल

बाबा श्री श्री 1008 श्री बृजलाल छाता (मथुरा) उत्तरप्रदेश के निवासी ये। बाबा की सेवा में रहा करते थे। बाबा भी इनको बहुत प्यार करते थे। ये बाबा के शिष्यों में एक थे। ये एक बहुत आला दर्जे के क्लार्नेट वादक थे। वैर का प्रसिद्ध बैंड मास्टर नेतराम कोली उन्हें अपना उस्ताद मानता था और कहता है कि यह कला मुझे बाबा बृजलाल की ही देन है। यह अक्सर बाबा की तपोस्थली धूना पर रहा करता था। भोजन बनाकर दिया करते थे। बाबा को इनके हाथ का बना प्रसाद विशेष पसन्द था। नहर के किनारे वाली धर्मशाला (मंगल कांरटेविल) में एक अलमारी में इनकी क्लार्नेट रखी रहती थी। कभी-कभी हुजूर महाराज उन्हें बुलाकर इनकी क्लार्नेट सुना करते थे और स्वयं ढोलक की ताल लगाते थे। दोनों गुरु शिष्यों की एक अनौखी जुगलवदी होती थी। अनेक लोगों ने इस दृश्य को देखा। ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे और बाबा के बताये रास्ते पर चलकर इन्होंने सिद्धि प्राप्त की। इन्होंने लखनपुर गाँव के ऊपर पहाड़ में स्थित पीरीपोखर नामक एकान्त स्थान में रहकर तपस्या की। लखनपुर के रहने वाले अनेकों इनके भक्तगणों में बहुत सी आलौकिक घटनाओं के बारे में हमें सुनाया। जैसी रहनी-राहनी बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज की थी ठीक वैसी ही रहनी-राहनी एवं मनोवृति इनकी भी हो गयी। हाथ में चिलम लम्बा घुटनों तक कुर्ता अचला एक हाथ में दण्ड कन्धों तक लम्बे बाल सिंहासन से बैठे हुए किसी अनन्त सत्ता में ध्यान भजन इनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। सभी विषयों से दूर हमेशा भगवान के भजन में मस्त रहना कभी किसी से कुछ नहीं चाहना। एकान्त सेवन करना दैव योग से प्राप्त हो जाये उसी में सन्तुष्ट रहना, सभी प्राणियों से स्नेह का व्यवहार रखना, अपने गुरु के बताये हुए सन्त लक्षणों को इन्होंने सांगोपांग अपने व्यवहार में उतार लिया था।

दोहा- दया गरीबी वंदगी, समता शील स्वभाव।

ऐते लक्षणा साधु के, कहेच कबीर विचार॥

दोहे के अनुसार उनके अन्दर सन्तों के सभी लक्षण विद्यमान थे। आप भूखे रहकर के दूसरों को खिलाना और हमेशा भजन में मस्त रहना इनके स्वभाव की मुख्य विशेषता थी। बाबा के परमधान सिधारने के दिन ये दिल्ली में थे इन्हें स्वप्न हुआ और तुरन्त ही वहाँ से चल दिये। वैर तो इन्हें गुरुदेव के सत्यलोक का समाचार सुना। ये बहुत दुःखी हुए। बाबा के अन्तिम संस्कार में सायं 4 बजे थे आप भी सम्मिलित हो गये। ये इनको गुरु भक्ति का ही उदाहरण था। ये श्री कुन्दन दास जी महाराज के साथ बाबा के अस्थि कलश को लेकर इलाहबाद त्रिवेणी में प्रवाहित करने हेतु गये। बयाना बस स्टेण्ड पर भी ये बहुत समय तक रहे। वहाँ भी इनके अनेकों सेवक हैं। बाबा श्री मनोहरदास की तरह लोगों ने इनमें भी अनेक प्रकार की चमत्कारिक घटनाएँ देखी थी। बयाना में इनके अनेकों सेवक हैं, एक बार कुछ लोग

वैर से इनके पास गये और बोले–कि महाराज अगहन सुदी छट्ट के दिन वैर पधारो बाबा की पुण्य तिथि है उसकी शोभा यात्रा निकाली जायेगी। आप भी पधारो ये बोले कि–"मैं एक दिन पहले अगहन सुदी पंचमी के दिन आ जाऊंगा।" बयाना में इनका एक पटवारी भक्त था। उसने बतलाया कि जिस दिन बाबा बृजलाल में सत्यलोक को प्रस्थान किया उस दिन हमने देखा कि अपने गुरुदेव श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज का एक फोटो इन्होंने अपने सीने में लगा रखा था और ऊपर से कम्बल ओढ कर लम्बे पांव कर परम धाम को सिधार गये थे।

उस दिन अगहन सुदी पंचमी सन.....था। वैर से भक्त लोग गये और इनके पार्थिव शरीर को वैर से ले आये और वर्तमान में जहाँ पर इनकी समाधि बनी हुई वहीं इनका संस्कार कुन्दन दास जी महाराज ने अपने हाथों से किया तथा इनकी अस्थियों को भी तीर्थराज प्रयाग त्रिवेणी में प्रवाहित किया गया। बहुत बड़ा भण्डारा किया गया। सैंकड़ों साधुओं ने इसमें प्रसाद पाया तथा सम्पूर्ण बस्ती तथा बयाना, लखनपुर तथा अन्य क्षेत्रों से आये भक्तों में श्रद्धा भक्ति के साथ भण्डारे में सहयोग दिया। उल्लेखनीय है कि वर्तमान में बाबा मनोहरदासजी के मन्दिर की दक्षिण दिशा में बड़ के पेड़ के नीचे एक भव्य समाधि स्मारक बना हुआ है, जो इनकी गुरु भक्ति का ज्वलंत प्रमाण है।

बाबा के शिष्य बाबा समन्दर दास जी महाराज

बाबा श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदास जी की शिष्य परम्परा में श्री समन्दर दास जी का नाम भी लोगों की जबान से सुना जाता है इनका तपो-स्थान फुलवाड़ी में सफेद महल के सामने कुण्डे के ऊपर एक झोंपड़ी में था। कभी-कभी महल में ये आसन जमा दिया करते थे। कथा-कीर्तन इत्यादि अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान ये कराया करते थे। कहते हैं हलुए में भांग मिलाकर ये प्रसाद वितरित किया करते। इनके स्थान के आस-पास बन्दर और पक्षी आदि भी भांग युक्त हलुए का प्रसाद पाकर मस्त रहा करते थे। बाबा ने इनको भी सात नाम की दीक्षा दी थी। इनके समकालीन भक्तों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि इनमें भी अनेक प्रकार की सिद्धियाँ का प्रभाव देखा गया ये सिद्धियाँ को काम में लेने लग गये थे। यह बात हुजूर महाराज बाबा मनोहरदास जी को पसंद नहीं आयी। उन्होंने कई बार चेतावनी दी कि संभल जाओ नहीं तो अनिष्ट हो जायेगा तुम अकाल मृत्यु से मारे जाओगे। अद्योगति को चले जाओगे लेकिन इन्होंने अपने गुरुदेव की चेतावनी को गम्भीरता से नहीं लिया और ये योग भ्रष्ट हो गये। यहाँ से छोड़कर भरतपुर चले गये वहाँ पर ये शराव पीने लगे और अनेक प्रकार की दुष्प्रवृतियों में फंस गये पं. रामकुमार जो नगर परिषद भरतपुर में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे, उन्होंने बताया कि हम नगर परिषद में बैठकर सुल्फे की चिलम बनाकर पी रहे थे, उसी समय समन्दर दास जी भी वहाँ आ पहुँचे और हमसे चिलम लेकर ज्योहिं इन्होंने जोर का कश खींचा, इनके पेट में आग लग गयी और ये तड़पने लगे और इनका प्रणान्त हो गया।

इनके देह त्यागा के बाद भरतपुर से चार आदमी ट्रक लेकर आये और बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज से बोले कि "हुजूर आपका शिष्य समन्दर दास का शरीर पूरा हो गया है। आप भरतपुर पधारें।" बाबा बोले–"हाँ हाँ ले जाओ और जमुना जी में डाल देना, कच्छ मच्छ खा जायेंगे" उनके चले जाने के बाद बाबा बोले–"कि लाला! एक मियां का लड़का था जिसको हमने गुरनाम सुना दिया था थोड़ी उम्र लिखा के लाया अकाल मृत्यु से मारा गया"

उल्लेखनीय है कि समन्दरदास एक जाट घराने में पैदा हुए थे और महाराज की पलटन के बैंड में क्लार्नेट वादक थे। बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज में अपार श्रद्धा थी। बाबा भी उसको प्रेम किया करते थे। उन्हें सात नाम की दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया था। गुरु कृपा से इन्हें सिद्धियाँ भी प्राप्त हुईं। लेकिन अपने गुरु महाराज की आज्ञाओं का उल्लंघन करने के कारण इनका पतन हुआ और अकाल मृत्यु के ग्रास बनें।

ऐसा करते हैं कि जब भरतपुर से इनको लेकर मधुरा जमुना जी में प्रवाहित करने के लिए ले गये और जमुनाजी में प्रवाहित कर दिया तो कच्छ मच्छों ने भी नहीं छुआ लोगों का कहना है कि अचानक हुजूर महाराज मनोहरदास जी महाराज वहाँ आ गये और कच्छ मच्छों को आदेश दिया कि "हाँ हाँ ये तुम्हारा भोजन है खींच ले जाओ।" कहते हैं कि इसके बाद एक बड़ा कछुआ आया और इनको खींच कर जमुना जी में अन्दर ले गया। इस प्रकार हुजूर की आज्ञा से इनका अन्तिम संस्कार जल समाधि सम्पन्न हुआ।

लोगों का कहना है कि बाबा को थोड़ी देर के लिए लोगों ने वहाँ देखा और इनके बाद वह अर्न्तध्यान हो गये।

गुरु मूरत मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।
अष्ट प्रहर निरखत रहो, श्री गुरु चरनन की ओर॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इतिश्री॥

❑❑❑

Guru Vandanā (adorazione al Guru)

गुरु वन्दना

ॐ गुरु देव ब्रहम सच्चिदानन्द स्वरुप
आनन्द दाता कल्याणकारी, अग्नि में ज्योति में, प्रकाश में, अजर अमर अविनाशी
घट-घट के वासी
निराकार, निर्विकार, सर्वाधार, अन्तरयामी, अलख निरंजन, भव भय भंजन,
संकत मोचन वनवारी । देवेश्वर, जोगेश्वर, प्रनेश्वर, परमेश्वर, ईश्वर ।
ॐ गुरु देव ब्रहम, सच्चिदानन्द स्वरुप,
आनन्द घन भगवान् नमो नमः ॥
॥ श्री गुरु देव नमः ॥

Om guru deva brahma saccidānanda svarupa
Ānanda dātā kalyāṇakārī, agni meṃ jyoti meṃ, prakāśa meṃ, ajara amara avināśī
ghaṭa-ghaṭa ke vāsī
nirākāra, nirvikāra, sarvādhāra, antarayāmī, alakha niraṃjana, bhava bhaya bhaṃjana,
saṃkata mocana vanavārī | deveśvara, jogeśvara, praneśvara, parameśvara, īśvara |
Om guru deva brahma, saccidānanda svarupa,
Ānanda ghana bhagavān namo namaḥ ||
|| Śrī guru deva namaḥ ||

Saluti al Guru la cui forma è l'incarnazione di Sat-Chit-Ananda
(Esistenza - Coscienza - Beatitudine).
Dispensatore di felicità e prosperità, mio fuoco, mia luce, infinito ed immortale,
calmo, senza forma, senza mente, universale, onnisciente,
Tu sei il creatore, sei la paura della paura, mitigatore dei problemi.
Signore degli Dei, Signore degli Yogi, Signore della vita, Signore supremo, Dio.
Saluti al Guru la cui forma è l'incarnazione di Sat-Chit-Ananda
(Esistenza - Coscienza - Beatitudine).
I miei omaggi al Dio pieno di beatitudine.
I miei omaggi al Guru.

Salutations to the Guru whose form is the incarnation of Sat-Chit-Ananda
(Existence - Consciousness - Bliss).
Dispenser of happiness and prosperity, my fire, my light, infinite and immortal,
calm, formless, mindless, universal, omniscient,
You are the creator, you are the fear of fear, the reliever from troubles.
Lord of the Gods, Lord of the Yogis, Lord of life, Supreme Lord, God.
Salutations to the Guru whose form is the incarnation of Sat-Chit-Ananda
(Existence - Consciousness - Bliss).
My tributes to the God full of bliss.
My tributes to the Guru.

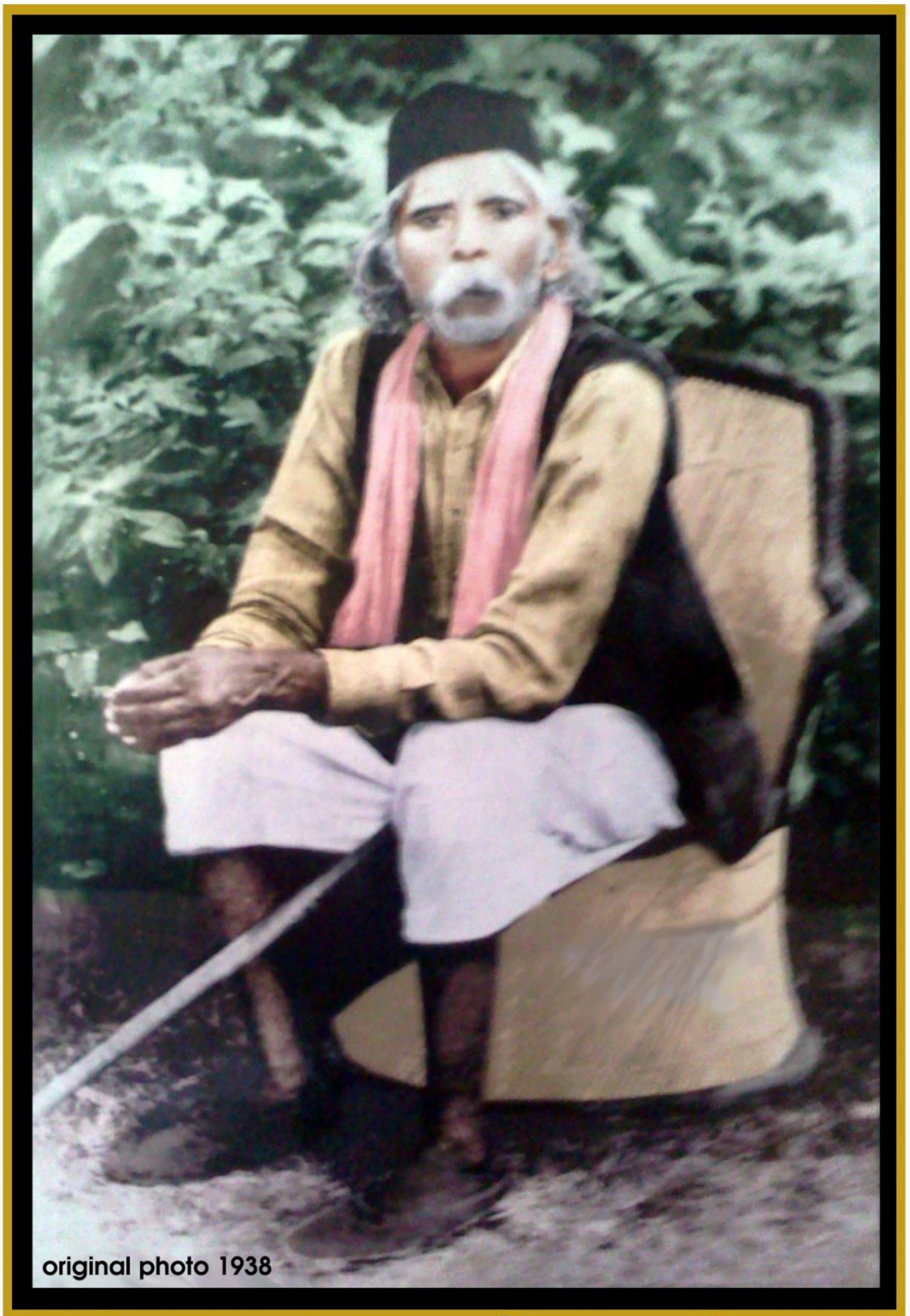

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज